* ॐ *

जैनसमाज की वर्तमान दशा पर विचार

यह बात संसार-प्रसिद्ध है और सब कोई जानते हैं कि संसार परिवर्तनशील है। क्षण २ में जीवों की पर्याय, जीवों के भाव और काल की मर्यादा पलटती रहती है, बच्चे से जवान और जवान से बूढ़ा होना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। इसी परिवर्तनरूपी हिन्डोले में सारा संसार घूमता है। कभी कोई ऊपर चढ़ता है और कभी नीचे उतरता है और कुछ समय पीछे नीचे उतरने वाला ऊपर चढ़ जाता है और ऊपर चढ़ने वाला नीचे आ गिरता है। इसी उलट पलट में राष्ट्र, साम्राज्य, देश, समाज और धर्म तक भी डोल जाते हैं।

जैन पुराण ग्रन्थों के पढ़ने और प्राचीन इतिहास के जानने वाले पुरुषों के सम्मुख इस परिवर्तन का चित्र भलीभांति खिंचा रहता है। वे जानते हैं कि एक समय रावण का साम्राज्य था, सोने की लंका का वह स्वामी था और हजारों भाई बेटों, स्त्री पुरुषों का परिवार रखता था, लेकिन समय ने पलटा खाया और उस रावण का श्री रामचन्द्रजी के हाथों से सब कुछ समाप्त होगया। इसी प्रकार कंस की कृष्ण द्वारा और कौरव की पाण्डव द्वारा इतिश्री होगई। लेकिन साथ ही साथ श्री रामचन्द्र, श्री कृष्ण और पाण्डव भी समय की प्रबल धारा में

यदि निर्वाण अभाव या शून्य हो तो ऊपर लिखित विशेषण नहीं बन सक्ते हैं। विशेषण विशेष्यके ही होते हैं। जब निर्वाण विशेष्य है तब वह क्या है, चेतन है कि अचेतन। अचेतनके विशेषण नहीं होसक्ते। तब एक चेतन द्रव्य रह जाता है। केवल, अजात, अक्षय, असंस्कृत धातु आदि साफ साफ निर्वाणको कोई एक परसे भिन्न अजन्मा व अमर, शुद्ध एक पदार्थ झलकाते हैं। यह निर्वाण जैन दर्शनके निर्वाणसे मिल जाता है जहांपर शुद्धात्मा या परमात्माको अपनी केवल स्वतंत्र सत्ताको रखनेवाला बताया गया है। न तो वहां किसी ब्रह्ममें मिलना है न किसीके परतंत्र होना है, न गुणरहित निर्गुण होना है। बौद्धोंका निर्वाण वेदांत सांख्यादि दर्शनोंके निर्वाणके साथ न मिलकर जैनोंके निर्वाणके साथ भलेप्रकार मिल जाता है। यह वही आत्मा है जो पांच स्कंधकी गाड़ीमें बैठा हुआ संसार चक्रमें घूम रहा था। पांचों स्कंधोंकी गाड़ी अविद्या और तृष्णाके क्षयसे नष्ट होजाती है तब सर्व संस्कारित विकार मिट जाते हैं, जो शरीर व अन्य चित्त संस्कारोंमें कारण होरहे थे। जैसे अग्निके संयोगसे जल उबल रहा था, गर्म था, संयोग मिटते ही वह जल परम शांत स्वभावमें होजाता है वैसे ही संस्कारित विज्ञान व रूपका संयोग मिटते ही अजात अमर आत्मा केवल रह जाता है। परमानन्द, परम शांत, अनुभवगम्य यह निर्वाणपद है, वैसे ही उसका साधन भी स्वानुभव या सम्यक्समाधि है। बौद्ध साहित्यमें जो निर्वाणका कारण अष्टांगिकयोग बताया है वह जैनोंके रत्नत्रय मार्गसे मिल जाता है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी एकता अर्थात् निश्चयसे शुद्धात्मा या निर्वाण स्वरूप अपना श्रद्धान व ज्ञान व चारित्र या स्वानुभव ही निर्वाण मार्ग है। इस स्वानुभवके लिये मन, वचन, कायकी शुद्ध क्रिया कारणरूप है, तत्वस्मरण कारणरूप है, आत्मबलका प्रयोग कारणरूप है। शुद्ध भोजनपान कारणरूप है, बौद्ध मार्ग है। सम्यग्दर्शन, सम्यक् सङ्कल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि। सम्यग्दर्शनमें सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञानमें सम्यक् सङ्कल्प सम्यक्चारित्रमें शेष छ गर्भित है। मोक्षमार्गके निश्चय स्वरूपमें कोई भेद नहीं दीखता है। व्यवहार चारित्रमें जब निर्ग्रंथ साधु मार्ग वस्त्ररहित प्राकृतिक स्वरूपमें है तब बौद्ध भिक्षुके लिये सवस्त्र होनेकी आज्ञा है। व्यवहार चारित्र सुलभ कर दिया गया है। जैसा कि जैनोंमें मध्यम पात्रोंका या मध्यम व्रत पालने-वाले श्रावकोंका ब्रह्मचारियोंका होता है।

अहिंसाका, मत्री, प्रमोद, करुणा, व माध्यस्थ भावनाका बौद्ध और जैन दोनोंमें बढ़िया वर्णन है। तब मांसाहारकी तरफ जो शिथिलता बौद्ध जगतमें आगई है इसका कारण यह नहीं दीखता है कि तत्वज्ञानी करुणावान गौतमबुद्धने कभी मांस लिया हो या अपने भक्तोंको मांसाहारकी सम्मति दी हो, जो बात लंकावतार सूत्रमें जो संस्कृतसे चीनी भाषामें चौथी पांचवीं शताब्दीमें उल्था किया गया था, साफ साफ झलकती है।

पाली साहित्य सीलोनमें लिखा गया जो द्वीप मत्स्य व मांसका

यदि निर्वाण अभाव या शून्य हो तो ऊपर लिखित विशेषण नहीं बन सक्ते हैं। विशेषण विशेष्यके ही होते हैं। जब निर्वाण विशेष्य है तब वह क्या है, चेतन है कि अचेतन। अचेतनके विशेषण नहीं होसक्ते। तब एक चेतन द्रव्य रह जाता है। केवल, अजात, अक्षय, असंस्कृत धातु आदि साफ साफ निर्वाणको कोई एक परसे मिल अजन्मा व अमर, शुद्ध एक पदार्थ झलकाते हैं। यह निर्वाण जैन दर्शनके निर्वाणसे मिल जाता है जहांपर शुद्धात्मा या परमात्माको अपनी केवल स्वतंत्र सत्ताको रखनेवाला बताया गया है। न तो वहां किसी ब्रह्ममें मिलना है न किसीके परतंत्र होना है, न गुणरहित निर्गुण होना है। बौद्धोंका निर्वाण वेदांत सांख्यादि दर्शनोंके निर्वाणके साथ न मिलकर जैनोंके निर्वाणके साथ भलेप्रकार मिल जाता है। यह वही आत्मा है जो पांच स्कंधकी गाड़ीमें बैठा हुआ संसार चक्रमें घूम रहा था। पांचों स्कंधोंकी गाड़ी अविद्या और तृष्णाके क्षयसे नष्ट होजाती है तब सर्व संस्कारित विकार मिट जाते हैं, जो शरीर व अन्य चित्त संस्कारोंमें कारण होरहे थे। जैसे अग्निके संयोगसे जल उबल रहा था, गर्म था, संयोग मिटते ही वह जल परम शांत स्वभावमें होजाता है वैसे ही संस्कारित विज्ञान व रूपका संयोग मिटते ही अजात अमर आत्मा केवल रह जाता है। परमानन्द, परम शांत, अनुभवगम्य यह निर्वाणपद है, वैसे ही उसका साधन भी स्वानुभव या सम्यक्समाधि है। बौद्ध साहित्यमें जो निर्वाणका कारण अष्टांगिकयोग बताया है वह जैनोंके रत्नत्रय मार्गसे मिल जाता है।

सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्रकी एकता अर्थात् निश्चयसे शुद्धात्मा या निर्वाण स्वरूप अपना श्रद्धान व ज्ञान व चारित्र या स्वानुभव ही निर्वाण मार्ग है। इस स्वानुभवके लिये मन, वचन, कायकी शुद्ध क्रिया कारणरूप है, तत्वस्मरण कारणरूप है, आत्मबलका प्रयोग कारणरूप है। शुद्ध भोजनपान कारणरूप है, बौद्ध मार्ग है। सम्यग्दर्शन, सम्यक् संकल्प, सम्यक् वचन, सम्यक् कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक् स्मृति, सम्यक् समाधि। सम्यग्दर्शनमें सम्यग्दर्शन, सम्यक् ज्ञानमें सम्यक् संकल्प सम्यक्चारित्रमें शेष छः गर्भित है। मोक्षमार्गके निश्चय स्वरूपमें कोई भेद नहीं दीखता है। व्यवहार चारित्रमें जब निर्ग्रंथ साधु मार्ग वस्त्ररहित प्राकृतिक स्वरूपमें है तब बौद्ध भिक्षुके लिये सवस्त्र होनेकी आज्ञा है। व्यवहार चारित्र सुलभ कर दिया गया है। जैसा कि जैनोंमें मध्यम पात्रोंका या मध्यम व्रत पालनेवाले श्रावकोंका ब्रह्मचारियोंका होता है।

अहिंसाका, मैत्री, प्रमोद, करुणा, व माध्यस्थ भावनाका बौद्ध और जैन दोनोंमें बढ़िया वर्णन है। तब मांसाहारकी तरफ जो शिथिलता बौद्ध जगतमें आगई है इसका कारण यह नहीं दीखता है कि तत्वज्ञानी करुणावान गौतमबुद्धने कभी मांस लिया हो या अपने भक्तोंको मांसाहारकी सम्मति दी हो, जो बात लंकावतार सूत्रमें जो संस्कृतसे चीनी भाषामें चौथी पांचवीं शताब्दीमें उल्था किया गया था, साफ साफ झलकती है।

पाली साहित्य सीलोनमें लिखा गया जो द्वीप मत्स्य व मांसका

पर है, यहापर भिक्षुओंको भिक्षामें अपनी हिंसक अनुमोदनाके विना मास मिल जावे तो ले ले ऐसा पाली सूत्रोंमें कहीं कहीं कर दिया गया है। इस कारण मासका प्रचार होजानेसे प्राणातिपात विरमण व्रत नाम मात्र ही रह गया है। बौद्धोंके लिये ही कसाई लोग पशु मारते व बाजारमें वेचते हैं। इस बातको जानते हुए भी बौद्ध ससार यदि मासको लेता है तब यह प्राणातिपात होनेकी अनुमतिसे कभी बच नहीं सक्ता। पाली बौद्ध साहित्यमें इस प्रकारकी शिथिलता न होती तो कभी भी मासाहारका प्रचार न होता। यदि वर्तमान बौद्ध तत्वज्ञ सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करेंगे तो इस तरह मासाहारी होनेसे अहिंसा व्रतका गौरव बिलकुल खो दिया है। जब अन्न व शाक सुगमतासे प्राप्त होसक्ता है तब कोई बौद्ध भिक्षु या गृहस्थ मासाहार करे तो उसको हिंसाके दोषसे रहित नहीं माना जासक्ता है व हिंसा होनेमें कारण पड जाता है।

यदि मासाहारका प्रचार बौद्ध साधुओं व गृहस्थोंसे दूर हो जावे तो उनका चारित्र एक जैन गृहस्थ या त्यागीके समान बहुत कुछ मिल जायगा। बौद्ध भिक्षु रातको नहीं खाते, एक दफे भोजन करते, तीन काल सामायिक या ध्यान करते, वर्षाकाल एक स्थल रहते पत्तियोंको घात नहीं करते हैं। इस तरह जैन और बौद्ध तत्वज्ञानमें समानता है कि बहुतसे शब्द जैन और बौद्ध साहित्यके मिलते हैं। जैसे आस्रव, सवर आदि।

पाली साहित्य यद्यपि प्रथम शताब्दी पूर्वके करीब सीलोनमें लिखा गया तथापि उसमें बहुतसा कथन गौतमबुद्ध द्वारा कथित

पा है, वहापर भिक्षुओंको भिक्षामें अपनी हिंसक अनुमोदनाके विना मास मिल जावे तो ले ले एमा पाली सूत्रोंमें कहीं कहीं कर दिया गया है। इस कारण मासका प्रचार होजानेसे प्राणातिपात विरमण व्रत नाम मात्र ही रह गया है। बौद्धोंके लिये ही कसाई लोग पशु मारते व बाजारमें वेचते हैं। इस बातको जानते हुए भी बौद्ध ससार यदि मासको लेता है तब यह प्राणातिपात होनेकी अनुमतिमे कभी बच नहीं सक्ता। पाली बौद्ध साहित्यमें इस प्रकारकी शिथिलता न होती तो कभी भी मासाहारका प्रचार न होता। यदि वर्तमान बौद्ध तत्वज्ञ सूक्ष्म दृष्टिसे विचार करेंगे तो इस तरह मासाहारी होनेसे अहिंसा व्रतका गौरव बिलकुल खो दिया है। जब अन्न व शाक सुगमतासे प्राप्त होसक्ता है तब कोई बौद्ध भिक्षु या गृहस्थ मांसाहार करे तो उसको हिंसाके दोषसे रहित नहीं माना जासक्ता है व हिंसा होनेमें कारण पड़ जाता है।

यदि मासाहारका प्रचार बौद्ध साधुओं व गृहस्थोंसे दूर हो जावे तो उनका चारित्र एक जैन गृहस्थ या त्यागीके समान बहुत कुछ मिल जायगा। बौद्ध भिक्षु रातको नहीं खाते, एक दफ भोजन करते, तीन काल सामायिक या ध्यान करते, वर्षाकाल एक स्थल रहते पत्तियोंको घात नहीं करते हैं। इस तरह जैन और बौद्ध तत्वज्ञानमें समानता है कि बहुतसे शब्द जैन और बौद्ध साहित्यके मिलते हैं। जैसे अस्रव, सवर आदि।

पाली साहित्य यद्यपि प्रथम शताब्दी पूर्वके करीब सीलोनमें लिखा गया तथापि उसमें बहुतसा कथन गौतमबुद्ध द्वारा कथित

है ऐसा माना जा सक्ता है। बिल्कुल शुद्ध है, मिश्रण रहित है, ऐसा तो कहा नहीं जा सक्ता। जैन साहित्यसे बौद्ध साहित्यके मिलनेका कारण यह है कि गौतमबुद्धने जब घर छोडा तब ६ वर्षके बीचमें उन्होंने कई प्रचलित साधुके चारित्रको पाला। उन्होंने दिगम्बर जैन साधुके चारित्रको भी पाला। अर्थात् नग्न रहे, केश-लोंच किया, उद्दिष्ट भोजन न ग्रहण किया आदि। जैसा कि मज्झिमनिकायके **महासिंहनाद** नामके १२ वें सूत्रमे प्रगट है। दि० जैनाचार्य नौमी शताब्दीमें प्रसिद्ध **देवसेनजी** कृत दर्शन सारसे झलकता है कि गौतमबुद्ध श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरकी परिपाटीमे प्रसिद्ध **पिहितास्रव** मुनिके साथ जैन मुनि हुए थे, पीछे मतभेद होनेसे अपना धर्म चलाया। जैन बौद्ध तत्वज्ञान प्रथम भागकी भूमिकासे प्रगट होगा कि प्राचीन जैनधर्म और बौद्धधर्म एक ही समझा जाता था। जैसे जैनोंमें दिगम्बर व श्वेताबर भेद होगये वैसे ही उस समय निर्ग्रंथ धर्ममे भेदरूप बुद्ध धर्म होगया था। पाली पुस्तकोंका बौद्ध धर्म प्रचलित बौद्ध धर्मसे विलक्षण है। यह बात दूसरे पश्चिमीय विद्वानोंने भी मानी है।

(1) Sacred book of the East Vol XI 1889—by T W Rys Davids, Max Muller—

Intro Page 22-Budhism of Pali Pitakas is not only a quite different thing from Budhism as hitherto commonly received but is autogo nistic to it

अर्थात्–इस पाली पिटकोंका बौद्ध धर्म साधारण अबतक प्रचलित बौद्ध धर्मसे मात्र बिलकुल भिन्न ही नहीं है, किन्तु उससे विरुद्ध है।

(2) Life of the Budha by Edward J Thomas M A (1927) P 204 They all agree in holding that primitive teaching must have been something different from what the earliest scriptures and commentatus thought it was

अर्थात्–इस बातसे सब सहमत हैं कि प्राचीन शिक्षा अवश्य उससे भिन्न है जो प्राचीन ग्रंथ और उसके टीकाकारोंने समझ लिया था।

बौद्ध भारतीय भिक्षु श्री राहुल सांकृत्यायन लिखित बुद्धचर्या हिंदीमें प्रगट है। पृ० ४८१ सामगामसुत्त कहता है कि जब गौतम बुद्ध ७७ वर्षके थे तब महावीरस्वामीका निर्वाण ७२ वर्षमें हुआ था। जैन शास्त्रोंसे प्रगट है कि महावीरस्वामीने ४२ वर्षकी आयु तक अपना उपदेश नहीं दिया था। जब गौतम बुद्ध ४७ वर्षके थे तब महावीरस्वामीने अपना उपदेश प्रारम्भ किया। गौतम बुद्धने २९ वर्षकी आयुमें घर छोड़ा। छ वर्ष साधना किया। ३५ वर्षकी आयुमें उपदेश प्रारम्भ किया। इमसे प्रगट है कि महावीर स्वामीका उपदेश १२ वर्ष पीछे प्रगट हुआ तब इनके पहले श्री पार्श्वनाथ तीर्थंकरका ही उपदेश प्रचलित था। उसके अनुसार ही बुद्धने जैन चारित्रको पाला। जैसी असहनीय कठिन तपस्या बुद्धने की ऐसी आज्ञा जैन शास्त्रोंमें नहीं है। चातुर्यामरूप उपदेश

है कि आत्म रमणता बढ़े उतना ही बाहरी उपवासादि तप करो। गौतमने मर्यादा रहित किया तप घबड़ाकर उसे छोड़ दिया और जैनोंके मध्यम मार्गके समान श्रावकका सरल मार्ग प्रचलित किया।

पाली सूत्रोंके पढ़नेसे एक जैन विद्यार्थीको वैराग्यका अद्भुत आनन्द आता है व स्वानुभवपर लक्ष्य जाता है, ऐसा समझकर मैंने मज्झिमनिकायके चुने हुए २५ सूत्रोंको इस पुस्तकमें श्री राहुल कृत हिंदी व्याख्याके अनुसार देकर उनका भावार्थ जैन सिद्धांतसे मिलान किया है। इसको ध्यानपूर्वक पढनेसे जैनोंको और बौद्धोंको तथा हरएक तत्वखोजीको बड़ा ही लाभ व आनन्द होगा। उचित यह है कि जैनोंको पाली बौद्ध साहित्यका और बौद्धोंको जैनोंके प्राकृत और संस्कृत साहित्यका परस्पर पठन पाठन करना चाहिये। यदि मांसाहारका प्रचार बंद जाय तो जैन और बौद्धोंके साथ बहुत कुछ एकता होसक्ती है। पाठकगण इस पुस्तकका रस लेकर मेरे परिश्रमको सफल करें ऐसी प्रार्थना है।

हिसार (पंजाब)
३-१२-१९३६

ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद जैन।

॥ ॐ ॥

संक्षिप्त परिचय–

धर्मपरायणा श्रीमती ज्वालादेवीजी जैन–हिसार।

यह "जैन बौद्ध तत्वज्ञान" नामक बहुमूल्य पुस्तक जो "जैनमित्र" के ३८वें वर्षके ग्राहकोंके हाथोंमें उपहारके रूपमें प्रस्तुत है, वह **श्रीमती ज्वालादेवीजी, धर्मपत्नी ला० ज्वालाप्रसादजी व पूज्य माता ला० महावीरप्रसादजी वकीलकी** ओरसे दी जारही है।

श्रीमतीजीका जन्म विक्रम सवत् १९४०में **झज्झर** (रोहतक) में हुवा था। आपके पिता **ला० सोहनलालजी** वहांपर अर्जी नवीसीका काम करते थे। उस समय जैनसमाजमें स्त्रीशिक्षाकी तरफ बहुत कम ध्यान दिया जाता था, इसी कारण श्रीमतीजी भी शिक्षा ग्रहण न कर सकीं। खेद है कि आपके पितृगृहमें इससमय कोई जीवित नहीं है। मात्र आपकी एक बहिन है, जो कि सोनीपतमें व्याही हुई है।

आपका विवाह सोलह वर्षकी आयुमें ला० ज्वालाप्रसादजी जैन हिसार वालोंके साथ हुआ था। लालाजी असली रहनेवाले **रोहतकके** थे। वहां मोहल्ला **'पीपवाड़ा'** में इनका कुटुम्ब रहता है जो कि **'हाटवाले'** कहलाते हैं। वहां इनके लगभग बीस घर होंगे। वे प्रायः सभी बड़े धर्मप्रेमी और शुद्ध आचरणवाले साधारण स्थितिके गृहस्थ हैं।

परिषदके उत्साही और प्रसिद्ध कार्यकर्ता ला० तनसुखरायजी जैन, जो कि तिलक बीमा कंपनी देहलीके मैनेजिंग डायरेक्टर है, वह इसी खानदानमेंसे है। आप जैन समाजके निर्भीक और ठोस कार्य करनेवाले कर्मठ युवक है। अभी हालमें आपने जैन युवकोंकी बेकारीको देखकर दस्तकारीकी शिक्षा प्राप्त करनेवाले १० छात्रोंको १ वर्षतक भोजनादि निवाह खर्च देनेकी सूचना प्रकाशित की थी, जिसके मुफस्वरूप कितने ही युवक छात्र देहलीमें आपके द्वारा उक्त शिक्षा प्राप्त कर रहे है। जैन समाजको आपसे बड़ी २ आशायें है, और समय आनेपर वे पूर्ण भी अवश्य होंगी।

इनके अतिरिक्त ला० मानसिंहजी, ला० प्रभूदयालजी, ला० अमीरसिंहजी, ला० गणपतिरायजी, ला० टेकचंदजी आदि इस खानदानके धर्मप्रेमी व्यक्ति है। इनका अपने खान्दानका पीथवाड़ामें एक विशाल दि० जैन मंदिरजी भी है, जोकि अपने ही व्ययसे बनाया गया है। इस खान्दानमें शिक्षाकी तरफ विशेष रुचि है जिसके फलस्वरूप कई ग्रेजुएट और वकील है।

ला०ज्वालाप्रसादजीके पिता चार भाई थे। १–ला०कुंदनलालजी, २–ला० अमनसिंहजी, ३–ला० केदारनाथजी, ४–ला० सरदार सिंहजी। जिनमे ला० कुन्दनलालजीके सुपुत्र ला० मानसिंहजी, ला० अमनसिंहजीके सुपुत्र ला० मनफूलसिंहजी व ला० वीरभान सिंहजी है। ला० केदारनाथजीके सुपुत्र ला० ज्वालाप्रसादजी तथा ला० घासीरामजी और ला० सरदारसिंहजीके सुपुत्र ला० स्वरूप-सिंहजी, ला० भगतसिंहजी और गुलाबसिंहजी हैं। जिनमेंसे ला०

आपने पढ़ाकर वकील ग्ना लिया है, और अब दोनों भाई वकालत करते हैं। आपने अपनी माताजीकी आज्ञानुसार करीब १५, १६ हजारकी लागतसे एक सुन्दर और विशाल मकान भी रहनेके लिये बना लिया है। रोहतक निवासी ला० अनूपसिंहजीकी सुपुत्रीके साथ श्री० शान्तिप्रसादजीका भी विवाह होगया है। अब श्रीमतीजीकी आज्ञानुसार उनके दोनों पुत्र तथा उनकी स्त्रियें कार्य संचालन करती हुई आपसमें बड़े प्रेमसे रहती हैं। श्री० महावीरप्रसादजीके मात्र तीन कन्यायें हैं जिनमें बड़ी कन्या (राजदुलारीदेवी) आठवीं कक्षा उत्तीर्ण करनेके अतिरिक्त इस वर्ष पञ्जाबकी हिन्दीरत्न परीक्षामें भी उत्तीर्णता प्राप्त कर चुकी है। छोटी कन्या पांचवीं कक्षामें पढ़ रही है तीसरी अभी छोटी है।

श्रीमतीजीकी एक विधवा ननद श्रीमती दिलभरीदेवी (पतिदेवकी बहिन) हैं, जो कि आपके पास ही रहती हैं। श्रीमतीजी १०—१२ वर्षसे चातुर्मासके दिनोंमें एकबार ही भोजन करती हैं किन्तु पिछले डेढ़ सालसे तो हमेशा ही एक दफा भोजन करती हैं, इसके अतिरिक्त बेला, तेला आदि प्रकारके व्रत उपवास समय२ पर करती रहती हैं। आपका हरसमय धर्मध्यानमें चित्त रहता है। जैन बद्री मूलबद्रीको छोड़कर आपने अपनी ननदके साथ समस्त जैन तीर्थोंकी यात्रा कीहुई है। श्री सम्मेदशिखरजीकी यात्रा तो आपने दोबार की है। गतवर्ष आपकी आज्ञानुसार ही आपके पुत्र बा० महावीरप्रसादजीने श्री० ब्र० सीतलप्रसादजीका हिसारमें चातुर्मास करवाया था, जिससे सभी भाइयोंको बड़ा धर्मलाभ हुआ।

हिसारमें बा० महावीरप्रसादजी वकील एक उत्साही और सफल कार्यकर्ता हैं। हिसारकी जैन समाजका कोई भी कार्य आपकी सम्मतिके विना नहीं होता। अजैन समाजमें भी आपका काफी सम्मान है। इस वर्ष स्थानीय रामलीला कमेटीने सर्वसम्मतिसे आपको सभापति चुना है। शहरके प्रत्येक कार्यमें आप काफी हिस्सा लेते हैं। जैन समाजके कार्योंमें तो आप खास तौरपर भाग लेते हैं। आपके विचार बड़े उन्नत और धार्मिक हैं। हिसारकी जैन समाजको आपसे बड़ी२ आशाएं हैं, और वे कभी अवश्य पूर्ण भी होंगी। आपमें सबसे बड़ी बात यह है कि आपके हृदयमें साम्प्रदायिकता नहीं है जिसके फलस्वरूप आप प्रत्येक सम्प्रदायके कार्योंमें विना किसी भेदभावके सहायता देते और हिस्सा लेते हैं। आप प्रतिवर्ष काफी दान भी देते रहते हैं। जैन अजैन सभी प्रकारके चन्दोंमें शक्तिपूर्वक सहायता देते हैं। गतवर्ष आपने श्री० ब्र० सीतलप्रसादजी द्वारा लिखित 'आत्मोन्नति या खुदकी तरक्की' नामका ट्रैक्ट छपाकर वितरण कराया था। और इस वर्ष भी एक ट्रैक्ट छपाकर वितरण किया जाचुका है। आपने करीब ३००)–४००) की लागतसे अपने बाबा ला० मामारसिंहजीकी स्मृतिमें "अपाहिज आश्रम" सिरसा (हिसार) में एक सुन्दर कमरा भी बनवाया है। आपके ही उद्योगसे गतवर्ष ब्र०जीके चातुर्मासके अवसरपर सिरसा (हिसार) में श्री मंदिरजीकी आवश्यकता देखकर एक दि० जैन मंदिर बनानेके विषयमें विचार हुआ था, उस समय आपकी ही प्रेरणासे ला० केदारनाथजी बजाज हिसारने १०००) और बा०

फूलचंदजी वकील हिसारने ५००) प्रदान किये थे। श्री मंदिरजीके लिये मौकेकी जमीन मिल जाने पर शीघ्र ही मंदिर निर्माणका कार्य प्रारम्भ किया जायगा।

इसमें सन्देह नहीं कि बा० महावीरप्रसादजी वकील आज कलके पाश्चात्य (इंगरेजी) शिक्षा प्राप्त युवकोंमें अपवाद स्वरूप है। वस्तुतः आप अपनी योग्य माताके सुयोग पुत्र हैं। आपकी माताजी (श्रीमती ज्वालादेवीजी) बड़ी नेक और समझदार महिला है। श्रीमतीजी प्रारम्भसे ही अपने दोनों पुत्रोंको धार्मिक शिक्षाकी ओर प्रेरणा करती रही हैं, इसीका यह फल है। ऐसी माताओंको धन्य है कि जो इस प्रकार अपने पुत्रोंको धार्मिक बना देती हैं। अन्तमें हमारी भावना है कि श्रीमतीजी इसी प्रकार शुभ कार्योंमें प्रवृत्ति रखती रहेंगी और साथ ही अपने पुत्रोंको भी धार्मिक कार्योंकी तरफ प्रेरणा करती हुई अपने जीवनके शेष समयको व्यतीत करेंगी।

निवेदक—

प्रेमकुटीर,
हिसार (पंजाब)
ता ९-११-३७ ई०

कटेर (ग्वालियर) निवासी
वटेश्वरदयाल वकेवरिया शास्त्री,
(सिद्धान्तभूषण, विद्यालंकार)

श्रीमती ज्वालादेवीजी जैन,
पूज्य माताजी, श्री० बा० महावीरप्रसादजी जैन वकील
हिसार (पंजाब)।

शुद्धिपत्र।

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
४	१९	सर्व नय	सर्व रूप
८	१४	उत्पन्न भव	उत्पन्न भव अ सव बढ़ता है
१२	१२	सेवास्रव	सर्वास्रव
१४	१७	अज्ञान रोग	अज्ञान होने
१५	१८	प्रीएि	प्रीति
१९	६	मुक्त	युक्त
१९	१४	मुक्त	युक्त
२०	६	मुक्त	युक्त
२०	९	तिच	चित्त
२३	१७	जिससे	जिसे
२५	३	मान	भाव
२६	६	न कि	जिससे
३२	१४	हमने	इसने
३५	७	विप्य	विपर्यय
३५	२३	कर	करे
३७	१२	मुक्त	युक्त
३८	१६	निस्तण	निस्सरण
४१	३	निर्मल	निर्बल

पृ०	ला०	अशुद्ध	शुद्ध
४१	१२	मुक्त	युक्त
४६	१५	वानापने	नानापने
४६	१६	आनन्द आयतन	आनन्त आयतन
४७	१५	सशयवान	सशयवान न
५५	१६	अनादि	आनन्द
५६	१२	काम	लोभ
५६	१६	अस्थि (मैंद)	अस्मि (मैं हूं)
५७	३	सन्तों	सत्वों
५७	८	आर्द	आर्य आष्टागिक
५८	८	वालकपना	वाल पकना
६३	६	केल	वेदना
६३	२०	ससार	संस्कार
६८	१८	अन्यथा	तथा
६९	१४	तव	तत्त्व
७४	५	अज्ञात	अजात
८२	१६	वचन	विषय
८९	२	इष्ट	दृष्टि
८९	३	आर्त	आत्म
८९	१०	अविज्ञा	अविद्या
९०	२०	आत्म	आस
९८	७	काय	काम
११०	१५	मिथ्यादृष्टी	सम्यग्दृष्टी

है। वह पानीको, तेजको, वायुको, देवताओंको अनंत आकाशको, अनंत विज्ञानको, देखे हुएको, सुने हुएको, स्मरणमें प्राप्तको, जाने गएको एकपनेको, नानापनेका, सर्वको तथा निर्वाणको भी अभिनन्दन नहीं करता है।

तथागत बुद्ध भी ऐसा ही ज्ञान रखता है क्योंकि वह जानता है कि तृष्णा दुःखोंका मूल है। तथा जो भव भवमें जन्म लेता है उसको जरा व मरण अवश्यभावी है। इसलिये तथागत बुद्ध सर्व ही तृष्णाके क्षयसे विरागसे, निरोधसे, त्यागसे, विसर्जनसे यथार्थ परम ज्ञानके जानकार हैं।

भावार्थ—मूल पर्याय सूत्रका यह भाव है कि एक अनिर्वचनीय अनुभवगम्य तत्व ही सार है। पर पदार्थ सर्व त्यागने योग्य हैं। कर्म, करण अपादान सम्बन्ध इन चार कारकोंसे पर पदार्थमें यहां तक सम्बन्ध हटाया है कि पृथ्वी जल, अग्नि वायु इन चार पदार्थोंसे बने हुए दृश्य जगतको देखे व सुने हुए व स्मरणमें आए हुए व ज्ञानमें तिष्ठे हुए विकल्पोंको सर्व आकाशका सर्व इन्द्रिय व मन द्वारा प्राप्त विज्ञानको अपना नहीं है यह बताकर निर्वाणके साथ भी रागभावके विकल्पको मिटाया है। सर्व प्रकार रागद्वेष मोहको सर्व प्रकार तृष्णाको हटा देनेपर जो कुछ भी शेष रहता है वही सत्य तत्व है। इसीलिये ऐसे ज्ञाताको क्षीणास्रव कृतकृत्य सत्यज्ञानको प्राप्त व सम्यग्ज्ञान द्वारा मुक्त कहा है। यह दशा वह है जिसको समाधि प्राप्त दशा कहते हैं, जहां ऐसा मगन होता है कि मैं या तू का व क्या मैं हूं क्या नहीं हूं इस बातका कुछ भी चिन्तवन नहीं होता है। चिन्तवन करना मनका स्वभाव है सूक्ष्म तत्व मनसे बाहर है। जो

सर्व प्रकारके चिन्तवनको छोडता है वही उस स्वानुभवको पहुंचता है। जिससे मूल पदार्थ जो आप है सो अपने हीको प्राप्त होजाता है। यही निर्वाणका मार्ग है व इसीकी पूर्णता निर्वाण है।

बौद्ध ग्रंथोंमें निर्वाणका मार्ग आठ प्रकार बताया है। १–सम्यग्दर्शन, २–सम्यक् सङ्कल्प (ज्ञान), ३–सम्यक् वचन, ४–सम्यक् कर्म, ५–सम्यक् आजीविका, ६–सम्यक व्यायाम, ७–सम्यक् स्मृति, ८–सम्यक समाधि।

सम्यक् समाधिमें पहुंचनेसे स्मरणका विकल्प भी समाधिके सागरमें डूब जाता है। यही मार्ग है जिसके सर्व आस्रव या राग द्वेष मोह क्षय होजाते हैं और यह निर्वाणरूप या मुक्त होजाता है। वह निर्वाण कैसा है, उसके लिये इसी मज्झिमनिकायके अरिय परि एषन सूत्र नं० २६ से विदित है कि वह "अजातं, अनुत्तर, योगक्खेम, अजर अव्याधि, अमत, अशोक, असङ्किलिट्ठ निब्बाण अधिगतो अधिगतोखो मे अयधम्मो दुद्दसो, दुरन बाधो, संतो, पणातो, अतक्कावचरो, निपुणो पण्डित वेदनीयो।" निर्वाण अजात है पैदा नहीं हुई है अर्थात स्वाभाविक है, अनुपम है, परम कल्याणरूप है या ध्यान द्वारा क्षेमरूप है, जरा रहित है, व्याधि रहित है, मरण रहित है, अमर है, शोक व क्लेशोंसे रहित है। मैंने उस धर्मको जान लिया जो धर्म गंभीर है, जिसका देखना जानना कठिन है, जो शांत है, उत्तम है, तर्कसे बाहर है, निपुण है, पण्डितोंके द्वारा अनुभवगम्य है। पाली कोषमें निर्वाणके नीचे लिखे विशेषण हैं–

मुखो (मुख्य), निरोधो (संसारका निरोध), निब्बान, दीप, तण्हक्खय (तृष्णाका क्षय), तान (रक्षक), लेन (लीनता) अरूप,

सर्त (शांत) असखत (असस्कृत या सहज स्वाभाविक) सिव (आन दरूप) अमुत्त (अमूर्तीक), सुदुद्दस (कठिनतासे अनुभव योग्य) परा यन (श्रेष्ठ मार्ग) साण (शरणभूत), निपुण, अनन्त, अक्खर (अक्षय), दुखक्खस (दुःखोंका नाश), अब्यापज्झ (सत्य), अनालय (उच्चगृह), विवट्ट (संसाररहित, खेम केवल अपवग्गो (अपवर्ग) विरागो, पणीत (उत्तम), अच्चुत पद (अविनाशी पद), पार, योगक्खेम मुत्ति (मुक्ति), विसुद्धि, विमुत्ति, (विमुक्ति) असखत धातु असस्कृत धातु) सुद्धि, निव्वुत्ति (निवृत्ति) इन विशेषणोंका विशेष्य क्या है। वही निर्वाण है। वह क्या है, सो भी अनुभवगम्य है।

यह कोई अभावरूप पदार्थ नहीं होसक्ता। जो अभाव रूप कुछ नहीं मानते हैं उनके लिये मुझे यह प्रगट कर देना है कि अभावके या शून्यके ये विशेषण नहीं होसक्ते कि निर्वाण अजात है व अमृत है व अक्षय है व शांत है व अनंत है व पंडितोंके द्वारा अनुभवगम्य है। कोई भी बुद्धिमान बिल्कुल अभाव या शून्यकी ऐसी तारीफ नहीं कर सक्ता है। अजात व अमर ये दो शब्द किसी गुप्त तत्वको बताते हैं जो न कभी जन्मता है न मरता है वह सिवाय शुद्ध आत्मतत्वके और कोई नहीं होसक्ता। शांति व आनंद अपनेमें लीन होनेसे ही आता है। अभावरूप निर्वाणके लिये कोई उद्यम नहीं कर सक्ता। इन्द्रियों व मनके द्वारा जाननेयोग्य सर्व रूप वेदना, संज्ञा, संस्कार व विज्ञान ही संसार है, इनसे परे जो कोई है वही निर्वाण है तथा वही शुद्धात्मा है। ऐसा ही जैन सिद्धांत भी मानता है।

The doctrine of the Budha by George Grimm Leipzic Germany 1926

Page 350-351 Bliss is Nibhan, Nibhan highest bliss (Dhammapada)

आनन्द निर्वाण है, आनन्द निर्वाण है, निर्वाण परम सुख है ऐसा धम्मपदमें यह बात ग्रिम साहबने अपनी पुस्तक बुद्ध शिक्षामें लिखी है।

Some sayings of Budha-by Woodword Ceylon 1925.

Page --1-4 Search after the unsurpassed perfect security which is Nibhan Goal is incomparable security which is Nibban

अनुपम व पूर्ण शरणकी खोज करो, यही निर्वाण है। अनुपम शरण निर्वाण है, ऐसा उद्देश्य बनाओ। यह बात वुडवर्ड साहबने अपनी बुद्धवचन पुस्तकमें लिखी है।

The life of Budha by Edward J Thomas 1927

Page 187-It is unnecessary to discuss the View that Nirvan means the extinction of the individual, no such View has ever been supported from the texts

भावार्थ–यह तर्क करना व्यर्थ है कि निर्वाणमें व्यक्तिका नाश है, बौद्ध ग्रथोंमें यह बात सिद्ध नहीं होती है।

मैंने भी जितना बौद्ध साहित्य देखा है उससे निर्वाणका वही स्वरूप झलकता है जैसा जैन सिद्धातने माना है कि वह एक अनुभवगम्य अविनाशी आनन्दमय परमशात पदार्थ है।

जैन सिद्धातमें भी मोक्षमार्ग सम्यक्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र तीन कहे हैं, जो बौद्धोक्त अष्टाग मार्गसे मिल जाते हैं। सम्यक्दर्शनमें सम्यक्दर्शन गर्भित है, सम्यग्ज्ञानमें सम्यक् संकल्प गर्भित है, सम्यकचारित्रमें शेष छ गर्भित है। जैनसिद्धातमें निश्चय सम्यक्चारित्र आत्मध्यान व समाधिको कहते हैं। इसके लिये जो

कारण है उसको व्यवहार चारित्र कहते हैं। जैसे मन, वचन, कायकी शुद्धि शुद्ध भोजन, तपका प्रयत्न तथा तत्वका स्मरण। जिस तरह इस मूल पयाय सूत्रमें समाधिक लाभके लिये सर्व अपनेसे परसे मोह छुड़ाया है उसी तरह जैन सिद्धांतमें वर्णन है।

जैन सिद्धांतमें समानता।

श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसारमें कहते हैं–

अहमेद एदमहं, अहमेदस्सेव होमि मम एदं।
अण्णं जं परदव्वं, सचित्ताचित्तमिस्सं वा॥ २५॥
आसि मम पुव्वमेदं अहमेदं चावि पुव्वकालम्हि।
होहिदि पुणोवि मज्झं, अहमेदं चावि होस्सामि॥ २६॥
एयत्तु असभूदं आत्मविकप्पं करेदि सम्मूढो।
भूदत्थं जाणंतो, ण करेदि दु तं असंमूढो॥ २७॥

भावार्थ–आपसे जुदे जितने भी पर द्रव्य है चाहे वे सचित्त स्त्री पुत्र मित्र आदि हों या अचित्त सोना चांदी आदि हों या मिश्र नगर देशादि हों, उनके सम्बन्धमें यह विकल्प करना कि मैं यह हूं या यह मुझ रूप है, मैं इसका हूं या यह मेरा है, यह पहले मेरा था या मैं पूर्वकालमें इस रूप था या मेरा आगामी होजायगा या मैं इस रूप होजाऊंगा, अज्ञानी ऐसा मिथ्या विकल्प किया करता है, ज्ञानी यथार्थ तत्वको जानता हुआ इन झूठे विकल्पोंको नहीं करता है। यहां सचित्त, अचित्त, मिश्रमें सर्व अपनेसे जुदे पदार्थ आगए हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति व पशुजाति, मानवजाति देवजाति व प्राणरहित सर्व पुद्गल परमाणु आदि आकाश, काल, धर्म अधर्म द्रव्य व संसारी जीवोंके सर्व प्रकारके शुभ व अशुभ भाव क

दशाए-केवल आप अकेला बच गया। वही मैं हूं वही मैं था वही मैं रहूंगा। मेरे सिवाय अन्य मैं नहीं हूं, न कभी था न कभी हूंगा। जैसे मूल पर्याय सूत्रमें विवेक या भेदविज्ञानको बताया है वैसा ही यहा बताया है। समयसारमें और भी स्पष्ट कर दिया है-

अहमिक्को खलु सुद्धो, दंसणणाणमइओ सयारूवी।
णवि अत्थि मज्झ किंचिव अण्णं परमाणुमित्तं वि ॥ ४३ ॥

भावार्थ-मैं एक अकेला हूं, निश्चयसे शुद्ध हूं, दर्शन व ज्ञान स्वरूप हूं, सदा ही अमूर्तीक हूं, अन्य परमाणु मात्र भी मेरा कोई नहीं है। श्री पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं-

स्वबुद्धया यावद्गृह्णीयात्कायवाक् चेतसां त्रयम्।
संसारस्तावदेतेषां भेदाभ्यासे तु निर्वृतिः ॥ ६२ ॥

भावार्थ-जबतक मन, वचन व काय इन तीनोंमेंसे किसीको भी आत्मबुद्धिसे मानता रहेगा वहातक संसार है, भेदज्ञान होनेपर मुक्ति होजायगी। यहा मन वचन कायमें सर्व जगतका प्रपञ्च आगया। क्योंकि विचार करनेवाला मन है। वचनोंसे कहा जाता है, शरीरसे काम किया जाता है। मोक्षका उपाय भेद विज्ञान ही है। ऐसा अमृतचद्र आचार्य समयसारकलशमें कहते हैं-

भावयेद्भेदविज्ञानमिदमच्छिन्नधारया।
तावद्यावत्पराच्च्युत्वा ज्ञानं ज्ञाने प्रतिष्ठते ॥ ६-६ ॥

भावार्थ-भेदविज्ञानकी भावना लगातार उस समय तक करते रहो जबतक ज्ञान परसे छूटकर ज्ञानमें प्रतिष्ठाको न पावे अर्थात् जबतक शुद्ध पूर्ण ज्ञान न हो।

इस मूल पर्याय सूत्रमें इसी भेदविज्ञानको बताया है।

(२) मज्झिमनिकाय सव्वासवसुत्त या सर्वास्रवसूत्र।

इस सूत्रमें सारे आस्रवोंके संवरका उपदेश गौतमबुद्धने दिया है। आस्रव और संवर शब्द जैन सिद्धांतमें शब्दोंके यथार्थ अर्थमें दिखलाए गए हैं। जैनसिद्धांतमें परमाणुओंके स्कंध बनते रहते हैं उनमेंसे सूक्ष्म स्कंध कार्माणवर्गणाएँ हैं जो सर्वत्र लोकमें व्याप्त हैं। मन, वचन, कायकी क्रिया होनेसे ये अपने पास खिंच आती हैं और पाप या पुण्यरूपमें बंध जाती हैं। जिन भावोंसे ये आती हैं उनको भावास्रव कहते हैं व उनके आनेको द्रव्यास्रव कहते हैं। उनके विरोधी रोकनेवाले भावोंको भावसंवर कहते हैं और कर्मवर्गणाओंके रुक जानेको द्रव्यसंवर कहते हैं। इस बौद्ध सूत्रमें भावास्रवोंका कथन इस तरहपर किया है—भिक्षुओ! जिन धर्मोंके मनमें करनेसे उसके भीतर अनुत्पन्न काम आस्रव (कामनारूपी मल) उत्पन्न होता है और उत्पन्न काम आस्रव बढ़ता है, उत्पन्न भव आस्रव (जन्मनेकी इच्छारूपी मल) उत्पन्न होता है और उत्पन्न भव अनुत्पन्न अविद्या आस्रव (अज्ञानरूपी मल) उत्पन्न होता है और उत्पन्न अविद्या आस्रव बढ़ता है इन धर्मोंको नहीं करना योग्य है।

नोट—यहां काम भाव जन्म भाव व अज्ञान भावको मूल भावास्रव बताकर समाधि भावमें ला पहुंचाया है, जहां निष्काम भाव है न जन्मनेकी इच्छा है न आत्मज्ञानको छोड़कर कोई आराम है। निर्विकल्प समाधिके भीतर प्रवेश कराया है। इसी लिये इसी सूत्रमें कहा है कि जो इस समाधिके बाहर होता है वह छः दृष्टियोंके भीतर फंस जाता है।

"(१) मेरा आत्मा है, (२) मेरे भीतर आत्मा नहीं है, (३) आत्माको ही आत्मा समझता हू (४) आत्माको ही अनात्मा समझता हू, (५) अनात्माको ही आत्मा समझता हू, (६) जो यह मेरा आत्मा अनुभव कर्ता (वेदक) तथा अनुभव करने योग्य (वेद्य) और तहां तहां (अपने) भले बुरे कर्मोंके विपाकको अनुभव करता है वह यह मेरा आत्मा नित्य, ध्रुव, शाश्वत, अपरिवर्तनशील (अविपरिणाम धर्मा) है, अनन्त वर्षों तक वैसा ही रहेगा। भिक्षुओ! इसे कहते हैं दृष्टिगत (मतवाद), दृष्टिगहन (दृष्टिका घना जगल), दृष्टिकी मरुभूमि (दृष्टिका तार), दृष्टिका काटा (दृष्टि विशूक), दृष्टिका फंदा (दृष्टि सयोजन)। भिक्षुओ! दृष्टिके फदेमें फसा अज्ञ अनाड़ी पुरुष जन्म जरा मरण शोक, रोदन क्रदन, दु ख दुर्मनस्कता और हैरानियोंमें नहीं छूटता, दु खसे परिमुक्त नहीं होता।"

नोट–ऊपरकी छ दृष्टियोंका विचार जहातक रहेगा वहातक स्वानुभव नहीं होगा। मैं हू या मैं नहीं हू, क्या हू क्या नहीं हू, कैसा था कैसा रहूगा, इत्यादि सर्व वह विकल्पजाल है जिसके भीतर फमनेसे रागद्वेष मोह नहीं दूर होता। वीतरागभाव नहीं पैदा होता है। इस कथनको पढ़कर कोई कोई ऐसा मतलब लगाते हैं कि गौतमबुद्ध किसी शुद्धबुद्धपूर्ण एक आत्माको जो निर्वाण स्वरूप है उसको भी नहीं मानते थे। जो ऐसा मानेगा उसके मतमें निर्वाण अभाव रूप होजायगा। यदि ये आत्माका सर्वथा अभाव मानते तो मेरे भीतर आत्मा नहीं है, इस दूसरी दृष्टिको नहीं कहते। वास्तवमें यहा सर्व विचारोंके अभावकी तरफ सकेत है।

यही बात जैनसिद्धातमें समाधिशतकमें इस प्रकार बताई है—

रति, (३) प्रमाद, (४) क्रोधादि कषाय, (५) मन वचन कायकी क्रिया। जिसको आत्मतत्वका सच्चा श्रद्धान होगया है कि वह निर्वाणरूप है, सर्व सांसारिक प्रपंचोंसे शून्य है, रागादिरहित है, परमशांत है, परमानंदरूप है, अनुभवगम्य है उसीके हो सम्यग्दर्शन गुण प्रगट होता है तब उसके भीतर पांच दोष नहीं रहने चाहिये। (१) शंका–तत्वमें संदेह। (२) कांक्षा–किसी भी विषयभोगकी इच्छा नहीं, अविनाशी निर्वाणको ही उपादेय या ग्रहणयोग्य न मानके सांसारिक सुखकी वांछाका होना, (३) विचिकित्सा–ग्लानि–सर्व वस्तुओंको यथार्थ रूपसे समझकर किसीसे द्वेषभाव रखना (४) जो सम्यग्दर्शनसे विरुद्ध मिथ्यादर्शनको रखता है उसकी मनमें प्रशंसा करना (५) उसको वचनसे स्तुति करना।

इसी सेवासवसूत्रमें है कि भिक्षुओं! कौनसे संवरद्वारा महातत्व क्षय है। भिक्षुओं–यहां कोई भिक्षु ठीकसे जानकर चक्षु इंद्रियमें संयम करके विहरता है तब चक्षु इंद्रियसे असंयम करके विहरनेपर जो पीड़ा व दाह उत्पन्न करनेवाले आसव हो तो वे चक्षु इंद्रियसे संवर युक्त होनेपर विहार करते नहीं होते। इसी तरह श्रोत्र इंद्रिय घ्राण इंद्रिय, जिह्वा इंद्रिय, काय (स्पर्शन) इंद्रिय, मन इंद्रियमें संयम करके विहरनेसे पीड़ा व दाहकारक आसव उत्पन्न नहीं होते।"

भावार्थ–यहां यह बताया है कि पांच इंद्रिय तथा मनके विषयोंमें रागभाव करनेसे जो आस्रव भाव होते हैं वे आस्रव पांच इंद्रिय और मनके रोक लेनेपर नहीं होते हैं।

जैन सिद्धांतमें भी इंद्रियोंके व मनके विषयोंमें रमनेसे आस्रव

होना बताया है व उनके रोकनेसे संवर होता है ऐसा दिखाया है। इन छहोंके रोकनेपर ही समाधि होती है।

श्री पूज्यपादस्वामी समाधिशतकमें कहते हैं–

सर्वेन्द्रियाणि संयम्य स्तिमितेनान्तरात्मना।
यत्क्षणं पश्यतो भाति तत्तत्त्वं परमात्मनः ॥ ३० ॥

भावार्थ–जब सर्व इन्द्रियोंको संयममें लाकर भीतर स्थिर होकर अन्तरात्मा या सम्यग्दृष्टि जिस क्षण जो कुछ भी अनुभव करता है वही परमात्माका या शुद्धात्माका स्वरूप है।

आगे इसी सर्वासवसूत्रमें कहा है–भिक्षुओ! "यहां भिक्षु ठीकसे जानकर सर्दी गर्मी, भूख प्यास, मक्खी मच्छर, हवा धूप, सरी, सर्पा' दिक आघातको सहनेमें समर्थ होता है वाणीसे निकले दुर्वचन तथा शरीरमें उत्पन्न ऐसी दुःखमय, तीव्र तीक्ष्ण कटुक अवाछित, अरुचिकर प्राणहर पीड़ाओंको स्वागत करनेवाले स्वभावका होता है। जिनके अधिवासना न करनेसे (न सहनेसे) दाह और पीड़ा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं और अधिवासना करनेसे वे उत्पन्न नहीं होते। यह अधिवासना द्वारा प्रहातव्य आस्रव कहे जाते हैं।"

यहां पर परीषहोंके जीतनेको संवर भाव कहा गया है। यही बात जैनसिद्धांतमें कही है। वहां संवरके लिये श्री उमास्वामी महाराजने तत्वार्थसूत्रमें कहा है–

"आस्रवनिरोधः संवरः ॥ १ ॥ स गुप्तिसमितिधर्मानुप्रेक्षा-परीषहजयचारित्रैः" ॥ २–अ० ९ ॥

भावार्थ–आस्रवका रोकना संवर है। वह संवर गुप्ति (मन, वचन, कायको वश रखना), समिति (भलेप्रकार वर्तना, देखकर

सहना आदि), धर्म (क्रोधादिको जीतकर उत्तम क्षमा आदि), अनुप्रेक्षा (ममार अनित्य है इत्यादि भावना) परीषह जय (कष्टोंको जीतना) तथा चारित्र (योग्य व्यहार व निश्चय चारित्र समाधिभाव) से होता है ।

" क्षुत्पिपासाशीतोष्णदंशमशकनाग्न्यारतिस्त्रीचर्यानिषद्याशय्याक्रोशवधयाचनाऽलाभरोगतृणस्पर्शमलसत्कारपुरस्कारप्रज्ञाऽज्ञानादर्शनानि ॥ ९-अ० ९॥

भावार्थ-नीचे लिखी बाइस बातोंको शांतिसे सहना चाहिये-(१) भूख, (२) प्यास, (३) सर्दी, (४) गर्मी (५) डांस मच्छर, (६) नग्नता, (७) अरति (ठीक मनोज्ञ वस्तु न होनेपर दुःख) (८) स्त्री (स्त्री द्वारा मनको डिगानेकी क्रिया), (९) चलनेका कष्ट, (१०) बैठनेका कष्ट, (११) सोनेका कष्ट, (१२) आक्रोश-गाली दुर्वचन, (१३ वध या मारे पीटे जानेका कष्ट, (१४) याचना (मांगना नहीं) (१५) अलाभ-भिक्षा न मिलनेपर खेद, (१६) रोग-पीड़ा, (१७) तृण स्पर्श-कांटेदार झाड़ीका स्पर्श (१८) मल-शरीरके मैले होनेपर ग्लानि (१९) आदर निरादर (२०) प्रज्ञा-बहु ज्ञान होनेपर घमंड (२१) अज्ञान-रोगपर खेद (२१) अदर्शन-ऋद्धि सिद्ध न होनेपर श्रद्धानका बिगाड़ना " जैन साधुगण इन बाईस बातोंको जीतते हैं तब न जीतनेसे जो आस्रव होता सो नहीं होता है ।

इसी सर्वास्रव सूत्रमें है कि भिक्षुओ ! कौनसे विनोदन (हटाने) द्वारा प्रहातव्य आस्रव है । भिक्षुओं ! यहां (एक) भिक्षु ठीकसे जानकार उत्पन्न हुए । काम वितर्क (काम वासना सम्बन्धी संकल्प विकल्प) का स्वागत नहीं करता, (उसे) छोड़ता है, हटाता है, अलग

करता है, मिटाता है, उत्पन्न हुए व्यापाद वितर्क (द्रोहके ख्याल) का, उत्पन्न हुए, विहिंसा वितर्क (अति हिंसाके ख्याल) का, पुन पुन उत्पन्न होनेवाले, पापी विचारों (धर्मों)का स्वागत नहीं करता है। भिक्षुओ! जिसके न हटनेसे दाह और पीड़ा देनेवाले आस्रव उत्पन्न होते हैं, और विनोद न करनेसे उत्पन्न नहीं होते। जैन सिद्धांतके कहे हुए आस्रव भावोंमें कषाय भी है जैसा ऊपर लिखा है कि मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग ये पाच आस्रवभाव है। क्रोध, मान, माया, लोभसे विचारोंको रोकनेसे कामभाव, द्वेषभाव, हिंसकभाव व अन्य पापमय भाव रुक जाते है। इसी सर्वास्रव सूत्रमें है कि भिक्षुओ! कौनसे भावना द्वारा प्रहातव्य आस्रव है? भिक्षुओं! यहा (एक) भिक्षु ठीकसे जानकर विवेकयुक्त, विराग युक्त, निरोधयुक्त मुक्ति परिणामवाले स्मृति सबोध्यगकी भावना करता है। ठीकसे जानकर स्मृति, धर्मविचय, वीर्यविचय, प्रीति, प्रश्रब्धि, समाधि, उपेक्षा सबोध्यगकी भावना करता है।

नोट-सबोधि परम ज्ञानको कहते है, उसके लिये जो अग उपयोगी हो उनको सबोध्यग कहते है, ये सात है-स्मृति (सत्यका स्मरण), धर्मविचय (धर्मका विचार) वीर्यविचय (अपनी शक्तिका उपयोग करनेका विचार), प्रीति (संतोष), प्रश्रब्धि (शांति), समाधि (चित्तकी एकाग्रता), उपेक्षा (वैराग्य)।

जैन सिद्धातमें संवरके कारणोंमें अनुप्रेक्षाको ऊपर कहा गया है। बारबार विचारनेको या भावना करनेको अनुप्रेक्षा कहते है।

वे भावनाए बारह है उनमें सर्वास्रव सूत्रमें कही हुई भावनाए

गर्भित होजाती है। १—अनित्य (समारकी अवस्थाए नाशवन्त हैं), २—अशरण (मरणसे कोई रक्षक नहीं है ३—ससार (समार दु ख मय है), ४—एकत्व (अकेले ही सुख दुःख भोगना पड़ता है और अकेला है सर्व कर्म आदि भिन्न है), ५—अन्यत्व (शरीरादि सब मुझसे भिन्न हैं) ६—अशुचित्व (मानवका यह शरीर महान अपवित्र है), ७—आस्रव (कर्मोंके अनेक क्या २ भाव है) ८—संवर (कर्मोंके रोकनेके क्या क्या भाव है) ९—निर्जरा (कर्मोंके क्षय करनेके क्या२ उपाय है १०—लोक (जगत जीव अजीव द्रव्योंका समूह अकृत्रिम व अनादि अनत है) ११—बोधिदुर्लभ (रत्नत्रय धर्मका मिलना दुर्लभ है) १२—धर्म (आत्माका स्वभाव धर्म है) । इन १२ भावनाओंके चिन्तवनसे वैराग्य छाजाता है—परिणाम शात होजाते है ।

नोट-पाठकगण देखेंगे कि आस्रवभाव ही ससार भ्रमणके कारण है व इनके रोकनेहीमें ससारका अन्त है । यह कथन जैन सिद्धात और बौद्ध सिद्धातका एकसा ही है । इस सर्वास्रव सूत्रके अनुसार जैन सिद्धातमें भावास्रवोंको बनाकर उनसे कर्म पुद्गल खिंच कर आता है, वे पुद्गल पाप या पुण्य रूपसे जीवके साथ चले आए हुए कार्माण शरीर या सूक्ष्म शरीरके साथ बध जाते हैं। और अपने विपाक पर फल देकर या विना फल दिये झड़ जाते हैं । यह कर्म सिद्धातकी बात यहा इस सूत्रमें नहीं है ।

जैन सिद्धातमें आस्रवभाव व सवरभाव ऊपर कहे गए हैं उनका स्पष्ट वर्णन यह है—

आस्रवभाव।	संवरभाव।
(१) मिथ्यादर्शन	सम्यग्दर्शन
(२) अविरति हिंसादि	५ व्रत–अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग, या १२ अविरतिभाव, पाच इंद्रिय व मनको न रोकना तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति तथा त्रसकायका विराधन
(३) प्रमाद (असावधानी)	अप्रमाद
(४) कषाय क्रोध, मान, माया, लोभ।	वीतरागभाव
(५) योग–मन, वचन, कायकी क्रिया।	योगोंकी गुप्ति

विशेष रूपसे संवरके भाव कहे हैं—

(१) गुप्ति–मन, वचन, कायको रोकना।

(२) समिति पाच– १) देखकर चलना। २) शुद्ध वाणी कहना। (३) शुद्ध भोजन करना। (४) देखकर रखना उठाना। (५) देखकर मलमूत्र करना।

(३) धर्म दश–(१) उत्तम क्षमा, (२) उत्तम मार्दव (कोमलता), (३) उत्तम आर्जव (सरलता), (४) उत्तम सत्य, (५) उत्तम शौच (पवित्रता) (६) उत्तम संयम, (७) उत्तम तप, (८) उत्तम त्याग

या दान (९) उत्तम आकिंचन (ममत्व त्याग) (१०) उत्तम ब्रह्मचर्य।

(४) अनुप्रेक्षा—भावना बारह—नाम ऊपर कहे हैं।

(५) परीषह जय—बाइस परीषह जीतना—नाम ऊपर कहे हैं।

(६) चारित्र—पांच (१) सामायिक या समाधि भाव—शांत भाव, (२) छेदोपस्थापन, समाधिसे गिरकर फिर स्थापन, (३) परिहार विशुद्धि—विशेष हिंसाका त्याग, (४) सूक्ष्म सांपराय—अत्यल्प लोभ शेष, (५) यथाख्यात—पूर्ण वीतराग भाव। इन सबके भावोंको जो साधु पूर्ण पालता है उसके कर्म पुद्गलका आना बिल कुल बंद होजाता है। जितना कम पालता है उतना कर्मोंका आस्रव होता है। अभिप्राय यह है कि मुमुक्षुको आस्रवकारक भावोंसे बचकर संवर भावमें वर्तना योग्य है।

(३) मज्झिमनिकाय—भय भैरव सूत्र चौथा।

इस सूत्रमें निर्भय भावकी महिमा बताई है कि जो साधु मन वचन कायसे शुद्ध होते हैं व परम निष्कम्प समाधि भावके अभ्यासी होते हैं वे वनमें रहते हुए किसी बातका भय नहीं प्राप्त करते।

एक ब्राह्मणसे गौतमबुद्ध वार्तालाप कररहे हैं—

ब्राह्मण कहता है—' हे गौतम! कठिन है अरण्यवन खंड और सूनी कुटिया (शय्यासन), दुष्कर है एकांत रमण, समाधि न प्राप्त होनेपर अभिरमण न करनेवाले भिक्षुके मनको अकेला या यह वन मानो हर लेता है।"

गौतम—ऐसा ही है...

होनेसे प..के बुद्ध न

वार) ही था तो मुझे भी ऐसा होता था कि कठिन है अरण्यवास। तब मेरे मनमें ऐसा हुआ—जो कोई अशुद्ध कायिक कर्मसे युक्त श्रमण या ब्राह्मण अरण्यका सेवन करते है, अशुद्ध कायिक कर्मके दोषके कारण वह आप श्रमण—ब्राह्मण बुरे भय भैरव (भय और भीषणता) का आह्वान करते हैं। (लेकिन) मैं तो अशुद्ध कायिक कर्मसे मुक्त हो अरण्य सेवन नहीं कर रहा हूं। मेरे कायिक कर्म परिशुद्ध हैं। जो परिशुद्ध कायिक कर्मवाले आर्य अरण्य सेवन करते हैं उनमेंसे मैं एक हूं। ब्राह्मण अपने भीतर इस परिशुद्ध कायिक कर्मके भावको देखकर, मुझे अरण्यमें विहार करनेका और भी अधिक उत्साह हुआ। इसी तरह जो कोई अशुद्ध वाचिक कर्मवाले अशुद्ध मानसिक कर्मवाले, अशुद्ध आजीविकावाले श्रमण ब्राह्मण अरण्य सेवन करते हैं वे भयभैरवको बुलाते हैं। मैं अशुद्ध वाचिक, व मानसिक कर्म व आजीविकासे मुक्त हो अरण्य सेवन नहीं कर रहा हूं, किन्तु शुद्ध वाचिक, मानसिक कर्म, व आजीविकाके भावको अपने भीतर देखकर मुझे अरण्यमें विहार करनेका और भी अधिक उत्साह हुआ। हे ब्राह्मण! तब मेरे मनमें ऐसा हुआ। जो कोई श्रमण ब्राह्मण लोभी काम (वासनाओं) में तीव्र रागवाले वनका सेवन करते हैं या हिंसा-युक्त-व्यापन्न चित्तवाले और मनमें दुष्ट संकल्पवाले या स्त्यान (शारीरिक आलस्य) मृद्धि (मानसिक आलस्य) से प्रेरित हो, या उद्धत और अशांत चित्तवाले हो, या लोभी, कांक्षावाले और संशयालु हो, या अपना उत्कर्ष (बड़प्पन चाहने) वाले तथा दूसरेको निंदनेवाले हो, या जड़ और भीरु प्रकृतिवाले हो,

या लाभ, सत्कार प्रशंसाकी चाहना करते हों, या आलसी उद्योगहीन हो, या नष्ट स्मृति हो और सूक्ष्मसे वंचित हो, या व्यग्र और विभ्रांत चित्त हो, या पुष्पुत्त (अज्ञानी) भेड़-गूंगे जैसे हो, वनका सेवन करते हैं वे इन दोषोंके कारण अकुशल भय भैरवको बुलाते हैं। मैं इन दोषोंसे युक्त हो वनका सेवन नहीं कर रहा हू। जो कोई इन दोषोंसे मुक्त न होकर वनका सेवन करते हैं उनमेंसे मैं एक हू। इस तरह हे ब्राह्मण! अपने भीतर निर्लोभताको, मैत्रीयुक्त चित्तको, शारीरिक व मानसिक आलस्यके अभावको, उपशांत चित्तपनेको, निःशंक भावको, अपना उत्कर्ष व परनिन्दा न चाहनेवाले भावको, निर्भयताको, अल्प इच्छाको, वीर्यपनेको, स्मृति सयुक्तताको, समाधि सम्पदाको, तथा प्रज्ञासम्पदाको देखता हुआ मुझे अरण्यमें विहार करनेका और भी अधिक उत्साह उत्पन्न हुआ।

तब मेरे मनमें ऐसा हुआ जो यह सम्मानित व अभिलक्षित (प्रसिद्ध) रातिया हैं जैसे पक्षकी चतुर्दशी, पूर्णमासी और अष्टमीकी रातें हैं वैसी रातोंमें जो यह भयप्रद रोमांचकारक स्थान हैं जैसे आरामचैत्य, वनचैत्य, वृक्षचैत्य वैसे शयनासनोंमें विहार करनेसे शायद तब भयभैरव देखूं। तब मैं वैसे शयनासनोंमें विहार करने लगा। तब ब्राह्मण! वैसे विहरते समय मेरे पास मृग आता था या मोर काठ गिरा देता या हवा पत्तोंको फरफराती तो मेरे मनमें जरूर होता कि यह वही भय भैरव आरहा है। तब ब्राह्मण मेरे मनमें होता कि क्यों मैं दूसरेसे भयकी आकांक्षामें विहररहा हूं? क्यों न मैं जिस जिस अवस्थामें रहता। जैसे मेरे पास वह भयभैरव आता है

वैसी वैसी अवस्थामें रहते उस भयभैरवको हटाऊँ। जब ब्राह्मण! टहलने हुए मेरे पास भयभैरव आता तब मैं न खडा होता, न बैठता न लेटता। टहलते हुए ही उस भयभैरवको हटाता। इसी तरह खडे होते, बैठे हुए व लेटे हुए जब कोई भय भैरव आता मैं वैसा ही रहता, निर्भय रहता।

ब्राह्मण! मैंने अपना वीर्य या उद्योग आरंभ किया था। मेरी मूढ़ता रहित स्मृति जाग्रत थी, मेरी काय प्रसन्न व आकुलता रहित थी, मेरा चित्त समाधि सहित एकाग्र था। (१) सो मैं कामोंसे रहित, बुरी बातोंसे रहित विवेकसे उत्पन्न सवितर्क और सविचार प्रीति और सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। (२) फिर वितर्क और विचारके शांत होनेपर भीतरी शांत व चित्तकी एकाग्रता वाले वितर्क रहित विचार रहित प्रीति सुख वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। (३) फिर प्रीतिसे विरक्त हो उपेक्षक बन स्मृति और अनुभवसे युक्त हो शरीरसे सुख अनुभव करते जिसे आर्य उपेक्षक, स्मृतिमान् सुख विहारी कहते है उस तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। (४) फिर सुख दुःखके परित्यागसे चित्तोल्लास व चित्त संतापके पहले ही अस्त होजानेसे, सुख दुःख रहित जिसमें उपेक्षासे स्मृतिकी शुद्धि होजाती है, इस चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा।

सो इसप्रकार चित्तके एकाग्र, परिशुद्ध, अंगण (मल) रहित, मृदुभूत, स्थिर, और समाधियुक्त होजानेपर पूर्व जन्मोंकी स्मृतिके लिये मैंने चित्तको झुकाया। इसप्रकार आकार और उद्देश्य सहित अनेक प्रकारके पूर्व निवासोंको स्मरण करने लगा। इसप्रकार प्रमाद

रहित व आत्मसयम युक्त निश्चल हुए, रातके पहले पहरमें मुझे यह पहली विद्या प्राप्त हुई अविद्या नष्ट हुई, तम नष्ट हुआ, आलोक उत्पन्न हुआ। सो इसप्रकार चित्तको एकाग्र व परिशुद्ध होनेपर प्राणियोंके मरण और जन्मके ज्ञानके लिये चित्तको झुकाया। सो मैं अमानुष विशुद्ध दिव्यचक्षुसे अच्छे बुरे, सुवर्ण दुर्वर्ण, सुगति वाले, दुर्गतिवाले प्राणियोंको मरते उत्पन्न होते देखने लगा। कर्मानुसार (यथा कम्मवगे) गतिको प्राप्त होते प्राणियोंको पहचानने लगा।

जो प्राणधारी कायिक दुराचारसे युक्त, वाचिक दुराचारसे युक्त, मानसिक दुराचारसे युक्त, आर्योंके निन्दक मिथ्यादृष्टि, मिथ्यादृष्टि कर्मको रखनेवाले (मिथ्यादृष्टि कम्म समादाना) थे वे काय छोडनेपर मरनेके बाद दुर्गति पतन, नर्कमें प्राप्त हुए है। जो प्राणधारी कायिक, वाचिक, मानसिक सदाचारसे युक्त आर्योंके अनिन्दक सम्यक्दृष्टि (सच्चे सिद्धानवाले) सम्यक्दृष्टि सम्बन्धी कर्मको करनेवाले (सम्मदिट्ठी कम्म समादाना) वे काय छोडनेपर मरनेके बाद सुगति, स्वर्गलोकको प्राप्त हुए है। इसप्रकार अमानुष विशुद्ध दिव्यचक्षुसे प्राणियोंको पहचानने लगा। रातके मध्यम पहरमें यह मुझे दूसरी विद्या प्राप्त हुई

फिर इस प्रकार समाधियुक्त व शुद्ध चित्त होते हुए आस्रवोंके क्षयक ज्ञानके लिये चित्तको झुकाया। यह दुःख है, यह दुःखका कारण है, यह दुःख निरोध है, यह दुःख निरोधका साधन (दु निरोध, गामिनीप्रतिपद्,) इसे यथार्थसे जान लिया। यह आस्रव है, यह आस्रवका कारण है, यह आस्रव निरोध है, यह आस्रव निरोधका साधन है यथार्थ जान लिया। सो इसप्रकार

देखते जानते मेरा चित्त काम, भव, व अविद्याके आस्रवोंसे मुक्त होगया। विमुक्त होजानेपर 'छूट गया' ऐसा ज्ञान हुआ। "जन्म खतम होगया, ब्रह्मचर्य पूरा होगया, करना था सो करलिया, अब यहां करनेके लिये कुछ शेष नहीं है" इस तरह रात्रिके अंतिम पहरमे यह मुझे तिसरी विद्या प्राप्त हुई। अविद्या चली गई, विद्या उत्पन्न हुई, तम विघटा, आलोक उत्पन्न हुआ। जैसा उनको होता हो जो अप्रमत्त उद्योगशील न वज्ञानी है।

नोट–ऊपरका कथन पढकर कौन यह कह सक्ता है कि गौतम बुद्धका साधन उस निर्वाणके लिये था जो अभाव (annihilation) रूप है, यह बात बिलकुल समझमें नहीं आती। निर्वाण सद्भाव रूप है, वह कोई अनिर्वचनीय अजर अमर शांत व आनन्दमय पदार्थ है ऐसा ही प्रतीतिमें आता है। वास्तवमें उसे ही जैन लोग सिद्ध पद शुद्ध पद, परमात्म पद, निज पद, मुक्त पद कहते हैं। इसी सूत्रमें कहा है कि परमज्ञान प्राप्त होनेके पहले मैं ऐसा था। वह परमज्ञान वह विज्ञान नहीं होसक्ता जो पांच इंद्रि व मनकेद्वारा होता है, जो रूपके निमित्तसे होता है, जो रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कारमें विज्ञान होता है। इस पंचस्कंधीय वस्तुसे भिन्न ही कोई परम ज्ञान है जिससे जैन लोग शुद्ध ज्ञान या केवलज्ञान कह सक्ते हैं। इस सूत्रमें यह बताया है कि जिन साधुओंका या संतोंका अशुद्ध मन वचन, कायका आचरण है व जिनका भोजन अशुद्ध है उनको वनमें भय लगता है। परन्तु जिनका मन वचन कायका चारित्र व भोजन शुद्ध है व जो लोभी नहीं हैं, हिंसक नहीं हैं, आलसी नहीं है, उद्धत नहीं है, संशय

सहित न.ीं है, परनि दक न.ीं है और नहीं है, सत्कार व लामके मूखे न.ीं है स्मृतिव.ा हैं निराकुल है, प्रज्ञावान है उनको वनमें भय नहीं प्राप्त होता, वे निर्भय हो वनमें विचरते है । समाधि और प्रज्ञाको सम्पदा बताई है। जिसकी सम्पदा—अपने आपकी—निर्वाणको सर्व परसे भिन्न जाननेको ही प्रज्ञा या भेदविज्ञान कहते हैं। फि आपका निर्वाण स्वरूप पदार्थके साथ एकाग्र होजाना यही समाधि है, यही बात जैन सिद्धातमें कही है कि प्रज्ञा द्वारा समाधि प्राप्त होनी है ।

फिर बताया है कि चौदस अष्टमी, व पूर्णमासीकी रातको गौतमबुद्ध वनमें विशेष निर्भय हो समाधिका अभ्यास करते थे । इन रातोंको प्रसिद्ध कहा है । जैन लोगोंमे चौदस अष्टमीको पर्व मान कर मासमें ४ दिन उपवास करनेका व ध्यानका विशेष अभ्यास करनेका कथन है । कोई कोई श्रावक भी इन रातोंमें वनमें ठहर विशेष ध्यान करते हैं । सम्यग्दृष्टी कैसा निर्भय होता है यह बात भलेप्रकार दिखलाई है । यह बात झलकाई है कि निर्भयपना उसे ही कहते है जहा अपना मन एसा शात सम व निराकुल हो कि आप जिस स्थितिमें हो वैसा ही रहते हुए नि शक बना रहे। किसी भयको आन देखकर जरा भी भागनेकी व घबड़ानेकी चेष्टा न करे तो वह भयप्रद पशु आदि भी ऐसे शात पुरुषको देखकर स्वय शात होजाते हैं आक्रमण न.ीं करते है । निर्भय होकर समाधिभावका अभ्यास करनेसे चार प्रकारके ध्यानको जागृत किया गया था। (१) जिसमें निवाणभावमे प्रीति हो व सुख प्रगटे तथा वितर्क व विचार भी हो, कुछ चिन्तवन भी हो, यह पहला ध्यान है । (२)

फिर वितर्क व विचार बंद होनेपर प्रीति व सुख सहित भाव रह जावे यह दूसरा ध्यान है। (३) फिर प्रीति सम्बंधी राग चला जावे वैराग्य बढ जावे निर्वाण मानके स्मरण सहित सुखका अनुभव हो सो तीसरा ध्यान है। (४) वैराग्यकी वृद्धिसे शुद्ध व एकाग्र स्मरण हो सो चौथा ध्यान है। ये चार ध्यानकी श्रेणियां हैं जिनको गौतमबुद्धने प्राप्त किया। इसी प्रकार जैन सिद्धांतमें सरागध्यान व वीतराग ध्यानका वर्णन किया है। जितना जितना राग घटता है ध्यान निर्मल होता जाता है।

फिर यह बताया है कि इस समाधियुक्त ध्यानसे व आत्म संयमी होनेसे गौतमबुद्धको अपने पूर्व भव स्मरणमें आए फिर दूसरे प्राणियोंके जन्म मरण व कर्तव्य स्मरणमें आए कि मिथ्या-दृष्टी जीव मन वचन कायके दुराचारसे नर्क गया व सम्यग्दृष्टी जीव मन वचन कायके सुआचारसे स्वर्ग गया। यहां मिथ्यादृष्टी शब्दके साथ कर्म शब्द लगा है। जिसके अर्थ जैन सिद्धान्तानुसार मिथ्यात्व कर्म भी होसक्ते हैं। जैन सिद्धांतमें कर्म पुद्गलके स्कंध लोकव्यापी है उनको यह जीव जब खींचकर बांधता है तब उनमें कर्मका स्वभाव पड़ता है। मिथ्यात्व भावसे मिथ्यात्व कर्म बंध जाता है। तथा सम्यक्त कर्म भी है जो श्रद्धाको निर्मल नहीं रखता है। इस अपने व दूसरोंके पूर्वकालके स्मरणोंकी शक्तिको अवधि ज्ञान नामका दिव्य ज्ञान जैन सिद्धांतने माना है। फिर बुद्ध कहते हैं कि जब मैंने दुःख व दुःखके कारणको व आस्रव व आस्रवके कारणको, दुःख व आस्रव निरोधको तथा दुःख व आस्रव निरोधके साधनको भले प्रकार जान लिया तब मैं सर्व इच्छाओंसे, जन्म

भावार्थ-जो कोई समतामयी भाव है उसीको पूर्वोक्त या एकाग्रभाव कहा है यही समाधि है इससे इस लोकमें भी दिव्य शक्तियां प्रगट होती हैं और परलोकमें भी उच्च अवस्था होती है।

माध्यस्थभाव, समता उपेक्षा वैराग्य, साम्य, निस्पृहभाव तृष्णा रहितपना, परमभाव, शांति इन सबका एक ही अर्थ है। जैन सिद्धांतमें ध्यान सम्बन्धी बहुत वर्णन है, ध्यानहीसे निर्वाणकी सिद्धि बताई है। द्रव्यसंग्रहमें कहा है—

दुविहं पि मोक्खहेउं झाणे पाउणदि जं मुणी णियमा।
तह्मा पयत्तचित्ता जूयं झाणं समब्भसह॥ ४७॥

भावार्थ-निश्चय मोक्षमार्ग आत्मसमाधि व व्यवहार मोक्षमार्ग अहिंसादी व्रत ये दोनों ही मोक्षमार्ग साधुको आत्मध्यानमें मिल जाते हैं इसलिये प्रयत्नचित्त होकर तुम सब ध्यानका भलेप्रकार अभ्यास करो।

(४) मज्झिमनिकाय-अनङ्गण सूत्र।

आयुष्मान् सारिपुत्र भिक्षुओंको कहते हैं-लोकमें चार प्रकारके पुद्गल या व्यक्ति हैं। (१) एक व्यक्ति अगण (चित्तमल) सहित होता हुआ भी, मेरे भीतर अगण है इसे ठीकसे नहीं जानता। (२) कोई व्यक्ति अगण सहित होता हुआ मेरे भीतर अगण है इसे ठीकसे जानता है। (३) कोई व्यक्ति अगण रहित होता हुआ मेरे भीतर अगण नहीं है इसे ठीकसे नहीं जानता है। (४) कोई व्यक्ति अगण रहित होता हुआ मेरे भीतर अगण नहीं है इसे ठीकसे जानता है।

इनमेंसे अगण सहित दोनों व्यक्तियोंमें पहला व्यक्ति हीन है, दूसरा व्यक्ति श्रेष्ठ है जो अगण है इस बातको ठीकसे जानता है। इसी तरह अगण रहित दोनोंमेंसे पहला हीन है। दूसरा श्रेष्ठ है जो अगण नहीं है इस बातको ठीकसे जानता है। इसका हेतु यह है कि जो व्यक्ति अपने भीतर अगण है इसे ठीकसे नहीं जानता है। वह उस अगणके नाशके लिये प्रयत्न, उद्योग व वीर्यारंभ न करेगा। वह राग, द्वेष, मोह युक्त रह मलिन चित्त हो मृत्युको प्राप्त करेगा जैसे–कांसेकी थाली रज और मलसे लिप्त हो कसेरेके यहांसे घर लाई जावे उसको लानेवाला मालिक न उसका उपयोग करे न उसे साफ करे तथा कचरेमें डालदे तब वह कांसेकी थाली कालांतरमें और भी अधिक मैली हो जायगी इसीतरह जो अगण होते हुए उसे ठीकसे नहीं जानता है वह अधिक मलीनचित्त ही रहकर मरेगा।

जो व्यक्ति अगण सहित होनेपर ठीकसे जानता है कि मेरे भीतर मल है वह उस मलके नाशके लिये वीर्यारम्भ कर सक्ता है, वह राग, द्वेष, मोह रहित हो, निर्मल चित्त हो मरेगा। जैसे रज व मलसे लिप्त कांसेकी थाली लाई जाय, मालिक उसका उपयोग करे, साफ करे, उसे कचरेमें न डाले तब वह वस्तु कालांतरमें अधिक परिशुद्ध होजायगी।

जो व्यक्ति अगण रहित होता हुआ भी उसे ठीकसे नहीं जानता है वह मनोज्ञ (सुंदर) निमित्तोंके मिलनेपर उनकी ओर मनको झुका देगा तब उसके चित्तमें राग चिपट जायगा-वह राग, द्वेष मोह सहित, मलीनचित्त हो मरेगा। जैसे बाजारसे कांसेकी थाली शुद्ध लाई जावे परन्तु उसका मालिक न उसका उपयोग करे,

न उसे साफ रक्खे-कचरेमें डालदे तो यह थाली कालांतरमें मैली होजायगी।

जो व्यक्ति अगण रहित होता हुआ ठीकसे जानता है वह मनोज्ञ निमित्तोंकी तरफ मनको नहीं झुकाएगा तब वह रागसे लिप्त न होगा। वह रागद्वेष मोहरहित होकर, अँगणरहित व निर्मलचित्त हो मरेगा जैसे-शुद्ध कासेकी थाली कसेरेके यहांसे लाई जावे। मालिक उसका उपयोग करें, साफ रक्खें उसे कचरेमें न डाले तब वह थाली कालांतरमें और भी अधिक परिशुद्ध और निर्मल होजायगी।

तब मोग्गलायनने प्रश्न किया कि अँगण क्या वस्तु है? तब सारिपुत्र कहते हैं-पाप, बुराई व इच्छाकी परतंत्रताका नाम अँगण है, उसके कुछ दृष्टांत नीचे प्रकार हैं-

(१) हो सकता है कि किसी भिक्षुके मनमें यह इच्छा उत्पन्न हो कि मैं अपराध करूं तथा कोई भिक्षु इस बातको न जाने। कदाचित् कोई भिक्षु उस भिक्षुकके बारेमें जान जावें कि हमने आपत्ति की है तब वह भिक्षु यह सोचे कि भिक्षुओंने मेरे अपराधको जान लिया। और मनमे कुपित होवे, नाराज होवे, यही एक तरहका अगण है।

(२) हो सकता है कोई भिक्षु यह इच्छा करे कि मैं अपराध करू लेकिन भिक्षु मुझे अकेले हीमें दोषी ठहरावें, संघमें नहीं, कदाचित् भिक्षुगण उसे संघके बीचमें दोषी ठहरावें, अकेलेमें नहीं। तब वह भिक्षु इस बातसे कुपित होजावे यह जो कोप है वही एक तरहका अगण है।

(३) होसक्ता है कोई भिक्षु यह इच्छा करे कि मैं अपराध करूं, मेरे बराबरका व्यक्ति मुझे दोषी ठहरावे दूसरा नहीं। कदाचित् दूसरेने दोष ठहराया इस बातसे वह कुपित होजावे, यह कोप एक तरहका अगण है।

(४) होसकता है कोई भिक्षु यह इच्छा करे कि शास्ता (बुद्ध) मुझे ही पूछ पूछकर धर्मोपदेश करें दूसरे भिक्षुको नहीं। कदाचित शास्ता दूसरे भिक्षुको पूछकर धर्मोपदेश करे उसको नहीं, इस बातसे वह भिक्षु कुपित होजावे, यह कोप एक तरहका अगण है।

(५) होसकता है कि कोई भिक्षु यह इच्छा करे कि मैं ही आराम (आश्रम) में आये भिक्षुओंको धर्मोपदेश करूं दूसरा भिक्षु नहीं। होसकता है कि अन्य ही भिक्षु धर्मोपदेश करे, ऐसा सोच कर वह कुपित होजावे। यही को। एक तरहका अगण है।

(६) होसकता है किसी भिक्षुको यह इच्छा हो कि भिक्षु मेरा ही सत्कार करें, मेरी ही पूजा करें, दूसरेकी नहीं। होसकता है कि भिक्षु दूसरे भिक्षुकी सत्कार पूजा करे इससे वह कुपित होजावे यह एक तरहका अगण है। इत्यादि ऐसी ही बुराइयों और इच्छाओं पर तत्रताओंका नाम अगण है। जिस किसी कि भिक्षुकी यह बुराइयाँ नष्ट नहीं दिखाई पड़ती है सुनाई देती हैं, चाहे वह बनवासी, एकांत कुटी निवासी, भिक्षान्नभोजी आदि हो उसका सत्कार व मान स ब्रह्मचारी नहीं करते क्योंकि उसकी बुराइया नष्ट नहीं हुई है। जैसे कोई एक निर्मल कांसेकी थाली बाजारसे लावे, फिर उसका मालिक उसमें मुर्दे साप, मुर्दे कुत्ते या मुर्दे मनुष्य (के मांस) को भरकर

दूसरी कासेकी थालीसे ढककर बाजारमें रखदें उसे देखकर लोग कहे कि अहो ! यह चमकता हुआ क्या रखना है। फिर ऊपरकी थालीको उठाकर देखें। उसे देखने ही उनके मनमें घृणा, प्रतिकूलता, जुगुप्सा उत्पन्न होजावे, भूखेको भी खानेकी इच्छा न हो, पेटभरोंकी तो बात ही क्या। इसी तरह बुराइयोंसे भरे भिक्षुका सत्कार उत्तम पुरुष नहीं करते।

परन्तु जिस किसी भिक्षुकी बुराइयां नष्ट होगई है उसका सत्कार सब्रह्मचारी करते है। जैसे एक निर्मल कासेकी थाली बाजारमें लाई जावे उसका मालिक उसमें साफ किये हुए शालीके चावलको अनेक प्रकारके सूप (दाल) और व्यञ्जन (साग भाजी) के साथ सजाकर दूसरी कासेकी थालीसे ढककर बाजारमें रखदें, उसे देखकर लोक कहे कि चमकता हुआ क्या है? थाली उठाकर देखें तो देखते ही उनके मनमें प्रसन्नता, अनुकूलता और अजुगुप्सा उत्पन्न होजावे, पेटभरेको भी खानेकी इच्छा होजावे, भूखोंकी तो बात ही क्या है। इसी प्रकार जिसकी बुराइया नष्ट होगई है उसका सत्पुरुष सत्कार करते हैं।

नोट–इस सूत्रमें शुद्ध चित्त होकर धर्मसाधनकी महिमा बताई है तथा यह झलकाया है कि जो ज्ञानी है वह अपने दोषोंको मेट सक्ता है। जो अपने भावोंको पहचानता है कि मेरा भाव यह शुद्ध है यह अशुद्ध है वही अशुद्ध भावोंके मिटानेका उद्योग करेगा। प्रयत्न करते करते ऐसा समय आयगा कि वह दोषमुक्त व वीतराग होजावे। जैन सिद्धांतमें भी प्रतीक लिये विषयकषाय व शल्य व गारव आदि दोषोंके मेटनेका उपदेश है। उसे साथ इन्द्रियोंकी

इच्छाका विजयी, क्रोध, मान, माया, लोभरहित व माया, मिथ्यात्व भोगोंकी इच्छारूप निदान शल्यसे रहित तथा मान बड़ाई व पूजा आदिकी चाहसे रहित होना चाहिये।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

लाहालाहे सरिसो सुहदुक्खे तह य जीविए मरणे।
बंधो अरयसमाणो झाणसमत्थो हु सो जोई॥ ११॥
रायादिया विभावा बहिरंतरउहवियप्प मुत्तूण।
एयग्गमणो झायहि णिरंजणं णियअप्पाणं॥ १८॥

भावार्थ—जो कोई साधु लाभ व अलाभमें, सुख व दु:खमें, जीवन या मरणमें, बन्धु व मित्रमें समान बुद्धि रखता है वही ध्यान करनेको समर्थ होसक्ता है। रागादि विभावोंको व बाहरी व मनके भीतरके विकल्पोंको छोड़कर एकाग्र मन होकर अब आपको निरंजन रूप ध्यान कर मोक्षके पात्र ध्यानी साधु कैसे होते हैं। श्री कुल-भद्राचार्य सारसमुच्चयमें कहते हैं—

सगादिरहिता धीरा रागादिमलवर्जिता।
शान्ता दान्तास्तपोभूषा मुक्तिकांक्षणतत्परा॥ १९६॥
मनोवाक्काययोगेषु प्रणिधानपरायणा।
वृताढ्या ध्यानसम्पन्नास्ते पात्रं करुणापरा॥ १९७॥
अग्रहो हि शमे येषां विग्रहः कर्मशत्रुभि।
विषयेषु निरासङ्गास्ते पात्रं यतिसत्तमा॥ २००॥
येंममत्वं सदा त्यक्तं स्वकायेऽपि मनीषिभि।
ते पात्रं सयतात्मान सर्वसत्वहिते रता॥ २०२॥

भावार्थ—जो परिग्रह आदिसे रहित हैं, धीर हैं, राग, द्वेष, मोहके मलसे रहित हैं, शांतचित्त हैं, इन्द्रियोंके दमन करनेवाले हैं,

तपसे शोभायमान है, मुक्तिकी भावनामें तत्पर है मन, वचन व कायको एकाग्र रखनेमें तत्पर है, सुचारित्रवान है, ध्यानसम्पन्न हैं व दयावान हैं वे ही पात्र हैं। जिनका शांतभाव पानेका हठ है, जो कर्मशत्रुओंसे युद्ध करते हैं, पांचों इन्द्रियोंके विषयोंसे अलिप्त हैं वे ही यतिवर पात्र हैं। जिन महापुरुषोंने शरीरसे भी ममत्व त्याग दिया है तथा जो संयमी हैं व सर्व प्राणियोंके हितमें तत्पर हैं वे ही पात्र है।

इस सूत्रका तात्पर्य यह है कि सम्यग्दृष्टी ही अपने भावोंकी शुद्धि रख सक्ता है। सम्यक्तीको शुद्ध भावोंकी पहचान है, वह मैल पनेको भी जानता है। अतएव वही भावोंका मल हटाकर अपने भावोंको शुद्ध कर सक्ता है।

---

(५) मज्झिमनिकाय–वस्त्र सूत्र।

गौतम बुद्ध भिक्षुओंको उपदेश करते हैं–जैसे कोई मैला कुचैला वस्त्र हो उसे रङ्गरेजके पास ले जाकर जिस किसी रङ्गमें डाले, चाहे नीलमें, चाहे पीतमें, चाहे लालमें, चाहे मजीठके रंगमें, वह बद रङ्ग ही रहेगा, अशुद्ध वर्ण ही रहेगा। ऐसे ही चित्तके मलीन होनेसे दुर्गति अनिवार्य है। परन्तु जो उजला साफ वस्त्र हो उसे रङ्गरेजके पास लेजाकर जिस किसी ही रङ्गमें डाले वह सुरंग निकलेगा, शुद्ध वर्ण निकलेगा, क्योंकि वस्त्र शुद्ध है। ऐसे ही चित्तके अन् उपक्लिष्ट अर्थात् निर्मल होने पर सुगति अनिवार्य है।

भिक्षुओ! चित्तके उपक्लेश या मल हैं (१) अभिदया या

विषयोंका लोभ, (२) व्यापाद या द्रोह, (३) क्रोध, (४) उपनाह या पाखंड, (५) भ्रक्ष (अमरख), (६) प्रदोष (निष्ठुरता), (७) ईर्षा, (८) मात्सर्य (परगुण द्वेष), (९) माया, (१०) शठता, (११) स्तम्भ (जड़ता), (१२) सारम (हिंसा), (१३) मान, (१४) अतिमान, (१५) मद, (१६) प्रमाद।

जो भिक्षु इन मलोंको मल जानकर त्याग देता है वह बुद्धमें अत्यन्त श्रद्धासे मुक्त होता है। वह जानता है कि भगवान अर्हत् सम्यक्-संबुद्ध (परम ज्ञानी), विद्या और आचरणसे संपन्न, सुगत, लोकविद, पुरुषोंको दमन करने (सन्मार्गपर लाने) के लिये अनुपम चाबुक सवार, देव मनुष्योंके शास्ता (उपदेशक) बुद्ध (ज्ञानी) भगवान है।

यह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धासे मुक्त होता है, वह समझता है कि भगवानका धर्म स्वाख्यात (सुन्दर रीतिसे कहा हुआ) है, सांदृष्टिक (इसी शरीरमें फल देनेवाला), अकालिक (सद्य फलप्रद), एहिपस्सिक (यहीं दिखाई देनेवाला) औपनयिक (निर्वाणके पास लेजानेवाला), विज्ञ (पुरुषोंको) अपने अपने भीतर ही विदित होनेवाला है।

वह संघमें अत्यन्त श्रद्धासे मुक्त होता है, वह समझता है भगवानका श्रावक (शिष्य) संघ सुमार्गारूढ़ है, ऋजुप्रतिपन्न (सरल मार्गपर आरूढ़) है, न्यायप्रतिपन्न है, सामीचि प्रतिपन्न है (ठीक मार्गपर आरूढ़ है)

जब भिक्षुके मल त्यक्त, वमित, मोचित, नष्ट व विसर्जित होते हैं तब वह अर्थवेद (अर्थज्ञान), धर्मवेद (धर्मज्ञान) को पाता है।

धर्मवेद सम्बधी प्रमोदको पाता है, प्रमुदितको सन्तोष होता है, प्रीति-वालेकी काया शांत होती है। प्रश्रब्धकाय सुख अनुभव करता है। सुखीका चित्त एकाग्र होता है।

ऐसे शीलवाला, ऐसे धर्मवाला, ऐसी प्रज्ञावाला भिक्षु चाहे शाली (भूसी आदि) चुनकर बने शालीके भातको अनेकरूप (दाल) व्यंजन (सागभाजी) के साथ खावे तौभी उसको अन्तराय (विघ्न) नहीं होगा। जैसे मैला कुचैला वस्त्र स्वच्छ जलको प्राप्त हो शुद्ध साफ होजाता है, उल्कामुख (भट्टीकी घड़िया)में पड़कर सोना शुद्ध साफ होजाता है।

वह मैत्री युक्त चित्तसे सर्व दिशाओंको परिपूर्ण कर विहरता है। वह सबका विचार रखनेवाला, विपुल, अप्रमाण, वैररहित, द्रोह-रहित, मैत्री युक्त चित्तसे सारे लोकको पूर्णकर विहार करता है।

इसी तरह वह करुणायुक्त चित्तसे, मुदितायुक्त चित्तसे, उपेक्षायुक्त चित्तसे युक्त हो सारे लोकको पूर्णकर विहार करता है।

वह जानता है कि यह निकृष्ट है, यह उत्तम है, इन (लौकिक) संज्ञाओंसे उपर निस्सरण (निकास) है। ऐसा जानते, ऐसा देखते हुए उसका चित्त काम (वासनारूपी) आस्रवसे मुक्त होजाता है, भव आस्रवसे, अविद्या आस्रवसे मुक्त होजाता है। मुक्त होजाने पर 'मुक्त होगया हूँ' यह ज्ञान होता है और जानता है—जन्म क्षीण होगया, ब्रह्मचर्यवास समाप्त होगया, करना था सो कर लिया, अब दूसरा यहां (कुछ करनेको) नहीं है। ऐसा भिक्षु स्नान करे बिनाही स्नात (नहाया हुआ) कहा जाता है।

उस समय सुंदरिक भारद्वाज ब्राह्मणने कहा, क्या आप गौतम बाहुका नदी चलेंगे। तब गौतमने कहा बाहुका नदी क्या करेगी। ब्राह्मणने कहा बाहुका नदी पवित्र है, बहुतसे लोग बाहुका नदीमें अपने किये पापोंको बहाते हैं। तब बुद्धने ब्राह्मणको कहा —

बाहुका, अधिक्क, गया और सुन्दरिकामें।
सरस्वती, और प्रयाग तथा बाहुमती नदीमें।
कालेकर्मोवाला मूढ चाहे कितना न्हावे, शुद्ध नहीं होगा।
क्या करेगी सुन्दरिका, क्या प्रयाग और क्या बाहुलिका नदी!
पापकर्मा कृतकिल्विष दुष्ट नरको नहीं शुद्ध कर सकते।
शुद्धके लिये सदा ही फग्गु है, शुद्धके लिये सदा ही उपोसन्थ (व्रत) है।
शुद्ध और शुचिकर्माके व्रत सदा ही पूरे होते रहते हैं।
ब्राह्मण! यहीं ठहर, सारे प्राणियोंका क्षेमकर।
यदि तू झूठ नहीं बोलता, यदि प्राण नहीं मारता।
यदि बिना दिया नहीं लेता, श्रद्धावान मत्सर रहित है।
गया जाकर क्या करेगा, क्षुद्र जलाशय भी तेरे लिये गया है।

नोट—जैसे इस सूत्रमें वस्त्रका दृष्टांत देकर चित्तकी मलीनताका निषेध किया है वैसे ही जैन सिद्धांतमें कहा है।

श्री कुंदकुंदाचार्य समयसारमें कहते हैं—

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
मिच्छत्तमलोच्छण्णं तह सम्मत्तं खु णादव्वं ॥ १६४ ॥
वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
अण्णाणमलोच्छण्णं तह णाणं होदि णादव्वं ॥ १६५ ॥

वत्थस्स सेदभावो जह णासेदि मलविमेलणाच्छण्णो।
तह दु कसायाच्छण्णं चारित्तं होदि णादव्वं ॥ १६६ ॥

भावार्थ–जैसे वस्त्रका उजलापन मलके मैलसे ढका हुआ नाश होजाता है वैसे ही मिथ्यादर्शनके मैलसे ढका हुआ जीवका सम्यग्दर्शन गुण है ऐसा जानना चाहिये। जैसे वस्त्रका उजलापन मलके मैलसे ढका हुआ नाशको प्राप्त होजाता है वैसे अज्ञानके मैलसे ढका हुआ जीवका ज्ञान गुण जानना चाहिये। जैसे वस्त्रका उजलापन मलके मैलसे ढका हुआ नाश होजाता है वैसे कषायके मलसे ढका हुआ जीवका चारित्र गुण जानना चाहिये।

जैसे बौद्ध सूत्रमें चित्तके मल सोलह गिनाए हैं वैसे जैन सिद्धांतमें चित्तको मलीन करनेवाले १६ कषाय व नौ नोकषाय ऐसे २५ गिनाए हैं। देखो तत्त्वार्थसूत्र उमास्वामी कृत–अध्याय ८ सूत्र ९।

१–अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ–ऐसे कषाय जो पत्थरकी लकीरके समान बहुत काल पीछे हटें। यह सम्यग्दर्शनको रोकती है।

२–अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ–ऐसी कषाय जो हलकी रेखाके समान हो, कुछ काल पीछे मिटे। यह गृहस्थके व्रत नहीं होने देती है।

३–प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ–ऐसी कषाय जो बालूके भीतर बनाई लकीरके समान शीघ्र मिटे। यह साधुके चारित्रको रोकती है।

४–संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ–ऐसी कषाय जो

पानीमें लकीर करनेके समान तुर्त मिट जावे। यह पूर्ण वीतरागताको रोकती है।

९-नोकपाय या निर्मल कपाय जो १६ कपायोंके साथ साथ काम करती है-१-हास्य २ शोक, ३ रति, ४ अरति, ५ भय, ६ जुगुप्सा, ७ स्त्रीवेद, ८ पुरुषवेद, ९ नपुंसकवेद।

उसी तत्वार्थसूत्रम कहा है अध्याय ७ सूत्र १८ में।

निःशल्यो व्रती-व्रतधारी साधु या श्रावकको शल्य रहित होना चाहिये। शल्य कांटेके समान चुभनेवाले गुप्तभावको कहते है। वे तीन हैं—

(१) मायाशल्य-कपटके साथ व्रत पालना, शुद्ध भावसे नहीं।

(२) मिथ्याशल्य-श्रद्धाके विना पालना, या मिथ्या श्रद्धाके साथ पालना।

(३) निदान शल्य-भोगोंकी आगामी प्राप्तिकी तृष्णासे युक्त हो पालना। जैसे इस बुद्धसूत्रमे श्रद्धावानको शास्ता, धर्म और सघमें श्रद्धाको दृढ़ किया है वैसे जैन सिद्धान्तमें आप्त आगम, गुरुमें श्रद्धाको दृढ़ किया है। आगमसे ही धर्मका बोध लेना चाहिये।

श्री समंतभद्राचार्य रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहते है—

श्रद्धानं परमार्थानामाप्तागमतपोभृताम्।
त्रिमूढापोढमष्टाङ्गं सम्यग्दर्शनमस्मयम्॥ ४॥

भावार्थ-सम्यग्दर्शन या सच्चा विश्वास यह है कि परमार्थ या सच्चे आत्मा (शास्तादेव), आगम या धर्म, तथा तपस्वी गुरुमें पक्की श्रद्धा होनी चाहिये, जो तीन मूढ़ता व आठ मदसे शून्य हो तथा आठ अंग सहित हो।

आप्त उसे कहते हैं जो तीन गुण सहित हो। जो सर्वज्ञ, वीतराग तथा हितोपदेशी हो। इन्हींको अर्हंत, सयोग केवली जिन, सकल परमात्मा, जिनेन्द्र आदि कहते हैं।

आगम प्राचीन वह है जो आप्तका निर्दोष वचन है।

गुरु वह है जो आरम्भ व परिग्रहका त्यागी हो, पांचों इन्द्रियोंकी आशासे रहित हो, आत्मज्ञान व आत्मध्यानमें लीन हो व तपस्वी हो।

तीन मूढ़ता—मूर्खतासे कुदेवोंको देव मानना देव मूढ़ता है। मूर्खतासे कुगुरुको गुरु मानना पाखण्ड मूढ़ता है। मूर्खतासे लौकिक रूढ़ि या वहमको मानना लोक मूढ़ता है। जैसे नदीमें स्नानसे धर्म होगा।

आठ मद—१ जाति, २ कुल, ३ रूप, ४ बल, ५ धन, ६ अधिकार, ७ विद्या, ८ तप इनका घमंड करना।

आठ अंग—१ निःशंकित (शंका रहित होना व निर्मल रहना)। २ निःकांक्षित—भोगोंकी तरफ श्रद्धाका न होना। ३ निर्विचिकित्सित—किसीके साथ घृणाभाव नहीं रखना। ४ अमूढ़दृष्टि—मूढ़ताकी तरफ श्रद्धा नहीं रखना। ५ उपगूहन—धर्मात्माके दोष प्रगट न करना। ६ स्थितिकरण—अपनेको तथा दूसरोंको धर्ममें मजबूत करना। ७ वात्सल्य—धर्मात्माओंसे प्रेम रखना, ८ प्रभावना—धर्मकी उन्नति करना व महिमा फैलाना। जैसे बुद्ध सूत्रमें धर्मके साथ स्वाख्यात शब्द है वैसे जैन सूत्रमें है। देखो तत्वार्थसूत्र उमास्वामी अध्याय ९ सूत्र ७।

धर्म व्याख्या तत्व।

इस बुद्ध सूत्रमें कहा है कि धर्म वह है जो इसी शरीरमें अनुभव हो व जो भीतर विदित हो व निर्वाणकी तरफ ले जानेवाला हो तब इससे सिद्ध है कि धर्म कोई वस्तु है जो अनुभवगम्य है, वह शुद्ध आत्माके सिवाय दूसरी वस्तु नहीं होसक्ती है। शुद्धात्मा ही निर्वाण स्वरूप है। शुद्धात्माका अनुभव करना निर्वाणका मार्ग है। शुद्धात्मास्वरूप शाश्वत रहना निर्वाण है। यदि निर्वाणको अभाव माना जावे तो कोई अनुभव योग्य धर्म नहीं रह जाता है जो निर्वाणको लेजा सके। आगे चलके कहा है कि जो मलोंसे मुक्त होजाता है वह अर्थवेद, धर्मवेद, प्रमोद, व एकाग्रताको पाता है। यहां जो अर्थज्ञान, धर्मज्ञानके शब्द हैं वे बताते हैं कि परमार्थ रूप निर्वाणका ज्ञान व इसके मार्ग रूप धर्मका ज्ञान, इस धर्मके अनुभवसे आनन्द होता है। आनन्दसे ही एकाग्र ध्यान होता है।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसार जैन ग्रंथमें कहते हैं—

सयलवियप्पे थक्के उप्पज्जइ कोवि सासओ भाओ।
जो अप्पणो सहाओ मोक्खस्स य कारणं सो हु॥ ६१॥

भावार्थ—सर्व मन वचन कायके विकल्पोंके रुक जानेपर कोई ऐसा शाश्वत् भाव प्रगट होता है जो अपना ही स्वभाव है। वही मोक्षका कारण है। श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

आत्मानुष्ठाननिष्ठस्य व्यवहारबहि स्थिते।
जायते परमानंद कश्चिद्योगेन योगिन॥ ४७॥

भावार्थ—जो आत्माके स्वरूपमें लीन होजाता है ऐसे योगीके योगके बलसे व्यवहारसे दूर रहते हुए कोई अपूर्व आनन्द

होजाता है । जब तक किसी शाश्वत् आत्मा पदार्थकी सत्ता न स्वीकार की जायगी तबतक न तो समाधि होसक्ती है न सुखका अनुभव होसक्ता है, न मर्मवेद व अर्थवेद होसक्ता है ।

ऊपर बुद्ध सूत्रमें साधकके भीतर मैत्री, प्रमोद, करुणा व माध्यस्थ (उपेक्षा) इन चार भावोंकी महिमा बताई है यही बात जैन सिद्धान्तमें तत्वार्थसूत्रमें कही है—

मैत्रीप्रमोदकारुण्यमाध्यस्थानि च सत्त्वगुणाधिकक्लिश्यमानाविनयेषु ॥ ११-७ ॥

भावार्थ-मनी साधकको उचित है कि वह सर्व प्राणी मात्रपर मैत्रीभाव रक्खे, सबका भला विचारे, गुणोंसे जो अधिक हो उनपर प्रमोद या हर्षभाव रक्खे, उनको जानकर प्रसन्न हो, दुःखी प्राणियों पर दयाभाव रक्खे उनके दुःखोंको मेटनेकी चेष्टा बन सके तो करे, जिनसे सम्मति नहीं मिलती है उन सबपर माध्यस्थ भाव रक्खे, न राग करे न द्वेष करे। फिर इस बुद्ध सूत्रमे कहा है कि यह हीन है यह उत्तम है इन नामोंके ख्यालसे जो परे जायगा उनका ही निकास होगा । यही बात जैन सिद्धांतमें कही है कि जो समभाव रखेगा, किसीको बुरा व किसीको अच्छा मानना त्यागेगा वही भवसागरसे पार होगा । सारसमुच्चयमें श्री कुलभद्राचार्य कहते हैं—

समता सर्वभूतेषु यः करोति सुमानसः ।
ममत्वभावनिर्मुक्तो यात्यसौ पदमव्ययम् ॥ २१३ ॥

भावार्थ-जो कोइ सत्पुरुष सर्व प्राणी मात्रपर समभाव रखता है और ममताभाव नहीं रखता है वही अविनाशी निर्वाण पदको पालेता है ।

इस बुद्ध सूत्रमें अवमें यह बात बताई है कि जलके स्नानसे पवित्र नहीं होता है। जिसका आत्मा हिंसादि पापोंसे रहित है वही पवित्र है। ऐसा ही जैन सिद्धांतमें कहा है।

सार समुच्चयमें कहा है—

शीलव्रतजले स्नातु शुद्धिरस्य शरीरिण ।
न तु स्नातस्य तीर्थेषु सर्वेष्वपि महीतले ॥ ३१२ ॥
रागादिवर्जित स्नान ये कुर्वन्ति दयापरा ।
तेषां निर्मलता योगैर्न च स्नातस्य वारिणा ॥ ३१३ ॥
आत्मान स्नापयेन्नित्य ज्ञाननीरेण चारुणा ।
येन निर्मलता याति जीवो जन्मान्तरेष्वपि ॥ ३१४ ॥
सत्येन शुद्धयते वाणी मनो ज्ञानेन शुद्धयति ।
गुरुशुश्रूषया काय शुद्धिरेष सनातन ॥ ३१७ ॥

भावार्थ–इस शरीरधारी प्राणीकी शुद्धि शीलव्रत रूपी जलमें स्नान करनेसे होगी। यदि पृथ्वीभरकी सर्व नदियोंमें स्नान करले तौ भी शुद्धि न होगी। जो दयावान रागद्वेषादिको दूर करनेवाले सम-भावरूपी जलमे स्नान करते है, उन हीके भीतर ध्यानमें निर्मलता होती है। जलमें स्नान करनेसे शुद्धि नहीं होती है। पवित्र ज्ञान-रूपी जलसे आत्माको सदा स्नान कराना चाहिये। इस स्नानसे यह जीव परलोकमें भी पवित्र होजाता है। सत्य वचनसे वचनकी शुद्धि है, मनकी शुद्धि ज्ञानसे है, शरीर गुरकी सेवासे शुद्ध होता है, सनातनसे यही शुद्धि है।

हिताकांक्षीको यह तत्वोपदेश ग्रहण करने योग्य है।

(६) मज्झिमनिकाय सलेख सूत्र।

भिक्षु महाचुद गौतमबुद्धसे प्रश्न करता है—जो यह आत्म वाद सम्बन्धी या लोकवाद सम्बन्धी अनेक प्रकारकी दृष्टिया (दर्शन-गत) दुनियामें उत्पन्न होती हैं उनका प्रहाण या त्याग कैसे होता है?

गौतम समझाते हैं—

जो ये दृष्टिया उत्पन्न होती है, जहा ये उत्पन्न होती हैं, जहा यह आश्रय ग्रहण करती हैं, जहा यह व्यवहृत होती हैं वहा "यह मेरा नहीं" "न यह मैं हू" "न मेरा यह आत्मा है" इसे इसप्रकार यथार्थ रीतिसे ठीकसे जानकर देखनेसे इन दृष्टियोंका प्रहाण या त्याग होता है।

होसकता है यदि कोई भिक्षु कामोंसे विरहित होकर प्रथम ध्यानको या द्वितीय ध्यानको या तृतीय ध्यानको या चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरे या कोई भिक्षु रूप सज्ञा (रूपके विचार) को सर्वथा छोड़नेसे, प्रतिघ (प्रतिहिंसा) की सज्ञाओंके सर्वथा अस्त हो जानेसे नानापनेकी सज्ञाओंको मनमें न करनेसे 'आकाश अनन्त' है इस आकाश आनन्द्र आयतनको प्राप्त हो विहरे या इस आयतनको अतिक्रमण करके 'विज्ञान अनन्त' है—इस विज्ञान आनन्द्र आयतनको प्राप्त हो विहरे या इस आयतनको सर्वथा अति क्रमण करके 'कुछ नहीं' इस आकिंचन्य आयतनको प्राप्त हो विहरे या इस आयतनको सर्वथा अतिक्रमण करके नैवसज्ञा-नासज्ञा आयतन (जहा न सज्ञा ही हो न असज्ञा ही हो) को प्राप्त हो विहरे। उस भिक्षुके मनमें ऐसा हो कि सलेख (तप) के साथ विहर

रहा हू। लेकिन आर्य विनयमें इन्हें सलेख नहीं कहा जाता। आर्य विनयमें इन्हें दृष्टधर्म-सुखविहार (इसी जन्ममें सुखपूर्वक विहार) कहते है या शान्तविहार कहते हैं।

किन्तु सलेख तप इस तरह करना चाहिये-(१) हम अहिंसक होंगे, (२) प्राणातिपातसे विरत होंगे, (३) अदत्त ग्रहण न करेंगे, (४) ब्रह्मचारी रहेंगे, (५) मृषावादी न होंगे, (६) पिशुनभाषी (चुगलखोर) न होंगे, (७) परुष (कठोर) भाषी न होंगे, (८) सम्प्रलापी (बकवादी) न होंगे, (९) अभिध्यालु (लोभी) न होंगे, (१०) व्यापन्न (हिंसक) चित्त न होंगे, (११) सम्यकृदृष्टि होंगे, (१२) सम्यक् सङ्कल्पधारी होंगे, (१३) सम्यक्भाषी होंगे, (१४) सम्यक् काय कर्म कर्ता होंगे, (१५) सम्यक् आजीविका करनेवाले होंगे, (१६) सम्यक् व्यायामी होंगे, (१७) सम्यक् स्मृतिधारी होंगे, (१८) सम्यक् समाधिधारी होंगे, (१९) सम्यक्ज्ञानी होंगे, (२०) सम्यक् विमुक्ति भाव सहित होंगे, (२१) स्त्यानगृद्ध (शरीर व मनके आलस्य) रहित होंगे, (२२) उद्धत न होंगे (२३) संशयवान होंगे, (२४) क्रोधी न होंगे, (२५) दम्भ ही (पाखंडी) न होंगे, (२६) मक्षी (कीनावाले) न होंगे, (२७) प्रदाशी (निष्ठुर) न होंगे, (२८) ईर्षारहित होंगे, (२९) मत्सरवान न होंगे, (३०) शठ न होंगे, (३१) मायावी न होंगे, (३२) स्तब्ध (जड़) न होंगे, (३३) अभिमानी न होंगे, (३४) सुवचनभाषी होंगे, (३५) कल्याण मित्र (भलोंको मित्र बनानेवाले) होंगे, (३६) अप्रमत्त रहेंगे, (३७, श्रद्धालु रहेंगे, (३८) निर्लज्ज न होंगे, (३९) अपत्रदी (उचितभयको माननेवाले) होंगे, (४०)

बहुश्रुत होंगे, (४१) उद्योगी होंगे, (४२) उपस्थित स्मृति होंगे, (४३) प्रज्ञा सम्पन्न होंगे, (४४) सांदृष्टि परामर्शी (ऐहिक लाभ सोचनेवाले) आधानग्रही (हठी), दुष्प्रतिनिसर्गी (कठिनाईसे त्याग करनेवाले) न होंगे ।

अच्छे धर्मोंके विषयमें विचारके उत्पन्न होनेको भी मैं हितकर कहता हू । काया और वचनसे उनके अनुष्ठानके बारेमें तो कहना ही क्या है, ऊपर कहे हुए (४४) विचारोंको उत्पन्न करना चाहिये ।

जैसे कोई विषम (कठिन) मार्ग है और उसके परिक्रमण (त्याग) के लिये दूसरा सममार्ग हो या विषम तीर्थ या घाट हो व उसके परिक्रमणके लिये समतीर्थ हो वैसे ही हिंसक पुरुष पुद्गल (व्यक्ति) को अहिंसा ग्र ण करने योग्य है, इसी तरह ऊपर लिखित ४४ बातें उनके विरोधी बातोंको त्यागकर ग्रहण योग्य हैं । जैसे—कोई भी अकुशल धर्म (बुरे काम) हैं वे सभी अधोभाव (अधोगति) को पहुचानेवाले हैं । जो कोई भी कुशल धर्म (अच्छे काम) हैं वे सभी उपरिभाव (उन्नतिकी तरफ) को पहुचानेवाले हैं वैसे ही हिंसक पुरुष पुद्गलको अहिंसा ऊपर पहुचानेवाली होती है । इसीतरह इन ४४ बातोंको जानना चाहिये ।

जो स्वय गिरा हुआ है वह दूसरे गिरे हुएको उठाएगा यह सभव नहीं है किंतु जो आप गिरा हुआ नहीं है वही दूसरे गिरे हुएको उठाएगा यह सभव है । जो स्वय अदा त (मनके सयमसे रहित) है, अविनीत, अपरि निर्वृत (निर्वाणको न प्राप्त) है वह दूसरको दान्त, विनीत व परिनिर्वृत करेगा यह सभव नहीं । किंतु

जो स्वय दान्त, विनीत, परिनिर्वृत्त है वह दूसरेको दान्त, विनीत, परिनिर्वृत्त करेगा यह संभव है। ऐसे ही हिंसक पुरुषके लिये अहिंसा परिनिर्वाणके लिये होती है। इसी तरह ऊपर कही ४० बातोंको जानना चाहिये।

यह मैंने सल्लेख पर्याय या चित्तुप्पाद पर्याय या परिक्रमण पर्याय या उपरिभाव पर्याय या परिनिर्वाण पर्याय उपदेशा है। श्रावकों (शिष्यों) के हितैषी, अनुकम्पक शास्ताको अनुकम्पा करके जो करना चाहिये वह तुम्हारे लिये मैंने कर दिया। ये वृक्षमूल हैं, ये सूने घर हैं, ध्यानरत होओ, प्रमाद मत करो, पीछे अफसोस करने वाले मत बनना। यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन है।

नोट-सल्लेख सूत्रका यह अभिप्राय प्रगट होता है कि अपने दोषोंको हटाकरके गुणोंको प्राप्त करना। सम्यक् प्रकार लेखना या कृश करना सल्लेखना है। अर्थात् दोषोंको दूर करना है। ऊपर लिखित ४० दोष वास्तवमें निर्वाणके लिये बाधक हैं। इनहीके द्वारा संसारका भ्रमण होता है।

समयसार ग्रंथमें जैनाचार्य कुन्दकुन्दाचार्य कहते हैं—

सामण्णपच्चया खलु चउरो भण्णंति बंधकत्तारो।
मिच्छत्तं अविरमणं कसायजोगा य बोद्धव्वा ॥ ११६ ॥

भावार्थ-कर्मबंधके कर्ता सामान्य प्रत्यय या आस्रवभाव चार कहे गए हैं। मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय और योग। आपको आपरूप न विश्वास करके और रूप मानना तथा जो अपना नहीं है उसको अपना मानना मिथ्यादर्शन है। आप वह आत्मा है जो निर्वाण स्वरूप है, अनुभवगम्य है। वचनोंसे इतना ही कहा जा-

सत्ता है कि वह जानने देखनेवाला, अमूर्तीक, अविनाशी, अखंड, परम शांत व परमानन्दमई एक अपूर्व पदार्थ है। उसे ही अपना स्वरूप मानना सम्यग्दर्शन है। मिथ्यादर्शनके कारण अहंकार और ममकार दो प्रकारके मिथ्याभाव हुआ करते हैं।

तत्वानुशासनमें नागसेन मुनि कहते हैं—

ये कर्मकृता भावाः परमार्थनयेन चात्मनो भिन्नाः ।
तत्रात्माभिनिवेशोऽहंकारोऽहं यथा नृपतिः ॥ १५ ॥
शश्वदनात्मीयेषु स्वतनुप्रमुखेषु कर्मजनितेषु ।
आत्मीयाभिनिवेशो ममकारो मम यथा देहः ॥ १४ ॥

भावार्थ—जितने भी भाव या अवस्थाएं कर्मोंके उदयसे होती हैं वे सब परमार्थदृष्टिसे आत्माके असली स्वरूपसे भिन्न हैं। उनमें अपनेपनेका मिथ्या अभिप्राय सो अहंकार है। जैसे मैं राजा हूं। जो सदा ही अपनेसे भिन्न हैं जैसे शरीर, धन, कुटुम्ब आदि। जिनका संयोग कर्मके उदयसे हुआ है उनमें अपना सम्बन्ध जोड़ना सो ममकार है, जैसे यह देह मेरा है।

अविरति—हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील परिग्रहसे विरक्त न होना अविरति है।

श्री पुरुषार्थसिद्धिउपाय ग्रन्थमें श्री अमृतचन्द्राचार्य कहते हैं—

यत्खलु कषाययोगात्प्राणानां द्रव्यभावरूपाणाम् ।
व्यपरोपणस्य करणं सुनिश्चिता भवति सा हिंसा ॥ ४३ ॥
अप्रादुर्भावः खलु रागादीनां भवत्यहिंसेति ।
तेषामेवोत्पत्तिर्हिंसेति जिनागमस्य संक्षेपः ॥ ४४ ॥

भावार्थ—जो क्रोध, मान, माया, या लोभके वशीभूत हो मन

वचन कायके द्वारा भाव प्राण और द्रव्य प्राणोंको कष्ट पहुंचाया जाय या घात किया जाय सो हिंसा है। ज्ञानदर्शन सुख शांति आदि आत्माके भाव प्राण है। इनका नाश भावहिंसा है। इंद्रिय, बल, आयु, श्वासोश्वासका नाश द्रव्यहिंसा है। पांच इन्द्रिय, तीन बल–मन, वचन, काय होते हैं। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति, एकेंद्रिय प्राणियोंके चार प्रकार होते हैं। स्पर्शनइंद्रिय, शरीरबल, आयु, श्वासोश्वास, द्वेन्द्रिय प्राणी लट, शंख आदिके छ प्राण होते हैं। ऊपरके चारमें रसनाइन्द्रिय व वचनबल बढ़ जायगा।

तेन्द्रिय प्राणी चींटी, खटमल आदिके सात प्राण होते हैं। नाक बढ़ जायगी। चौन्द्रिय प्राणी मक्खी, भौंरा आदिके आठ प्राण होते है, आंख बढ़ जायगी, पचेंद्रिय मन रहितके नौ प्राण होते हैं। कान बढ़ जायगे। पचेंद्रिय मनसहितके दश होते है। मनबल बढ़ जायगा।

प्राय सर्व ही चौपाए गाय, भैंस, हिरण, कुत्ता, बिल्ली आदि सर्व ही पक्षी कबूतर, तोता, मोर आदि, मछलियां, कछुवा आदि, तथा सर्व ही मनुष्य, देव व नारकी प्राणियोंके दश प्राण होते है।

जितने अधिक व जितने मूल्यवान प्राणीका घात होगा उतना ही अधिक हिंसाका पाप होगा। इस द्रव्य हिंसाका मूलकारण भावहिंसा है। भावहिंसाको रोक लेनेसे अहिंसाव्रत यथार्थ होजाता है।

जैसा कहा है–रागद्वेषादि भावोंका न प्रगट होना ही अहिंसा है। तथा उनका प्रगट होना ही हिंसा है यह जैनागमका संक्षेप कथन है। निर्वाण साधकके भावहिंसा नहीं होनी चाहिये।

पैशून्यहासगर्भं कर्कशमसमञ्जसं प्रलपितं च ।
अन्यदपि यदुत्सूत्रं तत्सर्वं गर्हितं गदितम् ॥ ९६ ॥

भावार्थ–जो वचन चुगलीरूप हो, हास्यरूप हो, कर्कश हो, युक्ति सहित न हो, बकवादरूप हो या शास्त्र विरुद्ध कोई भी वचन हो उसे गर्हित कहा गया है।

छेदनभेदनमारणकर्षणवाणिज्यचौर्यवचनादि ।
तत्सावद्यं यस्मात्प्राणिवधाद्याः प्रवर्तन्ते ॥ ९७ ॥

भावार्थ–जो वचन छेदन, भेदन, मारन, खींचनेकी तरफ या व्यापारकी तरफ या चोरी आदिकी तरफ प्रेरणा करनेवाले हों वे सब सावद्य वचन हैं, क्योंकि इनसे प्राणियोंको वध आदि कष्ट पहुचता है।

अरतिकरं भीतिकरं खेदकरं वैरशोककलहकरम् ।
यदपरमपि तापकरं परस्य तत्सर्वमप्रियं ज्ञेयम् ॥ ९८ ॥

भावार्थ–जो वचन अरति, भय, खेद, वैर, शोक, कलह पैदा करे व ऐसे कोई भी वचन जो मनमे ताप या दु ख उत्पन्न करे यह सर्व अप्रिय वचन जानना चाहिये ।

अवितीर्णस्य ग्रहणं परिग्रहस्य प्रमत्तयोगाद्यत् ।
तत्प्रत्येयं स्तेयं सैव च हिंसा वधस्य हेतुत्वात् ॥ १०२ ॥

भावार्थ–कषाय सहित मन, वचन, कायके द्वारा जो विना दी हुई वस्तुका ले लेना सो चोरी जानना चाहिये, यही हिंसा है। क्योंकि इससे प्राणोंको कष्ट पहुचाना है ।

यद्वेदरागयोगान्मैथुनमभिधीयते तदब्रह्म ।
अवतरति तत्र हिंसा वधस्य सर्वत्र सद्भावात् ॥ १०७ ॥

भावार्थ–जो कामभावके राग सहित मन, वचन, कायके द्वारा

मैथुन कर्म या स्पर्श कर्म किया जाय सो अब्रह्म या कुशील है। यहां भी भाव व द्रव्य प्राणोंकी हिंसा हुआ करती है।

या मूर्च्छा नामेयं विज्ञातव्य: परिग्रहो ह्येष ।
मोहोदयादुदीर्णो मूर्च्छा तु ममत्वपरिणाम: ॥ १११ ॥

भावार्थ-धनादि परपदार्थोंमें मूर्छा करना सो परिग्रह है इसमें मोहके तीव्र उदयसे ममताभाव पाया जाता है। ममता पैदा करनेके लिये निमित्त होनेसे धनादि परिग्रहका त्याग मुनीको करना योग्य है।

कषायोंके २५ भेद-वस्त्र सूत्रमें बताये जाचुके हैं—

ऊपर लिखित मिथ्यात्व, अविरति, कषाय ये सब दोष आस्रव हैं जिनका मन, वचन, कायसे सन्तोष या त्याग करना चाहिये।

इसी तरह सूत्रमें प्रथम, द्वितीय, तृतीय, चतुर्थ ध्यानके पीछे चार ध्यान और कहे हैं-(१) आकाशानन्त्यायतन अर्थात् अनंत आकाश है, इस भावमें रमजाना, (२) विज्ञानानन्त्यायतन अर्थात् विज्ञान अनन्त है इसमें रम जाना। यहां विज्ञानमें अभिप्राय ज्ञान शक्तिका लेना अधिक रुचता है। ज्ञान अनंत शक्तिको रखता है, ऐसा ध्यान करना। यदि यहां विज्ञानका भाव रूप, वेदना, संज्ञा व संस्कारसे उत्पन्न विज्ञानको लिया जावे तो वह समझमें नहीं आता क्योंकि यह इन्द्रियजन्य रूपादिसे होनेवाला ज्ञान नाशवंत है, सांत है, अनन्त नहीं होसक्ता, अनन्त तो वहां होगा जो स्वाभाविक ज्ञान है।

तीसरे आकिंचन्य आयतनको कहा है, इसका भी अभिप्राय यही झलकता है कि इस जगतमें कोई भाव मेरा नहीं, है मैं तो एक केवल स्वानुभवगम्य पदार्थ हूं।

चौथा नैवसंज्ञाना सज्ञा आयतनको कहा है। उसका भाव यह है कि किसी वस्तुका नाम है या नाम नहीं है इस विकल्पको हटाकर स्वानुभवगम्य निर्वाणपर लक्ष्य लेजाओ।

ये सब सम्यक् समाधिके प्रकार हैं। अष्टांग बौद्धमार्गमें सम्यक्समाधिको सबसे उत्तम कहा है। इसी तरह जैन सिद्धांतमें मनसे विकल्प हटानेको शून्यरूप आकाशका, ज्ञानगुणका, आकिंचन्य भावका व नामादिकी कल्पना रहितका ध्यान कहा गया है।

तत्वानुशासनमें कहा है—

तदेवानुभवश्चायमेकाग्र्यं परमृच्छति।
तथात्माधीनमानन्दमेति वाचामगोचरं ॥ १७० ॥

यथा निर्वातदेशस्थः प्रदीपो न प्रकम्पते।
तथा स्वरूपनिष्ठोऽयं योगी नैकाग्र्यमुज्झति ॥ १७१ ॥

तदा च परमैकाग्र्याद्बहिरर्थेषु सत्स्वपि।
अन्यन्न किंचनाभाति स्वमेवात्मनि पश्यतः ॥ १७२ ॥

भावार्थ—आपको आपसे अनुभव करते हुए परम एकाग्र भाव होजाता है। तब वचन अगोचर स्वाधीन अनादि प्राप्त होता है। जैसे हवाके झोकेसे रहित दीपक कांपता नहीं है वैसे ही स्वरूपमें ठहरा हुआ योगी एकाग्र भावको नहीं छोड़ता है। तब परम एकाग्र होनेसे व अपने भीतर आपको ही देखनेसे बाहरी पदार्थोंके मौजूद रहते हुए भी उसे कुछ भी नहीं झलकता है। एक आत्मा ही निर्वाण स्वरूप अनुभवमें आता है।

(७) मज्झिमनिकाय सम्यग्दृष्टि सूत्र ।

गौतमबुद्धके शिष्य सारिपुत्रने भिक्षुओंको कहा—सम्यक्दृष्टि कही जाती है । कैसे आर्य श्रावक सम्यग्दृष्टि (ठीक सिद्धांतवाला) होता है । उसकी दृष्टि सीधी, वह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धावान, इस सधर्मको प्राप्त होता है तब भिक्षुओंने कहा, सारिपुत्र ही इसका अर्थ कह ।

सारिपुत्र कहने लगे—जब आर्य श्रावक अकुशल (बुराई) को जानता है, अकुशल मूलको जानता है, कुशल (भलाई) को जानता है, कुशल मूलको जानता है, तब वह सम्यक्दृष्टि होता है ।

इन चारोंका भेद यह है । (१) प्राणातिपात (हिंसा) (२) अदत्तादान (चोरी), (३) काममें दुराचार, (४) मृषावाद (झूठ), (५) पिशुनवाद (चुगली), (६) परुष वचन (कठोर वचन), (७) सप्रलाप (बकवाद), (८) अभि या (लोभ), (९) व्यापाद (प्रतिहिंसा), (१०) मिथ्यादृष्टि (झूठी धारणा) अकुशल हैं ।

(१) लोभ, (२) द्वेष, (३) मोह, अकुशल मूल है । इन ऊपर कही दश बातोंमें विरति कुशल है । (१) अलोभ, (२) अद्वेष, (३) अमोह कुशल मूल है । जो आर्य श्रावक इन चारोंको जानता है वह राग-अनुशय (मल) का परित्याग कर, प्रतिघ (प्रति हिंसा या द्वेष) को हटाकर अस्मि (मैं) इस दृष्टिमान (धारणाके अभिमान) अनुशयको उन्मूलन कर अविद्याको नष्ट कर, विद्याको उत्पन्न कर इसी जन्ममें दु खोंका अन्त करनेवाला सम्यग्दृष्टि होता है।

जब आर्य श्रावक आहार, आहार समुदय (आहारकी

उत्पत्ति), आहार निरोध और आहार निरोध गामिनी प्रतिपद, (आहारके विनाशकी ओर लेजाने मार्ग) को जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। इसका खुलासा यह है–सत्वोंकी स्थिति होनेकी सहायताके लिये भूतों (प्राणियों) के लिये चार आहार हैं–(१) स्थूल या सूक्ष्म कवलिंकार (ग्रास करके खाया जानेवाला) आहार, (२) स्पर्श, (३) मनकी सचेतना, (४) विज्ञान, तृष्णाका समुदय ही आहारका समुदय (कारण) है। तृष्णाका निरोध–आहारका निरोध है, आर्य–अष्टांगिक मार्ग आहार निरोधगामिनी प्रतिपद है जैसे (१) सम्यग्दृष्टि, (२) सम्यक् सङ्कल्प, (३) सम्यक् वचन, (४) सम्यक् कर्मान्त (कर्म), (५) सम्यक् आजीव (भोजन), (६) सम्यक् व्यायाम (उद्योग), (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक् समाधि। जो इनको जानकर सर्वथा रागानुशयको परित्याग करता है वह सम्यग्दृष्टि होता है। जब आर्य श्रावक (१) दुःख, (२) दुःख समुदय (कारण), (३) दुःख निरोध, (४) दुःख निरोधगामिनी प्रतिपदको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। इसका खुलासा यह है–जन्म, जरा, व्याधि, मरण, शोक, परिदेव (रोना), दुःख दौर्मनस्य (मनका संताप), उपायास (परेशानी) दुःख है। किसीकी इच्छा करके उसे न पाना भी दुःख है। संक्षेपमें पांचों उपादान (विषयके तौरपर ग्रहण करने योग्य रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान) स्कंध ही दुःख है। वह जो नन्दी (रत) उन उन भोगोंको अभिनन्दन करनेवाली, रागसे संयुक्त फिर फिर जन्मनेकी तृष्णा है जैसे (१) काम (इन्द्रिय संभोग) की तृष्णा, (२) भव (जन्मने) की तृष्णा, (३) विभव (धन) की तृष्णा। यह दुःख समुदय (कारण) है।

जो उस तृष्णाका सम्पूर्णतया विराग, निरोध, त्याग, प्रति नि सर्ग, मुक्ति अनालय (लीन न होना) यह दुःख निरोध है। ऊपर लिखित आर्य अष्टांगिक मार्ग दुःख निरोधगामिनि प्रतिपद है।

जब आर्य श्रावक जरा मरणको, इसके कारणको, इसके निरोधको व निरोधके उपायको जानता है तब यह सम्यग्दृष्टि होता है।

प्राणियोंके शरीरमें जीर्णता, खाडित्य (दांत टूटना), पालित्य (बालकपना), वलित्वचा (झुर्री पड़ना), आयुक्षय, इन्द्रिय परिपाक यह जरा कही जाती है। प्राणियोंका शरीरोंसे च्युति भेद, अन्तर्धान, मृत्यु, मरण, स्कन्धोंका विलग होना, कलेवरका निक्षेप, यह मरण कहा जाता है। जाति समुदय (जन्मका होना) जरा मरण समुदय है। जाति निरोध, जरा मरण निरोध है। यही अष्टांगिक मार्ग निरोधका उपाय है।

जब आर्य श्रावक तृष्णाको, तृष्णाके समुदयको, उसके निरोधको तथा निरोध गामिनी प्रतिपद्को जानता है तब यह सम्यग्दृष्टि होता है। तृष्णाके छ आकार हैं—(१) रूप तृष्णा (२) शब्द तृष्णा, (३) गन्ध तृष्णा, (४) रस तृष्णा, (५) स्पर्श तृष्णा, (६) धर्म (मनके विषयोंकी) तृष्णा। वेदना (अनुभव) समुदय ही तृष्णा समुदय है (तृष्णाका कारण) है। वेदना निरोध ही तृष्णा निरोध है। यही अष्टांगिक मार्ग निरोध प्रतिपद है।

जब आर्य श्रावक वेदनाको, वेदना समुदयको, उसके निरोधको, तथा निरोधगामिनी प्रतिपद्को जानता है तब यह

सम्यकृदृष्टि होता है। वेदनाके छ प्रकार है (१) चक्षु सस्पर्शजा (चक्षुके सयोगसे उत्पन्न) वेदना, (२) श्रोत्र सस्पर्शजा वेदना, (३) घ्राण सस्पर्शजा वेदना, (४) जिह्वा सस्पर्शजा वेदना, (५) काय सस्पर्शजा वेदना, (६) मनः सस्पर्शजा वेदना। स्पर्श (इन्द्रिय और विषयका सयोग) समुदय ही वेदना समुदय है (वेदनाका कारण है।) स्पर्शनिरोधसे वेदनाका निरोध है। वही आष्टांगिक मार्ग वेदना विरोध प्रतिपद् है।

जब आर्य श्रावक स्पर्श (इन्द्रिय और विषयके सयोग)को, स्पर्श समुदयको, उसके निरोधको, तथा निरोधगामिनी प्रतिपद्को जानता है तब सम्यकृदृष्टि होती है। स्पर्शके छ प्रकार है (१) चक्षु–सस्पर्श (२) श्रोत्र-सस्पर्श, (३) घ्राण–सस्पर्श, (४) जिह्वा–सस्पर्श, (५) काय-सस्पर्श, (६) मन-सस्पर्श। षड् आयतन (चक्षु, श्रोत्र, घ्राण, जिह्वा, काय या तन तथा मन ये छ इन्द्रिया) समुदय ही स्पर्श समुदय (स्पर्शका कारण) है। षडायतन निरोधसे स्पर्श निरोध होता है। वही अष्टांगिक मार्ग निरोधका उपाय है। जब आर्य श्रावक षडायतनको, उसके समुदयको, उसके निरोधको, उस निरोधके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। ये छ आयतन (इन्द्रिया) हैं–(१) चक्षु, (२) श्रोत्र, (३) घ्राण, (४) जिह्वा, (५) काय, (६) मन। नामरूप (विज्ञान और रूप Mind and Matter) समुदय षडायतन समुदय (कारण) है। नामरूप निरोध षडायतन निरोध है। वही अष्टांगिक मार्ग उस निरोधका उपाय है।

जब आर्य श्रावक नामरूपको, उसके समुत्पको, उसके निरोधको व निरोधके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है-(१) वेदना-(विषय और इन्द्रियके संयोगसे उत्पन्न मन पर प्रथम प्रभाव), (२) संज्ञा-(वेदनाके अनन्तरकी मनकी अवस्था), (३) चेतना-(संज्ञाके अनन्तरकी मनकी अवस्था), (४) स्पर्श मनसिकार (मनपर संस्कार) यह नाम है। चार महाभूत (पृथ्वी, जल, आग, वायु) और चार महाभूतोंको लेकर (बन) रूप कहा जाता है। विज्ञान समुदय नाम रूप समुदय है, विज्ञान निरोध नामरूप निरोध है, उसका उपाय यही आष्टांगिक मार्ग है।

जब आर्य श्रावक अविद्याको, अविद्या समुदय, अविद्या निरोधको व उसके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। दुःखके विषयमें अज्ञान, दुःख समुदयके विषयमें अज्ञान, दुःख निरोधके विषयमें अज्ञान, दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदके विषयमें अज्ञान अविद्या है। आस्रव समुदय अविद्या समुदय है। आस्रव निरोध, अविद्या निरोध है। उसका उपाय यही आष्टांगिक मार्ग है। जब आर्य श्रावक आस्रव (चित्तमल)को, आस्रव समुदयको, आस्रव निरोधको, उसके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। तीन आस्रव हैं—(१) काम आस्रव, (२) भव (जन्मनेका) आस्रव, (३) अविद्या आस्रव। अविद्या समुदय आस्रव समुदय है। अविद्या निरोध आस्रव निरोध है। यही आष्टांगिक मार्ग सुखका उपाय है।

इस तरह वह सब रागानुशय (रागमल) को दूरकर, प्रतिघ (प्रतिहिंसा) अनुशयको हटाकर, अस्मि (मैं हूं) इस दृष्टिमान (धारणाके अभिमान) अनुशयको उन्मूलन कर, अविद्याको नष्टकर, विद्याको उत्पन्न कर, इसी जन्ममें दुःखोंका अन्त करनेवाला होता है। इस तरह आर्य श्रावक सम्यग्दृष्टि होता है। उसकी दृष्टि सीधी होती है। वह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धावान हो इस सद्धर्मको प्राप्त होता है।

नोट—इस सूत्रमें सम्यग्दृष्टि या सत्य श्रद्धावानके लिये पहले ही यह बताया है कि वह मिथ्यात्वको तथा हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व लोभको छोड़े, तथा उनके कारणोंको त्यागे। अर्थात्

जब आर्य श्रावक नामरूपको, उसके समुदयको, उसके निरोधको व निरोधके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है-(१) वेदना-(विषय और इन्द्रियके संयोगसे उत्पन्न मन पर प्रथम प्रभाव), (२) संज्ञा-(वेदनाके अनन्तरकी मनकी अवस्था), (३) चेतना-(संज्ञाके अनन्तरकी मनकी अवस्था), (४) स्पर्श-मनसिकार (मनपर संस्कार) यह नाम है। चार महाभूत (पृथ्वी, जल, आग, वायु) और चार महाभूतोंको लेकर (बन) रूप कहा जाता है। विज्ञान समुदय नाम रूप समुदय है, विज्ञान निरोध नामरूप निरोध है, उसका उपाय यही अष्टांगिक मार्ग है।

जब आर्य श्रावक विज्ञानको, विज्ञानके समुदयको, विज्ञान निरोधको व उसके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। ६ विज्ञानके समुदाय (काय) है-(१) चक्षु विज्ञान, (२) श्रोत्र विज्ञान, (३) घ्राण विज्ञान, (४) जिह्वा विज्ञान, (५) काय विज्ञान, (६) मनो विज्ञान। संस्कार समुदय विज्ञान समुदय है। संस्कार निरोध विज्ञान निरोध है। उसका उपाय यह अष्टांगिक मार्ग है।

जब आर्य श्रावक संस्कारोंको, संस्कारोंके समुदयको, उनके निरोधको, उसके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। संस्कार (क्रिया, गति) तीन है-(१) काय संस्कार, (२) वचन संस्कार, (३) चित्त संस्कार। अविद्या समुदय संस्कार समुदय है, अविद्या निरोध संस्कार निरोध है। उसका उपाय यही अष्टांगिक मार्ग है।

जब आर्य श्रावक अविद्याको, अविद्या समुदय, अविद्या निरोधको व उसके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। दुःखके विषयमें अज्ञान, दुःख समुदयके विषयमें अज्ञान, दुःख निरोधके विषयमें अज्ञान, दुःख निरोध गामिनी प्रतिपदके विषयमें अज्ञान अविद्या है। आस्रव समुदय अविद्या समुदय है। आस्रव निरोध, अविद्या निरोध है। उसका उपाय यही आष्टांगिक मार्ग है। जब आर्य श्रावक आस्रव (चित्तमल)को, आस्रव समुदयको, आस्रव निरोधको, उसके उपायको जानता है तब वह सम्यग्दृष्टि होता है। तीन आस्रव हैं—(१) काम आस्रव, (२) भव (जन्मनेका) आस्रव, (३) अविद्या आस्रव। अविद्या समुदय आस्रव समुदय है। अविद्या निरोध आस्रव निरोध है। यही आष्टांगिक मार्ग सुखका उपाय है।

इस तरह वह सब रागानुशुसय (रागमल) को दूरकर, प्रतिघ (प्रतिहिंसा) अनुशयको हटाकर, अस्मि (मैं हूं) इस दृष्टिमान (धारणाके अभिमान) अनुशयको उन्मूलन कर, अविद्याको नष्टकर, विद्याको उत्पन्न कर, इसी जन्ममें दुःखोंका अन्त करनेवाला होता है। इस तरह आर्य श्रावक सम्यक्दृष्टि होता है। उसकी दृष्टि सीधी होती है। वह धर्ममें अत्यन्त श्रद्धावान हो इस सद्धर्मको प्राप्त होता है।

नोट—इस सूत्रमें सम्यग्दृष्टि या सत्य श्रद्धावानके लिये पहले ही यह बताया है कि वह मिथ्यात्वको तथा हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व लोभको छोड़े, तथा उनके कारणोंको त्यागे। अर्थात्

है। अर्थात् एक संस्कारोंका पुंज होजाता है। इसीसे नामरूप होता है। नामरूप ही अशुद्ध प्राणी है, सशरीरी है।

इस सर्व अविद्या व उनके परिवारको दूर करनेका मार्ग सम्यग्दृष्टि होकर फिर अष्टांग मार्गको पालना है। मुख्य सम्यक्समाधिका अभ्यास है। सम्यग्दृष्टि वही है जो इस सर्व अविद्या आदिको त्यागने योग्य समझ ले, इन्द्रिय व मनके विषयोंसे विरक्त होजावे। राग, द्वेष, मोहको दूर कर दे। यहां भी मोहसे प्रयोजन अहङ्कार ममकारसे है। आपको निर्वाणरूप न जानकर कुछ और समझना। आपके सिवाय परको अपना समझना मोह या मिथ्यादृष्टि है। इसीसे पर इष्ट पदार्थोंमें राग व अनिष्टमें द्वेष होता है। अविद्या सम्बन्धी रागद्वेष मोह सम्यक्दृष्टिके नहीं होता है। उसके भीतर विद्याका जन्म होजाता है, सम्यक्ज्ञान होजाता है। वह निर्वाणका अत्यन्त श्रद्धावान होकर सत्य धर्मका लाभ लेनेवाला सम्यक् दृष्टि होजाता है।

जैन सिद्धांतको देखा जायगा तो यही बात विदित होगी कि अज्ञान सम्बन्धी राग व द्वेष तथा मोह सम्यक्दृष्टिके नहीं होता है। जैन सिद्धांतमें कर्मके सम्बन्धको स्पष्ट करते हुए, इसी बातको समझाया है। इस निर्वाण स्वरूप आत्माका स्वरूप ही सम्यग्दर्शन या स्वात्म प्रतीति है परन्तु अनादि कालसे उनका प्रकाश पांच प्रकारकी कर्म प्रकृतियोंके आवरणसे या उनके मैलसे नहीं हो रहा है। चार अनंतानुबन्धी (पाषाणकी रेखाके समान) क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व कर्म। अनंतानुबन्धी माया और लोभको अज्ञान

सम्बन्धी राग व क्रोध और मानको अज्ञान सम्बन्धी द्वेष कहते हैं। मिथ्यात्वको मोह कहते है। इस तरह राग, द्वेष, मोहके उत्पन्न करनेवाले कर्मोंका सयोग बाधक है। जैन सिद्धांतमें पुद्गल (Matter) के परमाणुओंके समुदायसे बने हुए एक खास जातिके स्कंधोंको **कार्माण वर्गणा** Karmic molecules कहते हैं। जब यह ससारी प्राणीमे सयोग पाते है तब इनको कर्म कहते है। कर्मविपाक ही कर्म फल है।

जब तक सम्यग्दर्शनके घातक या निरोधक इन पाच कर्मोंको दबाया या क्षय नहीं किया जाता है तब तक सम्यग्दर्शनका उदय नहीं होता है। इनके असरको मारनेका उपाय तत्व अभ्यास है। तत्व अभ्यासके लिये चार बातोंकी जरूरत है—(१) शास्त्रोंको पढकर समझना, (२) शास्त्रज्ञाता गुरुओंसे उपदेश लेना (३) पूजनीय परमात्मा अरहत और सिद्धकी भक्ति करना। (४) एकातमें बैठकर स्वतत्व परतत्वका मनन करना कि एक निर्वाण स्वरूप मेरा शुद्धात्मा ही स्वतत्व है, ग्रहण करने योग्य है तथा अन्य सर्व शरीर वचन व मनके सस्कार व कर्म आदि त्यागने योग्य है।

शरीर सहित जीवनमुक्त सर्वज्ञ वीतराग पदधारी आत्माको अरहत परमात्मा कहते है। शरीर रहित अमूर्तीक सर्वज्ञ वीतराग पदधारी आत्माको सिद्ध परमात्मा कहते हैं। इसीलिये जैनागममें कहा है—

चत्तारि मगल—अरहतमगल, सिद्धमगल, साहूमगल, केवलिपण्णत्तो धम्मो मगल ॥ १ ॥ चत्तारि लोगुत्तमा—अरहत लोगुत्तमा, सिद्धलोगुत्तमा, साहूलोगुत्तमा, केवलिपण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमा ॥२॥

चत्तारि सरण पव्वज्जामि–अरहन्तसरण पवज्जामि, सिद्धसरण पव्वज्जामि, साहू सरण पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तो धम्मो सरण पव्वज्जामि।

चार मगल है—

अरहत मगल है, सिद्ध मगल है, साधु मगल है, केवलीका कहा हुआ धर्म मगल (पापनाशक) है। चार लोकमें उत्तम हैं–अरहत, सिद्ध, साधु व केवली कथित धर्म। चारकी शरण आता हू–अरहत, सिद्ध साधु व केवली कथित धर्म।

धर्मके ज्ञानके लिये शास्त्रोंको पढ़कर दु खके कारण व दु ख मेटनेके कारणको जानना चाहिये। इसीलिये जैन सिद्धातमें श्री उमास्वामीने कहा है–"तत्त्वार्थश्रद्धान सम्यग्दर्शन" २।१ तत्व सहित पदार्थोंको श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तत्व सात है–"जीवाजीवास्रवबधसवरनिर्जरामोक्षास्तत्व" जीव, अजीव, आस्रव, बध, सवर निर्जरा और मोक्ष, इनसे निर्वाण पानेका मार्ग समझमें आता है। मैं तो अजर अमर, शाश्वत अनुभव गोचर ज्ञानदर्शन स्वरूप व निर्वाणमय अखण्ड एक अमूर्तीक पदार्थ हू। यह जीव तत्व है। मेरे साथ शरीर सूक्ष्म और स्थूल तथा बाहरी जड़ पदार्थ, या आकाश, काल तथा धर्मास्तिकाय (गमन सहकारी द्रव्य) और अधर्मास्तिकाय (स्थिति सहकारी द्रव्य) ये सब अजीव है, मुझसे भिन्न है।

कार्माण शरीर जिन कर्मवर्गणाओं (Karmic molecules) से बनता है उनका खिंचकर आना सो आस्रव है। तथा उनका सूक्ष्म शरीरके साथ बधना बध है। इन दोनोंका कारण मन, वचन कायकी क्रिया तथा क्रोधादि कषाय हैं। इन भावोंके रोकनेसे

उनका नहीं आना संवर है। ध्यान समाधिसे कर्मोंका क्षय करना निर्जरा है। सर्व कर्मोंसे मुक्त होना, निर्वाण लाभ करना मोक्ष है।

इन सात तत्वोंको श्रद्धानमें लाकर फिर साधक अपने आत्माको परसे भिन्न निर्वाण स्वरूप प्रतीत करके भावना भाता है। निरंतर अपने आत्माके मननसे भावोंमें निर्मलता होती है तब एक समय आजाता है जब सम्यग्दर्शनके रोकनेवाले चार अनंतानुबंधी कषाय और मिथ्यात्वका उपशम कर देता है और सम्यग्दर्शनको प्राप्त कर लेता है। जब सम्यग्दर्शनका प्रकाश झलकता है तब आत्माका साक्षात्कार होजाता है—स्वानुभव होजाता है। इसी जन्ममें निर्वाणका दर्शन होजाता है। सम्यग्दर्शनके प्रतापसे सच्चा सुख स्वादमें आता है। अज्ञान सम्बन्धी राग, द्वेष, मोह सब चला जाता है, ज्ञान सम्बन्धी रागद्वेष रहता है। जब सम्यग्दृष्टी श्रावक हो अहिंसादि अणुव्रतोंको पालता है तब रागद्वेष कम करता है। जब वही साधु होकर अहिंसादि महाव्रतोंको पालता हुआ सम्यक् समाधिका भले प्रकार साधन करता है तब अरहंत परमात्मा होजाता है। फिर आयुके क्षय होनेपर निर्वाण लाभकर सिद्ध परमात्मा होजाता है।

पंचाध्यायीमें कहा है—

सम्यक्त्वं वस्तुतः सूक्ष्मं केवलज्ञानगोचरम्।
गोचरं स्वावधिस्वान्तपर्ययज्ञानयोर्द्वयो ॥ ३७५ ॥
अस्त्यात्मनो गुणः कश्चित् सम्यक्त्वं निर्विकल्पकं।
तद्दृङ्मोहोदयान्मिथ्यास्वादुरूपमनादितः ॥ ३७७ ॥

भावार्थः—सम्यग्दर्शन वास्तवमें केवलज्ञानगोचर अति सूक्ष्म गुण है या परमावधि, सर्वावधि व मनःपर्ययज्ञानका भी विषय है।

यह निर्विकल्प अनुभव गोचर आत्माका एक गुण है । यह दर्शन मोहनीयके उदयमें अनादि कालसे मिथ्या स्वादु रूप होरहा है ।

तद्यथा स्वानुभूतौ वा तत्काले वा तदात्मनि ।
अस्त्यवश्यं हि सम्यक्त्वं यस्मात्सा न विनापि तत् ॥४०९॥

भावार्थ.-जिस आत्मामें जिस काल स्वानुभूति है (आत्माका निर्वाण स्वरूप साक्षात्कार होरहा है) उस आत्मामें उस समय अवश्य ही सम्यक्त्व है । क्योंकि विना सम्यक्तके स्वानुभूति नहीं होसक्ती है।

सम्यग्दृष्टिमें प्रशम, संवेग, अनुकम्पा आस्तिक्य चार गुण होते हैं । इनका लक्षण पंचाध्यायीमें है—

प्रशमो विषयेषूच्चैर्भावक्रोधादिकेषु च ।
लोकासंख्यातमात्रेषु स्वरूपाच्छिथिलं मनः ॥ ४२६ ॥

भा०-पांच इन्द्रियके विषयोंमें और असंख्यात लोक प्रमाण क्रोधादि भावोंमें स्वभावसे ही मनका शिथिलता होना प्रशम या शांति है ।

संवेगः परमोत्साहो धर्मे धर्मफले चितः ।
सधर्मेष्वनुरागो वा प्रीतिर्वा परमेष्ठिषु ॥ ४३१ ॥

भा०-साधक आत्माका धर्ममें व धर्मके फलमें परम उत्साह होना संवेग है । अन्यथा साधर्मियोंके साथ अनुराग करना व अरहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय, साधुमें प्रेम करना भी संवेग है ।

अनुकम्पा क्रिया ज्ञेया सर्वसत्वेष्वनुग्रहः ।
मैत्रीभावोऽथ माध्यस्थं नैःशल्यं वैरवर्जनात् ॥ ४४६ ॥

भावार्थ-सर्व प्राणियोंमें उपकार बुद्धि रखना अनुकम्पा (दया) कहलाती है अथवा सर्व प्राणियोंमें मैत्रीभाव रखना भी अनु

कम्पा है या द्वेष बुद्धिको छोडकर माध्यस्थ भाव रखना या वैरभाव छोडकर शल्य रहित या कषाय रहित होना भी अनुकम्पा है।

आस्तिक्य तत्त्वसद्भावे स्वतः सिद्धे विनिश्चितिः ।
धर्मे हेतौ च धर्मस्य फले चाऽऽत्मादि धर्मवत् ॥ ४९२ ॥

भावार्थ-स्वतः सिद्ध तत्वोंके सद्भावमें, धर्ममें, धर्मके कारणमें, व धर्मके फलमें निश्चय बुद्धि रखना आस्तिक्य है। जैसे आत्मा आदि पदार्थोंके धर्म या स्वभाव है उनका वैसा ही श्रद्धान करना आस्तिक्य है।

तत्राय जीवसंज्ञो य स्वसंवेद्यश्चिदात्मकः ।
सोहमन्ये तु रागाद्या हेया पौद्गलिका अमी ॥ ४९७ ॥

भावार्थ-यह जो जीव संज्ञाधारी आत्मा है वह स्वसंवेद्य (अपने आपको आप ही जाननेवाला) है, ज्ञानवान है, वही मैं हूं। शेष जितने रागद्वेषादि भाव हैं वे पुद्गलमयी हैं, मुझसे भिन्न हैं, त्यागने योग्य हैं, तब खोजियोंको उचित है कि जैन सिद्धांत देखकर सम्यग्दर्शनका विशेष स्वरूप समझें।

(८) मज्झिमनिकाय स्मृतिप्रस्थानसूत्र।

गौतम बुद्ध कहते हैं-*भिक्षुओ!* ये जो चार स्मृति प्रस्थान हैं वे सत्वोंके कष्ट मेटनेके लिये, दुःख दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, सत्यकी प्राप्तिके लिये, निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात्कार करनेके लिये मार्ग है। (१) कायमें काय अनुपश्यी (शरीरको उसके असल स्वरूप केश, नख, मलमूत्र आदि रूपमें देखनेवाला),

(२) वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी (सुख, दु ख व न दु ख सुख इन तीन चित्तकी अवस्थारूपी वेदनाओंको जैसा हो वैसा देखनेवाला। (३) चित्तमें चित्तानुपश्यी, (४) धर्मोमें धर्मानुपश्यी हो, उद्योगशील अनुभव ज्ञानयुक्त, स्मृतिवान् लोकमें (ससार या शरीर) में (अभिध्या) लोभ और दौर्मनस्य (दु ख) को हटाकर विहरता है।

(१) कैसे भिक्षु कायमें कायानुपश्यी हो विहरता है। भिक्षु आराममें वृक्षके नीचे या शून्यागारमें आसन मारकर, शरीरको सीधा कर, स्मृतिको सामने रखकर बैठता है। वह स्मरण रखते हुए श्वास छोड़ता है, श्वास लेता है। लम्बी या छोटी श्वास लेना सीखता है, कायक संस्कारको शात करते हुए श्वास लेना सीखता है, कायके भीतरी और बाहरी भागको जानता है, कायकी उत्पत्तिको देखता है, कायमें नाशको देखता है। कायको कायरूप जानकर तृष्णासे अलिप्त हो विहरता है। लोकमें कुछ भी (मैं मेरा करक) नहीं ग्रहण करता है। भिक्षु जाते हुए, बैठते हुए, गमन आगमन करते हुए, सकोड़ने, फैलाने हुए, खाते पीने, मलमूत्र करते हुए, खड़े होने, सोते जागते, बोलते, चुप रहते जानकर करनेवाला होता है। वह पैरसे मस्तक तक सर्व अङ्ग उपाङ्गोंको नाना प्रकार मलोंसे पूर्ण देखता है। वह कायकी रचनाको देखता है कि यह पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु इन चार धातुओंसे बनी है। वह मुर्दा शरीरकी छिन्नभिन्न दशाको देखकर शरीरको उत्पत्ति व्यय स्वभावी जानकर कायको कायरूप जानकर विहरता है।

(२) भिक्षु वेदनाओंमें वेदनानुपश्यी हो कैसे विहरता है। सुख वेदनाओंको अनुभव करते हुए "सुख वेदना अनुभव

कर रहा हू" जानता है। दुख वेदनाको अनुभव करते हुए "दुःख-वेदना अनुभव कर रहा हू" जानता है। अदुःख असुख वेदनाका अनुभव करते हुए "अदु ख असुख वेदनाको अनुभव कर रहा हू" जानता है।

(३) भिक्षु चित्तम चित्तानुपश्यी हो कसे विहरता है-वह सराग चित्तको "सराग चित है" जानता है। इसी तरह विराग चित्तको विराग रूप, सद्वेष चित्तको सद्वेष रूप, वीत द्वेषको वात द्वेष रूप, समोह चित्तको समोहरूप, वीत मोह चित्तको वीत मोहरूप, इसी तरह सक्षिप्त, विक्षिप्त महद्गत अमहद्गत, उत्तर, अनुत्तर, समाहित (एकाग्र), असमहित, विमुक्त, अविमुक्त चित्तको जानकर विहरता है।

(४) भिक्षु धर्मोम धर्मानुपश्यी हो कैसे विहरता है-भिक्षु पाच नीवरण धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है। वे पांच नीवरण हैं-(१) कामच्छन्द-विद्यमान कामच्छन्दकी, अविद्यमान कामच्छन्दकी, अनुत्पन्नकामच्छन्दकी कसे उत्पत्ति होती है। उत्पन्न कामच्छन्दका कैसे विनाश होता है। विनष्ट कामच्छन्दकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती, जानता है। इसी तरह (२) व्यापाद (द्रोहको), (३) स्त्यान गृद्ध (शरीर व मनकी अस्वस्थता) को, (४) उद्धच्चकुक्कुच्च (उद्वेग-खेद) को तथा (५) विचिकित्सा (सशय) को जानता है। यह पाच उपादान स्कध धर्मोंमें धर्मानुपश्यी हो विहरता है। वह अनुभव करता है कि यह (१) रूप है, यह रूपकी उत्पत्ति है। यह रूपका विनाश है, (२) यह वेदना है-यह

वेदनाकी उत्पत्ति है यह वेदनाका विनाश है, (३) यह संज्ञा है—यह संज्ञाकी उत्पत्ति है यह संज्ञाका विनाश है (४) यह संस्कार है, यह संस्कारकी उत्पत्ति है, यह संस्कारका विनाश है, (५) यह विज्ञान है—यह विज्ञानकी उत्पत्ति है, यह विज्ञानका विनाश है।

वह छ शरीरके भीतरी और बाहरी आयतन धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है, भिक्षु—(१) चक्षुको व रूपको अनुभव करता है। उन दोनोंका संयोजन कैसे उत्पन्न होता है उसे भी अनुभव करता है, जिस प्रकार अनुत्पन्न संयोजनकी उत्पत्ति होती है उसे भी जानता है। जिस प्रकार उत्पन्न संयोजनका नाश होता है उसे भी जानता है। जिस प्रकार नष्ट संयोजनकी आगे फिर उत्पत्ति नहीं होती उसे भी जानता है। इसी तरह (२) श्रोत्र व शब्दको, (३) घ्राण व गंधको (४) जिह्वा व रसको (५) काया व स्पर्शको (६) मन व मनके धर्मोंको। इस तरह भिक्षु शरीरके भीतर और बाहरवाले छ आयतन धर्मोंका स्वभाव अनुभव करते हुए विहरता है।

वह सात बोधिअंग धर्मोंमें धर्म अनुभव करता विहरता है (१) स्मृति—विद्यमान भीतरी (अध्यात्म) स्मृति बोधिअंगको मेरे भीतर स्मृति है, अनुभव करता है। अविद्यमान स्मृतिको मेरे भीतर स्मृति नहीं है अनुभव करता है। जिस प्रकार अनुत्पन्न स्मृतिकी उत्पत्ति होती है उसे जानता है, जिस प्रकार स्मृति बोधिअंगकी भावना पूर्ण होती है उसे भी जानता है। इसी तरह (२) धर्मविचय (धर्म अन्वेषण), (३) वीर्य, (४) प्रीति, (५) प्रश्रब्धि (शांति),

(६) समाधि, (७) उपेक्षा बोधि अंगोंके सम्बन्धमें जानता है। (बोधि (परमज्ञान) प्राप्त करनेमें ये सातों परम सहायक हैं इसलिये इनको बोधिअंग कहा जाता है)

वह भिक्षु चार आर्य सत्य धर्मोंमें धर्म अनुभव करते विहरता है। (१) यह दुःख है, ठीक२ अनुभव करता है, (२) यह दुःखका समुदय या कारण है, (३) यह दुःख निरोध है, (४) यह दुःख निरोधकी ओर लेजानेवाला मार्ग है, ठीक ठीक अनुभव करता है।

इसी तरह भिक्षु भीतरी धर्मोंमें धर्मानुपश्यी होकर विहरता है। असंग्ग (अलिप्त) हो विहरता है। लोकमें किसीको भी "मैं और मेरा" करके नहीं ग्रहण करता है।

जो कोई इन चार स्मृति प्रस्थानोंको इस प्रकार सात वर्ष भावना करता है उसको दो फलोंमें एक फल अवश्य होना चाहिये। इसी जन्ममें आज्ञा (अर्हत्व) का साक्षात्कार वा उपाधि शेष होनेपर अनागामी भवि रहनेको सात वर्ष, जो कोई छ वर्ष, पाच वर्ष, चार वर्ष, तीन वर्ष, दो वर्ष, एक वर्ष, सात मास, छ मास, पाच मास, चार मास, तीन मास, दो मास, एक मास, अर्ध मास या एक सप्ताह भावना करे वह दो फलोंमेंसे एक फल अवश्य पावे। ये चार स्मृति प्रस्थान सत्वोंके शोक कष्टकी विशुद्धिके लिये दुःख दौर्मनस्यके अतिक्रमणके लिये, सत्यकी प्राप्तिके लिये, निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात् करनेके लिये एकायन मार्ग है।

नोट इस सूत्रमें पहले ही बताया है कि ये चार स्मृतियें निर्वाणकी प्राप्ति और साक्षात्कार करनेके लिये मार्ग हैं। ये वाक्य

भावार्थ–संसारी प्राणियोंके भीतर अनादिकालकी यह वासना है कि शरीरादिमें ममता करते हैं इसलिये जब मनोज्ञ इंद्रिय विषयकी प्राप्ति होती है तब सुख, जब इसके विरुद्ध हो तब दुःख अनुभव कर लेते है। परन्तु ये ही भोग जिनसे सुख मानता है आपत्तिके समय, चिन्ताके समय रोगके समय अच्छे नहीं लगते हैं। भूख प्याससे पीड़ित मानवको सुंदर गाना बजाना व सुंदर स्त्रीका संयोग भी दुःखदाई भासता है, अपनी कल्पनासे यह प्राणी सुखी दुःखी होजाता है। तत्वसारमें कहा है—

भुंजतो कम्मफलं कुणइ ण रायं च तह य दोसं वा।
सो संचियं विणासइ अहिणवकम्मं ण बंधेइ ॥ ९१ ॥
भुंजतो कम्मफलं भावं मोहेण कुणइ सुहमसुहं।
जइ तं पुणोवि बंधइ णाणावरणादि अट्ठविहं ॥ ९२ ॥

भावार्थ–जो ज्ञानी कर्मोंका फल सुख या दुःख भोगते हुए उनके स्वरूपको जैसाका तैसा जानकर राग व द्वेष नहीं करता है वह उस संचित कर्मको नाश करता हुआ नवीन कर्मोंको नहीं बांधता है, परन्तु जो कोई अज्ञानी कर्मोंका फल भोगता हुआ मोहसे सुख व दुःखमें शुभ या अशुभ भाव करता है अर्थात् मैं सुखी या मैं दुःखी इस भावनामें लिप्त होजाता है वह ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्मोंको बांध लेता है।

श्री समन्तभद्राचार्य सांसारिक सुखकी असारता बताते हैं–स्वयंभूस्तोत्रमें कहा है—

शतह्रदोन्मेषचलं हि सौख्यं तृष्णामयाप्यायनमात्रहेतुः।
तृष्णाभिवृद्धिश्च तपत्यजस्रं तापस्तदायासयतीत्यवादीः ॥१३॥

भावार्थ-हे समवनाथ स्वामी! आपने यह उपदेश दिया है कि ये इन्द्रियोंके सुख बिजलीके चमत्कारके समान नाशवान हैं। इनके भोगनेसे तृष्णाका रोग बढ़ जाता है। तृष्णाकी वृद्धि निरन्तर चिंताका आताप पैदा करती है। उस आतापसे प्राणी कष्ट पाता है।

श्री रत्नकरण्डमें कहा है—

कर्मपरवशे सान्ते दुःखैरन्तरितोदये।
पापबीजे सुखेऽनास्था श्रद्धानाकांक्षणा स्मृता ॥ १२ ॥

भावार्थ-सम्यक्दृष्टी इन्द्रियोंके सुखोंमें श्रद्धा नहीं रखता है व समझता है कि ये सुख पूर्व बांधे हुए पुण्य कर्मोंके आधीन हैं, अन्त सहित हैं, इनके भीतर दुःख भरा हुआ है। तथा पाप कर्मके बन्धके कारण है।

श्री कुलभद्राचार्य सार समुच्चयमें कहते हैं—

इन्द्रियप्रभवं सौख्यं सुखाभासं न तत्सुखम्।
तच्च कर्मविबन्धाय दुःखदानैकपण्डितम् ॥ ७७ ॥

भावार्थ-इन्द्रियोंके द्वारा होनेवाला सुख सुखसा झलकता है परन्तु वह सच्चा सुख नहीं है। इससे कर्मोंका बन्ध होता है व केवल दुःखोंको देनेमें चतुर है।

शक्रचापसमा भोगा सम्पदो जलदोपमा।
यौवनं जलरेखेव सर्वमेतदशाश्वतम् ॥ १९१ ॥

भावार्थ-ये भोग इन्द्रधनुषके समान चचल हैं छूट जाते हैं, ये सम्पदाएं बादलोंके समान सरक जाती हैं, यह युवानी जलमें खींची हुई रेखाके समान नाश होजाती है। ये सब भोग, सम्पत्ति व युवानी आदि क्षणभगुर हैं व अनित्य हैं।

(३) तीसरी स्मृति यह बताई है कि चित्तको जैसा हो वैसा जाने। इसका भाव य, है कि ज्ञानी अपने भावोंको पहचाने। जब परिणामोंमें राग, द्वेष, मोह आकुलता, चंचलता, दीनता हो तब वैसा जाने। उसको त्यागने योग्य जाने और जब भावोंमें राग, द्वेष मोह न हो, निराकुल चित्त हो, स्थिर हो, व उदार हो तब वैसा जाने। वीतराग भावोंको उपादेय या ग्रहण योग्य समझे।

पांचवें वस्त्र सूत्रमें अनन्तानुबन्धी क्रोध आदि पचीस कषायोंको गिनाया गया है। ज्ञानी पहचान लेता है कि कब मेरे कैसे भाव किस प्रकारके राग व द्वेषसे मलीन है। जो मैलको मैल व निर्मलताको निर्मल जानेगा वही मैलसे हटने व निर्मलता प्राप्त करनेका यत्न करेगा।

सार समुच्चयमें कहते हैं—

रागद्वेषमयो जीव कामक्रोधवशे यत ।
लोभमोहमदाविष्ट ससारे संसरत्यसौ ॥ २४ ॥
कामक्रोधस्तथा मोहस्त्रयोऽप्येते महाद्विष ।
एतेन निर्जिता यावत्तावत्सौख्य कुतो नृणाम् ॥ २६ ॥

भावार्थ—जो जीव रागी है, द्वेषी है व काम तथा क्रोधके वश है लोभ या मोह या मदसे घिरा हुआ है वह ससारमें भ्रमण करता है। काम, क्रोध, मोह या रागद्वेष मोह ये तीनों ही महान् शत्रु है। जो कोई इनके वशमें जबतक है तबतक मानवोंको सुख कहासे होसक्ता है।

(४) चौथी स्तुति धर्मोंके सम्बन्धमें है।

(१) पहली बात यह बताई है कि ज्ञानीको पांच नीवरण दोषोंके सम्बन्धमें जानना चाहिये कि (१) कामभाव, (२) द्रोहभाव,

(३) आलस्य, (४) उद्वेग-खेद (५) संशय। ये मेरे भीतर हैं या नहीं हैं तथा यदि नहीं हैं तो किन कारणोंसे इनकी उत्पत्ति होसक्ती है। तथा यदि हैं तो उनका नाश कैसे किया जावे तथा मैं कौनसा यत्न करूं कि फिर ये पैदा न हों। आत्मोन्नतिमें ये पाच दोष बाधक हैं—

(२) दूसरी बात यह बताई है कि पांच उपादान स्कंधोंकी उत्पत्ति व नाशको समझता है। सारा संसारका प्रपचजाल इनमें गर्भित है। रूपसे वेदना, वेदनासे संज्ञा, संज्ञासे संस्कार, संस्कारसे विज्ञान होता है। ये सर्व अशुद्ध ज्ञान हैं जो पांच इंद्रिय और मनके कारण होते हैं। इनका नाश तत्व मननसे होता है।

तत्वसारमें कहा है—

रूसइ तूसइ णिच्चं इंदियविसयेहिं संगओ मूढो।
सकसाओ अण्णाणी णाणी एदो दु विवरीदो॥ ३९॥

भावार्थ—अज्ञानी क्रोध, मान, माया लोभके वशीभूत होकर सदा अपनी इन्द्रियोंसे अच्छे या बुरे पदार्थोंको ग्रहण करता हुआ रागद्वेष करके आकुलित होता है। ज्ञानी इनसे अलग रहता है।

बौद्ध साहित्यमें इन्हीं पाच उपादान स्कंधोंके क्षयको निर्वाण कहते हैं जिसका अभिप्राय जैन सिद्धांतानुसार यह है कि जितने भी विचार व अशुद्ध ज्ञानके भेद पांच इंद्रिय व मनके द्वारा होते हैं, उनका जब नाश होजाता है तब शुद्ध आत्मीक ज्ञान या केवलज्ञान प्रगट होता है। यह शुद्ध ज्ञान निर्वाण स्वरूप आत्माका स्वभाव है।

(३) फिर बताया है कि चक्षु आदि पांच इंद्रिय और मनसे पदार्थोंका सम्बन्ध होकर जो रागद्वेषका मल उत्पन्न होता है, उस

जानता है कि कैसे उत्पन्न हुआ है तथा यदि वर्तमानमें इन उ विषयोंका मल नहीं है तो वह आगामी किस कारणोंसे पैदा होता है उसको भी जानता है तथा जो उत्पन्न मल है वह कैसे दूर हो इसको भी जानता है तथा नाश हुआ राग द्वेष फिर न पैदा हो उसके लिये क्या सम्हाल रक्खी इसे भी जानता है। यह स्मृति इन्द्रिय और मनके जीतनेके लिये बड़ी ही आवश्यक है।

निमित्तोंको बचानेसे ही इन्द्रिय सम्बन्धी राग हट सक्ता है। यदि हम नाटक, खेल, तमाशा देखेंगे, शृंगार पूर्ण गान सुनेंगे, अत्तर फुलेल सूंघेंगे, स्वादिष्ट भोजन रागयुक्त होकर ग्रहण करेंगे, मनोहर वस्तुओंको स्पर्श करेंगे, पूर्वगत भोगोंको मनमें स्मरण करेंगे व आगामी भोगोंकी वांछा करेंगे तब इन्द्रिय विषय सम्बन्धी राग द्वेष दूर नहीं होगा। यदि विषय राग उत्पन्न होजावे तो उसे मल जानकर उसके दूर करनेके लिये आत्मतत्वका विचार करे। आगामी फिर न पैदा हो इसके लिये सदा ही ध्यान, स्वाध्याय, व तत्व मननमें व सत्संगतिमें व एकांत सेवनमें लगा रहे।

जिसको आत्मानन्दकी गाढ रुचि होगी वह इन्द्रिय वचन सम्बन्धी मलोंसे अपनेको बचा सकेगा। ध्यानीको स्त्री पुरुष नपुंसक रहित एकांत स्थानके सेवनकी इसीलिये आवश्यक्ता बताई है कि इन्द्रियोंके विषय सम्बन्धी मल न पैदा हो।

अन्यत्र वा क्वचिद्देशे प्रशस्ते प्रासुके समे।
चेतनाचेतनाशेषध्यानविघ्नविवर्जिते ॥ ९१ ॥
भूतले वा शिलापट्टे सुखासीनः स्थितोऽथवा।
सममृज्वायतं गात्रं निःकपावयवं दधत् ॥ ९२ ॥
नासाग्रन्यस्तनिष्पंदलोचनो मंदमुच्छ्वसन्।
द्वात्रिंशद्दोषनिर्मुक्तकायोत्सर्गव्यवस्थितः ॥ ९३ ॥
प्रत्याहृत्याक्षलुंटाकास्तदर्थेभ्यः प्रयत्नतः।
चिंतां चाकृष्य सर्वेभ्यो निरुध्य ध्येयवस्तुनि ॥ ९४ ॥
निरस्तनिद्रो निर्भीतिर्निरालस्यो निरंतरं।
स्वरूपं वा पररूपं वा ध्यायेदंतर्विशुद्धये ॥ ९५ ॥

भावार्थ—ध्यानीको उचित है कि दिन हो या रात, सूने स्थानमें या गुफामें या किसी भी ऐसे स्थानमें बैठे जो स्त्री, पुरुष, नपुंसक या क्षुद्र जंतुओंसे रहित हो, सचित्त न हो, रमणीक, व सम भूमि हो जहांपर किसी प्रकारके विघ्न चेतनकृत या अचेतनकृत ध्यानमें न होसकें। जमीन पर या शिलापर सुखासनसे बैठे या खड़ा हो, शरीरको सीधा व निश्चल रखे, नाशाग्रदृष्टि हो, लोचन पलक रहित हो, मंद मंद श्वास आता हो, ३२ दोषरहित कायसे ममता छोड़के, इन्द्रिय रूपी लुटेरोंको उनके विषयोंकी तरफ जानेसे प्रयत्न सहित रोककर तथा चित्तको सर्वसे हटाकर एक ध्येय वस्तुमें लगावे। निद्राका विजयी हो, आलसी न हो, भयरहित हो। ऐसा होकर अंतरङ्ग विशुद्ध भावके लिये अपने या परके स्वरूपका ध्यान करे।

एकांत सेवन व तत्व मनन इन्द्रिय व मनके जीतनेका उपाय है।

(४) चौथी बात इस सूत्रमें बताई है कि बोधि या परम-

ज्ञानकी प्राप्तिके लिये सात बातोंकी जरूरत है। यह परमज्ञान विज्ञानसे भिन्न है, यह परमज्ञान निर्वाणका साधक व स्वयं निर्वाण रूप है। इससे साफ झलकता है कि निर्वाण अभावरूप नहीं है किंतु परमज्ञान स्वरूप है। वे सात बातें हैं-(१) स्मृति-सत्यका स्मरण निर्वाण स्वरूपका स्मरण, (२) धर्म विचय-निर्वाण साधक धर्मका विचार, (३) वीर्य-आत्मबलको व उत्साहको बढ़ाकर निर्वाणका साधन करे। (४) प्रीति-निर्वाण व निर्वाण साधनमें प्रेम हो, (५) प्रश्रब्धि-शांति हो राग द्वेष मोह हटाकर भावोंको सम रखे, (६) समाधि ध्यानका अभ्यास करे, (७) उपेक्षा-वीतरागता-जब वीतरागता आजाती है तब स्वात्मरमण होता है। यही परम ज्ञानकी प्राप्तिका खास उपाय है।

तत्वानुशासनमें कहा है—

> सोऽयं समरसीभावस्तदेकीकरणं स्मृतं।
> एतदेव समाधिः स्याल्लोकद्वयफलप्रदः ॥ १३७ ॥
> किमत्र बहुनोक्तेन ज्ञात्वा श्रद्धाय तत्वतः।
> ध्येयं समस्तमप्येतन्माध्यस्थ्यं तत्र बिभ्रता ॥ १३८ ॥
> माध्यस्थ्यं समतोपेक्षा वैराग्यं साम्यमस्पृहः।
> वैतृष्ण्यं परमः शांतिरित्येकोऽर्थोऽभिधीयते ॥ १३९ ॥

भावार्थ—जो यह समरससे भरा हुआ भाव है उसे ही एकाग्रता कहते हैं, यही समाधि है। इसीसे इस लोकमें सिद्धि व परलोकमें सिद्धि प्राप्त होती है। बहुत क्या कहें-सर्व ही ध्येय वस्तुको भले प्रकार जानकर व श्रद्धानकर ध्यावे, सर्व पर माध्यस्थ भाव रखे। माध्यस्थ, समता, उपेक्षा, वैराग्य, साम्य, निस्पृहता,

तृष्णा रहितता, परम भाव, शांति इत्यादि उसी समरसी भावके ही भाव हैं इन सबका प्रयोजन आत्मध्यानका सम्बन्ध है।

इनमें जो धर्मविचय शब्द आया है—ऐसा ही शब्द जैन सिद्धातमें धर्मध्यानके भेदोंमें आया है। देखो तत्वार्थ सूत्र—

"आज्ञापायविपाकसंस्थानविचयाय धर्म्यं" ॥३६॥९

धर्मध्यान चार तरहका है (१) आज्ञाविचय—शास्त्रकी आज्ञाके अनुसार तत्वका विचार, (२) अपाय विचय—मेरे व अन्योंके राग द्वेष मोहका नाश कैसे हो (३) विपाक विचय—कर्मोंके अच्छे या बुरे फलको विचारना, (४) संस्थान विचय-लोकका या अपना स्वरूप विचारना।

बोधि शब्द भी जैनसिद्धातमें इसी अर्थमें आया है। देखो बारह भावनाओंके नाम। पहले सर्वास्रवसूत्रमें कहे है। ११वीं भावना **बोधि दुर्लभ है**। सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र, गर्भित परम ज्ञान या आत्मज्ञानका लाभ होना बहुत दुर्लभ है ऐसी भावना करनी चाहिये।

(५) पाचमी बात यह बताई है कि वह भिक्षु चार बातोंको ठीक२ जानता है कि दुःख क्या है, दुःखका कारण क्या है। दुःखका निरोध क्या है तथा दुःख निरोधका क्या उपाय है।

जैन सिद्धातमें भी इसी बातको बतानेके लिये कर्मका संयोग जहातक है वहातक दुःख है। कर्म संयोगका कारण आस्रव और बंध तत्व बताया है। किन२ भावोंसे कर्म आकर बंध जाते हैं, दुःखका निरोध कर्मका क्षय होकर निर्वाणका लाभ है। निर्वाणका

मोक्ष संवर तथा निर्जरा तत्व बताया है । अर्थात् रत्नत्रय धर्म साधन है जो बौद्धोंके अष्टाग मार्गमें मिल जाता है ।

तत्वानुशासनमें कहा है —

बन्धो निबन्धनं चास्य हेयमित्युपदर्शित ।
हेयं स्याद् दुःखसुखयोर्यस्माद्बीजमिदं द्वयं ॥ ४ ॥

मोक्षस्तत्कारणं चैतदुपादेयमुदाहृत ।
उपादेयं सुखं यस्मात्स्मादाविर्भविष्यति ॥ ५ ॥

स्युर्मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्राणि समासत ।
बन्धस्य हेतवोऽन्यस्तु त्रयाणामेव विस्तर ॥ ८ ॥

ततस्त्व बन्धहेतूनां समस्तानां विनाशत ।
बन्धप्रणाशान्मुक्त सन्न भ्रमिष्यसि संसृतौ ॥ २२ ॥

स्यात्सम्यग्दर्शनज्ञानचारित्रत्रितयात्मक ।
मुक्तिहेतुर्जिनोपज्ञ निर्जरासंवरक्रिया ॥ २४ ॥

भावार्थ- बंध और उसका कारण त्यागने योग्य है । क्योंकि इनहीसे त्यागने योग्य सासारिक दुःख सुखकी उत्पत्ति होती है । मोक्ष और उसका कारण उपादेय है । क्योंकि उनसे ग्रहण करने योग्य आत्मानंदकी प्राप्ति होती है । बंधके कारण सक्षेपमें मिथ्यादर्शन, मिथ्या ज्ञान तथा मिथ्याचारित्र है । इनही तीनका विस्तार बहुत है । हे भाई ! यदि तू बंधके सब कारणोंका नाश कर देगा तो मुक्त होजायगा, फिर संसारमें नहीं भ्रमण करेगा । मोक्षके कारण सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र यह रत्नत्रय धर्म है । उन हीके सेवनसे आत्म समाधि प्राप्त होनेसे संवर व निर्जरा होती है, ऐसा जिनेंद्रने कहा है । इस स्मृतिप्रस्थान सूत्रके अंतमें कहा है कि जो इन

चार स्मृति प्रस्थानोंको मनन करेगा वह अरहत पदका साक्षात्कार करेगा। उसको सत्यकी प्राप्ति होगी वह निर्वाणको प्राप्त करेगा व निर्वाणको साक्षात् करेगा। इन वाक्योंसे निर्वाणके पूर्वकी अवस्था जैनोंके अर्हंत पदसे मिलती है और निर्वाणकी अवस्था सिद्ध पदसे मिलती है। जैनोंमें जीवनमुक्त परमात्माको अरहन्त कहते हैं जो सर्वज्ञ वीतराग होते हुए जन्म भरतक धर्मोपदेश करते हैं। वे ही जब शरीर रहित व कर्म रहित मुक्त होजाते हैं तब उनको निर्वाणनाथ या सिद्ध कहते हैं। यह सूत्र बड़ा ही उपकारी है व जैन सिद्धांतसे बिलकुल मिल जाता है।

(९) मज्झिमनिकाय चूलसिंहनाद सूत्र।

गौतम बुद्ध कहते हैं–भिक्षुओ होसक्ता है कि अन्य तैर्थिक (मतवाले) यह कहें। आयुष्मानोंको क्या आश्वास या बल है जिससे यह कहते हो कि यहां ही श्रमण हैं। ऐसा कहनेवालोंको तुम ऐसा कहना–भगवान जाननहार, देखनहार, सम्यक् सम्बुद्धने हमें चार धर्म बताए हैं। जिनको हम अपने भीतर देखते हुए ऐसा कहते हैं 'यहां ही श्रवण है।' वे चार धर्म हैं–(१) हमारी शास्तामें श्रद्धा है, (२) धर्ममें श्रद्धा है, (३) शील (सदाचार)में परिपूर्ण करनेवाला होना है, (४) सहधर्मी गृहस्थ और प्रव्रजित हमारे प्रिय हैं।

हो सकता है अन्य मतानुवादी कहें कि हम भी चारों बातें मानते हैं तब क्या विशेष है। ऐसा कहनेवालोंको कहना क्या

भावरु। एक निष्ठा है या पृथक् ? ये ठीकसे उत्तर देंगे एक निष्ठा है। फिर कहना क्या यह निष्ठा सरागके सम्बन्धमें है या वीतरागके सम्बन्धमें है व ठीकसे उत्तर देंगे कि वीतरागके सम्बन्धमें है, इसी तरह पूछनेपर कि वह निष्ठा क्या सद्वेष, समोह, सतृष्णा, सउपादान (ग्रहण करनेवाले), अविद्वान, विरुद्ध, या प्रपचारामके सम्बन्धमें है या उनके विरुद्धोंमें है तब ये ठीकसे विचारकर कहेंगे कि वह निष्ठा वीतद्वेष, वीतमोह, वीत तृष्णा, 'अनुपादान, विद्वान, अविरुद्ध, निष्प्रपचाराममें है। भिक्षुओ! दो तरहकी दृष्टियां हैं-(१) भव (संसार) दृष्टि, (२) विभव (असंसार) दृष्टि। जो कोई भवदृष्टिमें लीन, भवदृष्टिको प्राप्त, भवदृष्टिमें तत्पर है वह विभव दृष्टिसे विरुद्ध है। जो विभवदृष्टिमें लीन, विभवदृष्टिको प्राप्त, विभवदृष्टिमें तत्पर है वह भवदृष्टिसे विरुद्ध है। जो श्रमण व ब्राह्मण इन दोनों दृष्टियोंके समुदय (उत्पत्ति), अस्तगमन, आस्वाद आदि नव (परिणाम), निस्सरण (निकास) को यथार्थतया नहीं जानते वह सराग, सद्वेष, समोह, सतृष्णा, सउपादान, अविद्वान, विरुद्ध, प्रपचरत है। जो श्रमण इन दोनों दृष्टियोंके समुदय आदिको यथार्थ तया जानते हैं वे वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह, वीततृष्णा, अनुपा दान, विद्वान, अविरुद्ध तथा अप्रपच रत हैं व जन्म, जरा, मरणसे छूटे हैं। ऐसा मैं कहता हूं।

भिक्षुओ! चार उपादान हैं-(१) काम (इन्द्रिय भोग) उपादान, (२) दृष्टि (धारणा) उपादान, (३) शीलव्रत उपादान, (४) आत्मवाद उपादान। कोई कोई श्रमण ब्राह्मण सर्व उपादानके त्यागका मत रखनेवाले अपनेको कहते हुए भी सारे उपादान त्याग

नहीं करते। या तो केवल काम उपादान त्याग करते हैं या काम और दृष्ट उपादान त्याग करते है या काम, दृष्टि और शीलव्रत उपादान त्याग करते है। किंतु आत्मवाद उपादानको त्याग नहीं करते क्योंकि इस बातको ठीकसे नहीं जानते।

भिक्षुओ! ये चारों उपादान तृष्णा निदानवाले है, तृष्णा समुदयवाले हैं, तृष्णा जातिवाले हैं और तृष्णा प्रभववाले है।

तृष्णा वेदना निदानवाली है, वेदना स्पर्श निदानवाली है, स्पर्श षडायतन निदानवाला है। षड़ायतन नाम-रूप निदानवाला है। नाम-रूप विज्ञान निदानवाला है। विज्ञान संस्कार निदान वाला है। संस्कार अविद्या निदानवाले हैं।

भिक्षुओ! जब भिक्षुकी अविद्या नष्ट होजाती है और विद्या उत्पन्न होजाती है। अविद्याके विरागसे, विद्याकी उत्पत्तिसे न काम उपादान पकड़ा जाता है न दृष्टि उपादान न शीलव्रत उपादान न आत्मवाद-उपादान पकड़ा जाता है। उपादानोंको न पकड़नेसे भयभीत नहीं होता, भयभीत न होनेपर इसी शरीरसे निर्वाणको प्राप्त होजाता है "जन्म क्षीण होगया, ब्रह्मचर्यवास पूरा होगया, करना था सो कर लिया, और अब यहां कुछ करनेको नहीं है-" यह जान लेता है।

नोट-इस सूत्रमें पहले चार बातोंको धर्म बताया है-

(१) शास्ता (देव) में श्रद्धा, (२) धर्ममें श्रद्धा, (३) शीलको पूर्ण पालना, (४) साधर्मीसे प्रीति।

फिर यह बताया है कि जिसकी श्रद्धा चारों धर्मोंमें होगी उसकी श्रद्धा ऐसे शास्ता व धर्ममें होगी, जिसमें राग नहीं, द्वेष

...की यह निष्ठा है या पृथक् ? व ठीकसे उत्तर ... फिर कहना क्या यह निष्ठा सरागके सम्बन्धमें है ... सम्बन्धमें है वे ठीकसे उत्तर देंगे कि वीतरागके ... इसी तरह पूछनेपर कि वह निष्ठा क्या सद्वेष, समोह, सउपादान (ग्रहण करनेवाले), अविद्वान, विरुद्ध, प्रपंचमें है या इनके विरुद्धोंमें है तब वे ठीकसे ... कि वह निष्ठा वीतद्वेष, वीतमोह, वीत तृष्णा, विद्वान, अविरुद्ध, निष्प्रपचारामपमें है। भिक्षुओ! दो दृष्टि हैं–(१) भव (संसार) दृष्टि, (२) विभव (असत्ता) दृष्टि। कोई भवदृष्टिमें लीन, भवदृष्टिको प्राप्त, भवदृष्टिमें तत्पर है वह विभवदृष्टिसे विरुद्ध है। जो विभवदृष्टिमें लीन, विभवदृष्टिको प्राप्त, विभवदृष्टिमें तत्पर है वह भवदृष्टिसे विरुद्ध है। जो श्रमण व ब्राह्मण इन दोनों दृष्टियोंके समुदय (उत्पत्ति), अस्तगमन, आस्वाद, आदीनव (परिणाम), निस्सरण (निकास) को यथार्थतया नहीं जानते वह सराग, सद्वेष, समोह, सतृष्णा, सउपादान, अविद्वान, विरुद्ध, प्रपंचरत है। जो श्रमण इन दोनों दृष्टियोंके समुदय आदिको यथार्थ तथा जानते हैं वे वीतराग, वीतद्वेष, वीतमोह, वीततृष्णा, अनुपादान, विद्वान, अविरुद्ध तथा अप्रपंच रत हैं व जन्म, जरा, मरणसे छूटे हैं। ऐसा मैं कहता हूं।

भिक्षुओ! चार उपादान हैं–(१) काम (इन्द्रिय भोग) उपादान, (२) दृष्टि (धारणा) उपादान, (३) शीलव्रत उपादान, (४) आत्मवाद उपादान। कोई कोई श्रमण ब्राह्मण सर्व उपादानके त्यागका मत रखनेवाले अपनेको कहते हुए भी सारे उपादान त्याग

सर्वद्वन्द्वविनिर्मुक्तं स्थानमात्मस्वभावजम्।
प्राप्तं परमनिर्वाणं येनासौ सुगतः स्मृतः ॥ ४१ ॥

भावार्थ—जिसने कर्मोंमें महान योद्धा स्वरूप रागद्वेषादिको जीत लिया है व जो जन्म मरणके चक्रसे छूट गया है वह जिन कहलाता है। जिसने केवलज्ञान रूपी नेत्रसे तीन लोकको जान लिया व जो अनन्त ज्ञानसे पूर्ण है उस बुद्धको मैं नमन करता हू। जिसने सर्व उपाधियोंसे रहित आत्मीक स्वभावसे उत्पन्न परम निर्वाणको प्राप्त कर लिया है वही सुगत कहा गया है।

धर्मध्यानका स्वरूप तत्वानुशासनमें कहा है—

सद्दृष्टिज्ञानवृत्तानि धर्मं धर्मेश्वरा विदुः।
तस्माद्यदनपेतं हि धर्म्यं तद्ध्यानमभ्यधुः ॥ ५१ ॥
आत्मनः परिणामो यो मोहक्षोभविवर्जितः।
स च धर्मोऽनपेतं यत्तस्मात्तद्धर्म्यमित्यपि ॥ ५२ ॥

भावार्थ—सम्यग्दर्शनज्ञान चारित्रको धर्मके ईश्वरोंने धर्म कहा है। ऐसे धर्मका जो ध्यान है सो धर्मध्यान है। निश्चयसे मोह व क्षोभ (रागद्वेष) रहित जो आत्माका परिणाम है वही धर्म है, ऐसे धर्मसहित ध्यानको धर्मध्यान कहते है।

आत्मा निर्वाण स्वरूप है, मोह रागद्वेष रहित है ऐसा श्रद्धान सम्यग्दर्शन है व ऐसा ज्ञान सम्यग्ज्ञान है व ऐसा ही ध्यान सम्यक्चारित्र है। तीनोंका एकीकरण आत्माका वीतरागभाव आत्म तल्लीन रूप ही धर्म है। पुरुषार्थसिद्धयुपायमें कहा है—

बद्धोद्यमेन नित्यं लब्ध्वा समयं च बोधिलाभस्य।
पदमवलम्ब्य मुनीनां कर्तव्यं सपदि परिपूर्णम् ॥ २१० ॥

नहीं, मोह नहीं, तृष्णा नहीं, उपादान नहीं हो। तथा जो विज्ञान ज्ञानपूर्ण हो, जो विरुद्ध न हो व जो प्रपंचमें रत न हो।

जैन सिद्धांतमें भी शास्ता उसे ही माना है जो इन सर्व दोषोंसे रहित हो तथा जो सर्वज्ञ हो। स्वात्मरमी हो तथा धर्म है वीतराग विज्ञान रूप आत्मरमण रूप माना है। तथा सदाचारको सर्व ज्ञान पूर्णसे पालनेकी आज्ञा है व साधर्मीसे वात्सल्यभाव रखना सिखाया है।

समंतभद्राचार्य रत्नकरण्ड श्रावकाचारमें कहते हैं—

आप्तेनोच्छिन्नदोषेण सर्वज्ञेनागमेशिना।
भवितव्यं नियोगेन नान्यथा ह्याप्तता भवेत् ॥ ५ ॥
क्षुत्पिपासाजरातङ्कजन्मान्तकभयस्मयाः।
न रागद्वेषमोहाश्च यस्याप्तः स प्रकीर्त्यते ॥ ६ ॥

शास्ता या आप्त वही है जो दोषोंसे रहित हो, सर्वज्ञ हो व आगमका स्वामी हो। इन गुणोंसे रहित आप्त नहीं होसक्ता। जिसके भीतर १८ दोष नहीं हों वही आप्त है-(१) क्षुधा, (२) तृषा, (३) जरा, (४) रोग, (५) जन्म, (६) मरण (७) भय, (८) आश्चर्य, (९) राग, (१०) द्वेष, (११) मोह, (१२) चिंता, (१३) खेद, (१४) स्वेद (पसीना), (१५) निद्रा, (१६) मद, (१७) रति, (१८) शोक।

आत्मस्वरूप ग्रंथमें कहा है—

रागद्वेषादयो येन जिताः कर्ममहाभटाः।
कालचक्रविनिर्मुक्तः स जिनः परिकीर्तितः ॥ २१ ॥
केवलज्ञानबोधेन बुद्धिवान् स जगत्त्रयम्।
अनन्तज्ञानसंकीर्णं तं बुद्धं नमाम्यहम् ॥ २९ ॥

जैन सिद्धांतके वाक्य इस प्रकार हैं—

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम्।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः॥ ५॥

भावार्थ–निश्चय दृष्टि सत्यार्थ है, व्यवहार दृष्टि अनित्यार्थ है क्योंकि क्षणभंगुर संसारकी तरफ है। प्रायः संसारके प्राणी सत्य पदार्थके ज्ञानसे बाहर हैं–निश्चयदृष्टिको या परमार्थदृष्टिको नहीं जानते हैं।

समयसार कलशमें कहा है—

एकस्य बद्धो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥२६–३॥

भावार्थ–व्यवहारनय या दृष्टि कहती है कि यह आत्मा कर्मोंसे बंधा हुआ है। निश्चय दृष्टि कहती है कि यह आत्मा कर्मोंसे बंधा हुआ नहीं है। ये दोनों पक्ष भिन्न २ दो दृष्टियोंके हैं, जो कोई इन दोनों पक्षको छोड़कर स्वरूप गुप्त होजाता है उसके अनुभवमें चैतन्य चैतन्य स्वरूप ही भासता है। और भी कहा है—

य एव मुक्त्वा नयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यं।
विकल्पजालच्युतशान्तचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥२४–३॥

भावार्थ–जो कोई इन दोनों दृष्टियोंके पक्षको छोड़कर स्व स्वरूपमें गुप्त होकर नित्य ठहरते हैं, सम्यक्–समाधिको प्राप्त कर लेते हैं वे सर्व विकल्प जालोंसे छूटकर शांत मन होते हुए साक्षात् आनंद अमृतका पान करते हैं, उनको निर्वाणका साक्षात्कार होजाता है, वे परम सुखको पाते हैं। और भी कहा है—

नीरत्नतक सम्बधमें कहते हैं कि रत्नत्रयके लाभके समयको पाकर उत्तम करके मुनियोंके पदको धारणकर शीघ्र ही चारित्रको पूर्ण पालना चाहिये ।

इमी ग्रन्थमें साधर्मीजनोंसे प्रेम भावको बताया है—

अनवरतमहिंसायां शिवसुखलक्ष्मीनिबन्धने धर्मे ।
सर्वेष्वपि च सधर्मिषु परमं वात्सल्यमालम्ब्यम् ॥ २९ ॥

भावार्थ धर्मात्माका कर्तव्य है कि निरतर मोक्ष सुखकी लक्ष्मीके कारण अहिंसाधर्ममें तथा सर्व ही साधर्मीजनोंमें परम प्रेम रखना चाहिये ।

आगे चलकर इसी सूत्रमें कहा है कि दृष्टिया दो हैं–एक ससार दृष्टि दूसरी असंसार दृष्टि । इसीको जैन सिद्धातमें कहा है व्यवहार दृष्टि तथा निश्चय दृष्टि । व्यवहार दृष्टि देखती है कि अशुद्ध अवस्थाओंकी तरफ लक्ष्य रखती है, निश्चय दृष्टि शुद्ध पदार्थ या निर्वाण स्वरूप आत्मापर दृष्टि रखती है । एक दूसरेसे विरोध है । ममताग्लीन व्यवहारासक्त होता है । निश्चय दृष्टिसे अजान है, निश्चय दृष्टिवाला ससारसे उदासीन रहता है । आवश्यक्ता पडनेपर व्यवहार करता है पर तु उसको त्यागनेयोग्य जानता है ।

इन दोनों दृष्टियोंको भी त्यागनेका व उनसे निकलनेका जो संकेत इस सूत्रमें किया है वह निर्विकल्प समाधि या स्वानुभवकी अवस्था है । वहा साधक अपने आपमें ऐसा तल्लीन होजाता है कि वहा न व्यवहारनयका विचार है न निश्चयनयका विचार है, यही वास्तवमें निर्वाण मार्ग है । उसी स्थितिमें साधक सच्चा वीतराग, ज्ञानी व विरक्त होता है ।

कामोंके हेतु चोर चोरी करते हैं, सेंध लगाते हैं, गाव उजाड डालते है, लोग परस्त्रीगमन भी करते है तब उन्हें राजा लोग पकड़-कर नानाप्रकार दड देते हैं। यहातक कि तलवारसे सिर कटवाते हैं। वे यहा मरणको प्राप्त होते हैं। मरण समान दु ख नहीं। यह भी कामोका दुष्परिणाम है।

कामोंके हेतु—काय, वचन, मनसे दुश्चरित करते हैं। वे मरकर दुर्गतिमें, नरकमें उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ—जन्मान्तरमें कामोंका दुष्परिणाम दु खपुज है।

(२) क्या है कामोंका निस्मरण (निकास) भिक्षुओ! कामोंसे रागका परित्याग करना कामोंका निस्सरण है।

भिक्षुओ! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण कामोंके आस्वाद, कामोंके दुष्परिणाम तथा निस्मरणको यथाभूत नहीं जानते वे स्वय कामोंको छोड़ेंगे व दूसरोंको वैसी शिक्षा देंगे यह समव नहीं।

(३) क्या है भिक्षुओ! रूपका आस्वाद? जैसे कोई क्षत्रिय, ब्राह्मण, या वैश्य कन्या १५ या १६ वर्षकी, न लम्बी न ठिगनी, न मोटी न पतली, न काली परम सुन्दर हो वह अपनेको रूपवान अनुभव करती है। इसी तरह जो किसी शुभ शरीरको देखकर सुख या सोमनस्स उत्पन्न होता है यह है रूपका आस्वाद।

(४) क्या है रूपका आदिनव या दुष्परिणाम—दूसरे समय उस रूपवान बहनको देखा जावे जब वह अस्सी या नव्वे वर्षकी हो, या १०० वर्षकी हो तो वह अति जीर्ण दिखाई देगी, लकड़ी लेकर चलती दिखेगी। यौवन चला गया है, दात गिर गए हैं, बाल

किसी शिल्पसे शीत उष्ण पीड़ित, डंस, मच्छर, धूप हवा आदिसे उत्पीड़ित, भूख प्याससे मरता आजीविका करता है। इसी जन्ममें कामके हेतु यह लोक दुखोंका पुञ्ज है। उस कुल पुत्रको यदि इस प्रकार उद्योग करते, मेहनत करते वे भोग उत्पन्न नहीं होते (जिनको वह चाहता है) तो वह शोक करता है दुखी होता है, चिल्लाता है, छाती पीटकर रुदन करता है, मूर्छित होता है। हाय! मेरा प्रयत्न व्यर्थ हुआ, मेरी मिहनत निष्फल हुई, यह भी कामका दुष्परिणाम है। यदि उस कुलपुत्रको इसप्रकार उद्योग करते हुए भोग उत्पन्न होते हैं तो वह उन भोगोंकी रक्षाके लिये दुख दौर्मनस्य झेलता है। कहीं मेरे भोग राजा न हरले, चोर न हर लेजावें, आग न दाहे पानी न बहा लेजावे, अप्रिय दायाद न हर लेजावे। इस प्रकार रक्षा करते हुए यदि उन भोगोंको राजा आदि हर लेते हैं या किसी तरह नाश होजाता है तो वह शोक करता है। जो भी मेरा था वह भी मेरा नहीं रहा। यह भी कामोंका दुष्परिणाम है। कामोंके हेतु राजा भी राजाओंसे लड़ते हैं, क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति वैश्य भी परस्पर झगड़ते हैं, माता पुत्र, पिता पुत्र, भाई भाई, भाई बहिन, मित्र मित्र, परस्पर झगड़ते हैं। कलह विवाद करते, एक दूसरेपर हाथोंसे भी आक्रमण करते, डंडोंसे व शस्त्रोंसे भी आक्रमण करते हैं। कोई वहां मृत्युको प्राप्त होते हैं, मृत्यु समान दुखको सहते हैं। यह भी कामोंका

जैन सिद्धांतके वाक्य इस प्रकार हैं—

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है—

निश्चयमिह भूतार्थं व्यवहारं वर्णयन्त्यभूतार्थम् ।
भूतार्थबोधविमुखः प्रायः सर्वोऽपि संसारः ॥ ५ ॥

भावार्थ-निश्चय दृष्टि सत्यार्थ है, व्यवहार दृष्टि अनित्यार्थ है क्योंकि क्षणभंगुर संसारकी तरफ है । प्रायः संसारके प्राणी सत्य पदार्थके ज्ञानसे बाहर हैं-निश्चयदृष्टिको या परमार्थदृष्टिको नहीं जानते हैं ।

समयसार कलशमें कहा है—

एकस्य भावो न तथा परस्य चिति द्वयोर्द्वाविति पक्षपातौ ।
यस्तत्त्ववेदी च्युतपक्षपातस्तस्यास्ति नित्यं खलु चिच्चिदेव ॥३६-३॥

भावार्थ-व्यवहारनय या दृष्टि कहती है कि यह आत्माकर्मोंसे बंधा हुआ है । निश्चय दृष्टि कहती है कि यह आत्मा कर्मोंसे बंधा हुआ नहीं है । ये दोनों पक्ष भिन्न २ दो दृष्टियोंके हैं, जो कोई इन दोनों पक्षको छोड़कर स्वरूप गुप्त होजाता है उसके अनुभवमें चैतन्य चैतन्य स्वरूप ही भासता है । और भी कहा है—

य एव मुक्त्वानयपक्षपातं स्वरूपगुप्ता निवसन्ति नित्यं ॥
विकल्पजालच्युतशान्तचित्तास्त एव साक्षादमृतं पिबन्ति ॥२४-३॥

भावार्थ-जो कोई इन दोनों दृष्टियोंके पक्षको छोड़कर स्व स्वरूपमें गुप्त होकर नित्य ठहरते हैं, सम्यक्-समाधिको प्राप्त कर लेते हैं वे सर्व विकल्प जालोंसे छूटकर शांत मन होते हुए साक्षात् आनन्द अमृतका पान करते हैं, उनको निर्वाणका साक्षात्कार होजाता है, वे परम सुखको पाते हैं । और भी कहा है —

व्यवहारविमूढदृष्टय परमार्थं कलयन्ति नो जना ।
तुषबोधविमुग्धबुद्धय कलयन्तीह तुषं न तन्दुलम् ॥ ४८ ॥

भावार्थ-जो व्यवहारदृष्टिमें मूढ़ हैं वे मानव परमार्थ सत्यको नहीं जानते हैं। जो तुषको चावल समझकर इस अज्ञानको मनमें मानते हैं वे तुषका ही अनुभव करते हैं, उनको तुष ही चावल भासता है। वे चावलको नहीं पासक्ते। निर्वाणको सत्यार्थ समझना यह असार दृष्टि है। समाधिशतकमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं—

देहान्तरगतेर्बीजं देहेऽस्मिन्नात्मभावना ।
बीजं विदेहनिष्पत्तेरात्मन्येवात्मभावना ॥ ७४ ॥

भावार्थ-इस शरीरमें या शरीर सम्बन्धी सर्व प्रकार ममतोंमें आपा मानना वारवार शरीरके पानेका बीज है। किंतु अपने ही निर्वाण स्वरूपमें आपेकी भावना करनी शरीरसे मुक्त होनेका बीज है।

व्यवहारे सुषुप्तो यः स जागर्त्यात्मगोचरे ।
जागर्ति व्यवहारेऽस्मिन् सुषुप्तश्चात्मगोचरे ॥ ७८ ॥
आत्मानमन्तरे दृष्ट्वा दृष्ट्वा देहादिकं बहिः ।
तयोरन्तरविज्ञानादभ्यासादच्युतो भवेत् ॥ ७९ ॥

भावार्थ-जो व्यवहार दृष्टिमें सोया हुआ है अर्थात् व्यवहारसे उदासीन है वही आत्मा सम्बन्धी निश्चय दृष्टिसे जाग रहा है। जो व्यवहारमें जागता है वह आत्माके अनुभवके लिये सोया हुआ है।

अपने आत्माको निर्वाण स्वरूप भीतर देखके व देहादिकको बाहर देखके उनके भेदविज्ञानसे आपके अभ्याससे यह अविनाशी मुक्ति या निर्वाणको पाता है।

आगे चलके इस सूत्रमें चार उपादानोंका वर्णन किया है।

(१) काम या इन्द्रियभोग उपादान, (२) दृष्टि उपादान, (३) शीलव्रत उपादान, (४) आत्मवाद उपादान। इनका भाव यही है कि ये सब उपादान या ग्रहण सम्यक् समाधिमें बाधक हैं। काम उपादानमें साधकके भीतर किंचित् भी इन्द्रियभोगकी तृष्णा नहीं रहनी चाहिये। दृष्टि उपादानमें न तो संसारकी तृष्णा हो न असंसारकी तृष्णा हो, समभाव रहना चाहिये। अथवा निश्चय नय तथा व्यवहार नय किसीका भी पक्षबुद्धिमें नहीं रहना चाहिये। तब समाधि जागृत होगी। शीलव्रत उपादानमें यह बुद्धि नहीं रहनी चाहिये कि मैं सदाचारी हूं। साधुका व्रत पालता हूं, इससे निर्वाण होजायगा। यह आचार व्यवहार धर्म है। मन, वचन, कायका वर्तन है। यह निर्वाण मार्गसे भिन्न है। इनकी तरफसे अहंकार बुद्धि नहीं रहनी चाहिये। आत्मवाद उपादानमें आत्मा सम्बन्धी विकल्प भी समाधिको बाधक है। यह आत्मा नित्य है या अनित्य है, एक है या अनेक है, शुद्ध है या अशुद्ध है, है या नहीं है। किस गुणवाला है, किस पर्यायवाला है इत्यादि आत्मा सम्बन्धी विचार समाधिके समय बाधक है। वस्तवमें आत्मा वचन गोचर नहीं है, वह तो निर्वाण स्वरूप है, अनुभव गोचर है। इन चार उपादानोंके त्यागसे ही समाधि जागृत होगी। इन चारों उपादानोंके होनेका मूल कारण सबसे अंतिम अविद्या बताया है। और कहा है कि साधक भिक्षुकी अविद्या नष्ट होजाती है, विद्या उत्पन्न होती है अर्थात् निर्वाणका स्वानुभव होता है तब वहां चारों ही उपादान नहीं रहते तब वह निर्वाणका स्वयं अनुभव करता है और ऐसा जानता है कि मैं कृतकृत्य हूं, ब्रह्मचर्य पूर्ण हूं, मेरा संसार क्षीण होगया।

जैनसिद्धान्तमें स्वानुभवको निर्वाण मार्ग बताया है और वह स्वानुभव तब ही प्राप्त होगा जब सर्व विकल्पोंका या विचारोंका या दृष्टियोंका या कामवासनाओंका या अहङ्कारका व ममकारका त्याग होगा। निर्विकल्प समाधिका लाभ ही यथार्थ मोक्षमार्ग है। जहां साधकके भावोंमें स्वात्मसंवेदनके सिवाय कुछ भी विचार नहीं है, वह आप्तत्वमें निर्वाण स्वरूप अपने आत्माको आपसे ग्रहण कर लेता है तब सब मन, वचन, कायके विकल्प छूट जाते हैं।

समयसार कलशमें कहा है—

अन्येभ्यो व्यतिरिक्तमात्मनियतं बिभ्रत् पृथक् वस्तुता-
मादानोज्झनशून्यमेतदमलं ज्ञानं तथावस्थितम्।
मध्याद्यन्तविभागमुक्तसहजस्फारप्रभाभासुरः
शुद्धज्ञानघनो यथास्य महिमा नित्योदितस्तिष्ठति ॥४२॥

भावार्थ—ज्ञान ज्ञानस्वरूप होके ठहर गया, और सबसे छूट कर अपने आत्मामें निश्चल होगया, सबसे भिन्न वस्तुपनेको प्राप्त हो गया। उसे ग्रहण त्यागका विकल्प नहीं रहा, वह दोष रहित होगया तब आदि मध्य अंतके विभागसे रहित सहज स्वभावसे प्रकाशमान होता हुआ शुद्ध ज्ञान समुद्रस्प महिमाका धारक यह आत्मा नित्य उदय रूप रहता है।

उन्मुक्तमुन्मोच्यमशेषतस्तत्तथात्तमादेयमशेषतस्तत्।
यदात्मनः संहृतसर्वशक्तेः पूर्णस्य सन्धारणमात्मनीह ॥४३॥

भावार्थ—जब आत्मा अपनी पूर्ण शक्तिको सकोच करके अपनेमें ही अपनी पूर्णताको धारण करता है तब जो कुछ सर्व छोड़ना था सो

टूट गया तथा जो कुछ सर्व ग्रहण करना था सो ग्रहण कर लिया। भावार्थ एक निर्वाणस्वरूप आत्मा रह गया, शेष सर्व उपादान रह गया।

समाधिशतकमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं —

यत्परैः प्रतिपाद्योऽहं यत्परान् प्रतिपादये ।
उन्मत्तचेष्टितं तन्मे यदहं निर्विकल्पकः ॥ १९ ॥

भावार्थ-मैं तो निर्विकल्प हूं, यह सब उन्मत्तपनेकी चेष्टा है कि मैं दूसरोंसे आत्माको समझ लूँगा या मैं दूसरोंको समझा दूँ।

येनात्मनाऽनुभूयेऽहमात्मनैवात्मनात्मनि ।
सोऽहं न तन्न सा नासौ नैको न द्वौ न वा बहु ॥ २३ ॥

भावार्थ-जिस स्वरूपसे मैं अपने ही द्वारा अपनेमें अपने ही समान अपनेको अनुभव करता हू वही मैं हू। अर्थात् अनुभवगोचर हू। न यह नपुंसक है न स्त्री है, न पुरुष है, न एक है, न दो है, न बहुत है, पर्यात मह लिंग व सख्याकी कल्पनासे बाहर है।

(१०) मज्झिमनिकाय महादुःखस्कंध सूत्र।

गौतमबुद्ध कहते हैं-भिक्षुओ! क्या है कामों (भोगों) का आस्वाद, क्या है आदिनव (उनका दुष्परिणाम), क्या है निस्करण (निकास) इसी तरह क्या है रूपोंका तथा वेदनाओंका आस्वाद, परिणाम और निस्सरण।

(१) क्या है कामोंका दुष्परिणाम-यहा कुल पुत्र जिस किसी शिल्पसे चाहे मुद्रासे या गणनासे या सख्यानसे या कृषिसे या वाणिज्यसे, गोपालनसे या बाण-अस्त्रसे या राजाकी नौकरीसे या

किसी शिल्पसे शीत उष्ण पीड़ित, डंस, मच्छर, धूप हवा आदिसे सताड़ित, भूख प्यासमे मरता आजीविका करता है। इसी जन्ममें कामके हेतु यह शोक दुःखोंका पुज है। उस कुल पुत्रको यदि इस प्रकार उद्योग करते मेहनत करते वे भोग उत्पन्न नहीं होते (जिनको वह चाहता है) तो वह शोक करता है दुःखी होता है, चिल्लाता है, छाती पीटकर रुदन करता है, मूर्छित होता है। हाय! मेरा प्रय न व्यर्थ हुआ, मेरा मिहनत निष्फल हुई, यह भी कायका दुष्परिणाम है। यदि उस कुलपुत्रको इसप्रकार उद्योग करते हुए भोग उत्पन्न होते है तो वह उन भोगोंकी रक्षाके लिये दुःख दौर्मनस्य भोगता है। कहीं मेरे भोग राजा न हरले, चोर न हर लेजावें, आग न दाह पानी न बहा लेजावे, अप्रिय दायाद न हर लजावे। इस प्रकार रक्षा करते हुए यदि उन भोगोंको राजा आदि हर लेते हैं या किसी तरह नाश होजाता है तो वह शोक करता है। जो भी मेरा था वह भी मेरा नहीं रहा। यह भी कामोंका दुष्परिणाम है। कामोंके हेतु राजा भी राजाओंसे लड़ते हैं, क्षत्रिय, ब्राह्मण, गृहपति वैश्य भी परस्पर झगड़ते हैं, माता पुत्र, पिता पुत्र, भाइ भाई, भाई बहिन, मित्र मित्र, परस्पर झगड़ते है। कलह विवाद करते, एक दूसरेपर हाथोंसे भी आक्रमण करते, ढलोंसे व शस्त्रोंसे भी आक्रमण करते हैं। कोई बड़ा मृत्युको प्राप्त होते हैं, मृत्यु समान दुःखको सहते हैं। यह भी कामोंका दुष्परिणाम है।

कामोंके हेतु ढाल तलवार लेकर, तीर धनुष चढ़ाकर, दोनों तरफ व्यूह रचकर संग्राम करते हैं, अनेक मरण करते है। यह भी कामोंका दुष्परिणाम है।

कामोंके हेतु चोर चोरी करते हैं, सेंध लगाते हैं, गाव उजाड डालते हैं, लोग परस्त्रीगमन भी करते है तब उन्हें राजा लोग पकड-कर नानाप्रकार दड देते है। यहातक कि तलवारसे सिर कटवाते है। वे यहा मरणको प्राप्त होते हैं। मरण समान दुःख नहीं। यह भी कामोंका दुष्परिणाम है।

कामोंके हेतु—काय, वचन, मनसे दुश्चरित करते हैं। वे मरकर दुर्गतिमें, नरकमें उत्पन्न होते हैं। भिक्षुओ—जन्मान्तरमें कामोंका दुष्परिणाम दुःखपुंज है।

(२) क्या है कामोंका निस्सरण (निकास) भिक्षुओ! कामोंसे रागका परित्याग करना कामोंका निस्सरण है।

भिक्षुओ! जो कोइ श्रमण या ब्राह्मण कामोंके आस्वाद, कामोंके दुष्परिणाम तथा निस्सरणको यथाभूत नहीं जानते वे स्वय कामोंको छोड़ेंगे व दूसरोंको वैसी शिक्षा देंगे यह समव नहीं।

(३) क्या है भिक्षुओ! रूपका आस्वाद? जैसे कोई क्षत्रिय, ब्राह्मण, या वैश्य कन्या १५ या १६ वर्षकी, न लम्बी न ठिगनी, न मोटी न पतली, न काली परम सुन्दर हो वह अपनेको रूपवान अनुभव करती है। इसी तरह जो किसी शुभ शरीरको देखकर सुख या सोमनस्स उत्पन्न होता है यह है रूपका आस्वाद।

(४) क्या है रूपका आदिनव या दुष्परिणाम—दूसरे समय उस रूपवान बहनको देखा जाने जब वह अस्सी या नव्वे वर्षकी हो, या १०० वर्षकी हो तो वह अति जीर्ण दिखाई देगी, लकड़ी लेकर चलती दिखेगी। यौवन चला गया है, दात गिर गए हैं, बाल

सफेद होगए हैं। यही रूपका आदिनव है। जो पहले सुंदर थी सो अब ऐसी होगई है। फिर उसी भगिनीको देखा जावे कि वह रोगसे पीड़ित है, दुःखित है, मल मूत्रसे लिपी हुई है, दूसरोंके द्वारा उठाई जाती है, सुलाई जाती है। यह वही है जो पहले शुभ थी। यह है रूपका आदिनव। फिर उसी भगिनीको मृतक देखा जावे जो एक या दो या तीन दिनका पड़ा हुआ है। वह काक गृद्ध, कुत्ते, शृगाल आदि प्राणियोंसे खाया जारहा है। हड्डी, मांस, नसें आदि अलग२ हैं। सर अलग है, धड़ अलग है। इत्यादि दुर्दशा यह सब रूपका आदिनव या दुष्परिणाम है।

(५) क्या रूपका निस्सरन-सर्व प्रकारके रूपोंसे रागका परित्याग यह है रूपका निस्सरण।

जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इसतरह रूपका आस्वाद नहीं करता है, दुष्परिणाम तथा निस्सरण यथार्थ रूपसे जानता है वह अपने भी रूपको वैसा जानेगा, परके रूपको भी वैसा जानेगा।

(६) क्या है वेदनाओंका आस्वाद-यहां भिक्षु कामोंसे विरहित, बुरी बातोंसे विरहित सवितर्क सविचार विवेकसे उत्पन्न प्रीति और सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगता है। उस समय वह न अपनेको पीड़ित करनेका ख्याल रखता है न दूसरेको न दोनोंको, वह पीड़ा पहुंचानेसे रहित वेदनाको अनुभव करता है। फिर वही भिक्षु वितर्क और विचार शांत होनेपर भीतरी शांति और चित्तकी एकाग्रतावाले वितर्क विचार रहित प्रीति सुख वाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। फिर तीसरे फिर चौथे

ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। तब भिक्षु सुख और दुःखका त्यागी होता है, उपेक्षा व स्मृतिसे शुद्ध होता है। उस समय वह न अपनेको न दूसरेको न दोनोंको पीड़ित करता है, उस समय वेदनाको वेदता है। यह है अव्याबाध वेदना आस्वाद।

(७) क्या है वेदनाका दुष्परिणाम–वेदना अनित्य, दुःख और विकार स्वभाववाली है।

(८) क्या है वेदनाका निस्सरण–वेदनाओंमें रागका हटाना, रागका परित्याग, इसतरह जो कोई वेदनाओंका आस्वाद नहीं करता है, उनके आदिनव व निस्सरणको यथार्थ जानता है, वह स्वयं वेदनाओंको त्यागेंगे व दूसरेको भी वैसा उपदेश करेंगे यह संभव है।

नोट–इस वैराग्य पूर्ण सूत्रमें कामभोग, रूप तथा वेदनाओंसे वैराग्य बताया है तथा यह दिखलाया है कि जिस भिक्षुको इन तीनोंका राग नहीं है वही निर्वाणको अनुभव कर सक्ता है। बहुत उच्च विचार है।

(९) काम विचार–काम भोगोंके आस्वादका तो सर्वको पता है इसलिये उनका वर्णन करनेकी जरूरत न समझकर काम भोगोंकी तृष्णासे व इन्द्रियोंकी इच्छासे प्रेरित होकर मानव क्या क्या खटपट करते हैं व किस तरह निराश होते हैं व तृष्णाको बढ़ाते हैं या हिंसा चोरी आदि पाप करते हैं, राजदंड भोगते हैं, फिर दुःखमें मरते हैं, नर्कादि दुर्गतिमें जाते हैं, यह बात साफ साफ बताई है। जिसका भाव यही है कि प्राणी असि, मसि, कृषि, वाणिज्य, शिल्प, सेवा इन छः आजीविकाका उद्यम करता है, वहां उसके तृष्णा अधिक

होती है कि इच्छित धन मिले। यदि सतोषपूर्वक करे तो सताप कम हो। असतोषपूर्वक करनेसे बहुत परिश्रम करता है। यदि सफल नहीं होता है तो महान शोक करता है। यदि सफल होगया, इच्छित धन प्राप्त कर लिया तो उस धनकी रक्षाकी चिन्ता करके दु खित होता है। यदि कदाचित् किसी तरह जीवित रहते नाश होगया तो महान् दु ख भोगता है या आप शीघ्र मर गया तो मैं धनको भोग न सका ऐसा मानकर दु ख करता है। भोग सामग्रीके लाभके हेतु कुटुम्बी जीव परस्पर लड़ते हैं, राजालोग लड़ते है, युद्ध होजाते हैं, अनेक मरते हैं, महान् कष्ट उठाते हैं। उन्हीं भोगोंकी लालसामे धन एकत्र करनेके हेतु लोग झूठ बोलते, चोरी करते, डाका डालते पराई हरण करते हैं। जब वे पकड़े जाते है, राजाओं द्वारा भारी दड पाते हैं, सिर तक छेदा जाता है, दु खसे मरते हैं। इन्हीं काम भोगकी तृष्णावश मन वचन कायके सर्व ही अशुभ योग कहाते हैं जिनसे पापकर्मका बध होता है और जीव दुर्गतिमें जाकर दु ख भोगते है। जो कोई काम भोगकी तृष्णाको त्याग देता है वह इन सब इस लोक सम्बन्धी तथा परलोक सम्बन्धी दु खोंसे छूट जाता है। वह यदि गृहस्थ हो तो सतोषसे आवश्यक्तानुसार कमाता है, कम खर्च करता है, न्यायसे व्यवहार करता है। यदि धन नष्ट होजाता है तो शोक नहीं करता है। न तो वह राज्यदड भोगता है न मरकर दुर्गतिमें जाता है। क्योंकि वह भोगोंकी तृष्णासे गृसित नहीं है। न्यायवान धर्मात्मा है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील व मूर्छासे रहित है। साधु तो पूर्ण विरक्त होते हैं। वे पाचों इन्द्रियोंकी इच्छाओंसे बिलकुल विरक्त होते हैं। निर्वा-

णके अमृतमई रसके ही प्रेमी होते हैं। ऐसे ज्ञानी कामरागसे छूट जाते हैं।

जैन सिद्धांतमें इन काम भोगोंकी तृष्णासे बुराईका व इनके त्यागका बहुत उपदेश है। कुछ प्रमाण नीचे दिया जाते हैं—

सार समुच्चयमें कुलभद्राचार्य कहते हैं—

वर हालाहलं भुक्तं विषं तद्भवनाशनम्।
न तु भोगविषं भुक्तमनन्तभवदुःखदम्॥ ७६॥

भावार्थ—हालाहल विषका पीना अच्छा है, क्योंकि उसी जन्मका नाश होगा, परन्तु भोगरूपी विषका भोगना अच्छा नहीं, जिन भोगोंकी तृष्णासे यहां भी बहुत दुःख सहने पड़ते हैं और पाप बांधकर परलोकमें भी दुःख भोगने पड़ते हैं।

अग्निना तु प्रदग्धानां शमोऽस्तीति यतोऽत्र वै।
स्मरवन्हिप्रदग्धानां शमो नास्ति भवेष्वपि॥ ९२॥

भावार्थ—अग्निसे जलनेवालोंकी शांति तो यहां जलादिसे हो जाती है परन्तु कामकी अग्निसे जो जलते हैं उनकी शांति भव भवमें नहीं होती है।

दुःखानामाकरो यस्तु संसारस्य च वर्धनम्।
स एव मदनो नाम नराणां स्मृतिसूदनः॥ ९६॥

भावार्थः—जो कई दुःखोंकी खान है, जो संसार भ्रमणको बढ़ानेवाला है, वह कामदेव है। यह मानवोंकी स्मृतियोंको भी नाश करनेवाला है।

चित्तसंदूषणः कामस्तथा सद्गतिनाशनः।
सद्वृत्तध्वंसनश्चासौ कामोऽनर्थपरम्परा॥ १०३॥

हुए मनको बडी पीडा होती है। ऐसे भोगोंको कोई बुद्धिमान सेवन नहीं करता है। यदि गृहस्थ ज्ञानी हुआ तो आवश्यकतानुसार अल्प भोग संतोषपूर्वक करता है–उनकी तृष्णा नहीं रखता है।

आत्मानुशासनमें गुणभद्राचार्य कहते हैं–

कृष्ट्वोप्त्वा नृपतीन्निषेव्य बहुशो भ्रान्त्वा वनेऽम्भोनिधौ।
किं क्लिश्नासि सुखार्थमत्र सुचिरं हा कष्टमज्ञानतः ॥
तैलं त्वं सिकतासु यन्मृगयसे वाञ्छेद् विषाज्जीवितुं।
नन्वाशाग्रहनिग्रहात्तव सुखं न ज्ञातमेतत्त्वया ॥ ४२ ॥

भावार्थ–खेती करके व कराके बीज बुवाकर, नाना प्रकार राजाओंकी सेवा कर, वनमें या समुद्रमें धनार्थ भ्रमणकर तूने सुखके लिये अज्ञानवश दीर्घकालसे क्यों कष्ट उठाया है। हा! तेरा कष्ट वृथा है। तू या तो वालू पेलकर तेल निकालना चाहता है या विष खाकर जीना चाहता है। इन भोगोंकी तृष्णासे तुझे सच्चा सुख नहीं मिलेगा। क्या तूने यह बात अब तक नहीं जानी है कि तुझे सुख तब ही प्राप्त होगा जब तू आशारूपी पिशाचको वशमें कर लेगा?

दूसरी बात इस सूत्रमें रूपके नाशकी कही है। वास्तवमें यह यौवन क्षणभंगुर है, शरीरका स्वभाव गलनशील है, जीर्ण होकर कुरूप होजाता है, भीतर महा दुर्गंधमय अशुचि है। रूपको देखकर राग करना भारी अविद्या है। ज्ञानी इसके स्वरूपको विचार कर इसे पुद्गलपिंड समझकर मोहसे बचे रहते हैं। आठवें स्मृति प्रस्थान सूत्रमें इसका वर्णन हो चुका है। तौ भी जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य दिये जाते हैं—

भावार्थ-काममाव चित्तको मलीन करनेवाला है। सदाचारका नाश करनेवाला है। शुभ गतिको बिगाड़नेवाला है। काम भाव अनर्थोंकी सन्ततिको पकानेवाला है। भवभवमें दुःखदाई है।

दोषाणामाकर कामो गुणानां च विनाशकृत।
पापस्य च निजो बन्धु परापदां चैव संगम ॥ १०४ ॥

भावार्थ-यह काम दोषोंकी खान है, गुणोंको नाश करनेवाला है, पापोंका अपना बन्धु है, बड़ीर आपत्तियोंका मगम मिलानेवाला है।

कामी त्यजति सद्वृत्तं गुरोर्वाणीं ह्रियं तथा।
गुणानां समुदायं च चेतः स्वास्थ्यं तथैव च ॥ १०७ ॥
तस्मात्काम सदा हेयो मोक्षसौख्यं जिघृक्षुभि।
संसारं च परित्यक्तु वाञ्छद्भिर्यतिसत्तमै ॥ १०८ ॥

भावार्थ-काममावसे गृसित प्राणी सदाचारको, गुरुकी वाणीको, लज्जाको, गुणोंके समूहको तथा मनकी निश्चलताको खो देता है। इसलिये जो साधु संसारके त्यागकी इच्छा रखते हों तथा मोक्षके सुखके ग्रहणकी भावनासे उत्साहित हों उनको कामका भाव सदा ही छोड़ देना चाहिये।

इष्टोपदेशमें श्री पूज्यपादस्वामी कहते हैं-

आरम्भे तापकान्प्राप्तावतृप्तिप्रतिपादकान्।
अन्ते सुदुस्त्यजान् कामान् कामं कः सेवते सुधी ॥ १७ ॥

भावार्थ-भोगोंकी प्राप्ति करते हुए खेती आदि परिश्रम उठाते हुए बहुत क्लेश होता है, बड़ी कठिनतासे भोग मिलते हैं, भोगते हुए तृप्ति नहीं होती है। जैसे २ भोग भोगे जाते हैं तृष्णाकी आग बढ़ती जाती है। फिर प्राप्त भोगोंको छोड़ना नहीं चाहता है। छूटने

हुए मनको बड़ी पीड़ा होती है। ऐसे भोगोंको कोई बुद्धिमान सेवन नहीं करता है। यदि गृहस्थ ज्ञानी हुआ तो आवश्यकतानुसार अल्प भोग सन्तोषपूर्वक करता है–उनकी तृष्णा नहीं रखता है।

आत्मानुशासनमें गुणभद्राचार्य कहते हैं–

कृष्ट्वोप्त्वा नृपतीन्निषेव्य बहुशो भ्रान्त्वा वनेऽम्भोनिधौ।
किं क्लिश्नासि सुखार्थमत्र सुचिरं हा कष्टमज्ञानतः ॥
तैलं त्वं सिकतासु यन्मृगयसे वाञ्छेद् विषाज्जीवितुं।
नन्वाशाग्रहनिग्रहात्तव सुखं न ज्ञातमेतत्त्वया ॥ ४२ ॥

भावार्थ–खेती करके व कराके बीज बुवाकर, नाना प्रकार राजाओंकी सेवा कर, वनमें या समुद्रमें धनार्थ भ्रमणकर तूने सुखके लिये अज्ञानवश दीर्घकालसे क्यों कष्ट उठाया है। हा! तेरा कष्ट वृथा है। तू या तो बालू पेलकर तेल निकालना चाहता है या विष खाकर जीना चाहता है। इन भोगोंकी तृष्णासे तुझे सच्चा सुख नहीं मिलेगा। क्या तूने यह बात अब तक नहीं जानी है कि तुझे सुख तब ही प्राप्त होगा जब तू आशारूपी पिशाचको वशमें कर लेगा?

दूसरी बात इस सूत्रमें रूपके नाशकी कही है। वास्तवमें यह यौवन क्षणभंगुर है, शरीरका स्वभाव गलनशील है, जीर्ण होकर कुरूप होजाता है, भीतर महा दुर्गंधमय अशुचि है। रूपको देखकर राग करना भारी अविद्या है। ज्ञानी इसके स्वरूपको विचार कर इसे पुद्गलपिंड समझकर मोहसे बचे रहते हैं। आठवें स्मृति प्रस्थान सूत्रमें इसका वर्णन हो चुका है। तौ भी जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य दिये जाते हैं–

श्री चन्द्रकृत वैराग्य मणिमालामें है—

मा कुरु यौवनधनगृहगर्वं तव कालस्तु हरिष्यति सर्वं ।
इन्द्रजालमिदमफलं हित्वा मोक्षपदं च गवेषय मत्वा ॥१८॥
नीलोत्पलदलगतजलचपलं इन्द्रजालविद्युत्समतरलं ।
किं न वत्सि संसारमसारं भ्रान्त्या जानासि त्वं सारं ॥१९॥

भावार्थ—यह युवानीका रूप, धन, घर आदि इन्द्रजालके समान चचल हैं व फल रहित है, ऐसा जानकर इनका गर्व न कर। जब मरण आयगा तब छूट जायगा ऐसा जानकर तू निर्वाणकी खोज कर। यह संसारके पदार्थ नीलकमल पत्तेपर पानीकी बूंदके समान या इन्द्रधनुषके समान या बिजलीके समान चचल है। इनको तू असार क्यों नहीं देखता है। भ्रमसे तू इनको सार जान रहा है।

मूलाचार अनगार भावनामें कहा है—

अट्ठिणिछण्णं णालिणिबद्धं कलिमलभरिदं किमिउलपुण्णं ।
मंसविलित्तं तयपडिछण्णं सरीरघरं तं सददमचोक्खं ॥ ८३ ॥
एदारिसे सरीरे दुग्गंधे कुणिमपूदियमचोक्खे ।
सडणपडणे असारे रागं ण करिंति सप्पुरिसा ॥ ८४ ॥

भावार्थ—यह शरीररूपी घर हड्डियोंसे बना है, नसोंसे बंधा है, मल मूत्रादिसे भरा है, कीड़ोंसे पूर्ण है, माससे भरा है, चमड़ेसे ढका है, यह तो सदा ही अपवित्र है। ऐसे दुर्गंधित, पीपादिसे भरे अपवित्र सड़ने पड़ने वाले, सार रहित, इस शरीरसे सत्पुरुष राग नहीं करते हैं।

तीसरी बात वेदनाके सम्बन्धमें कही है। कामभोग सम्बन्धी सुख दुःख वेदनाका कथन साधारण जानकर जो ध्यान करते हुए

भी साताकी वेदना झलकती है उसको यहा वेदनाका आस्वाद कहा है। यह वेदना भी अनित्य है। आत्मानन्दसे विलक्षण है। अतएव दु खरूप है। विकार स्वभावरूप है। इसमे अतीन्द्रिय सुख नहीं है। इस प्रकार सर्व तरहकी वेदनाका राग त्यागना आवश्यक है। जैन सिद्धातमें जहा सूक्ष्म वर्णन किया है वहा चेतना या वेदनाके तीन भेद किये हैं। (१) कर्मफल चेतना–कर्मोंका फल सुख अथवा दु ख भोगते हुए यह भाव होना कि मैं सुखी हू या दु खी हू। (२) कर्म चेतना–राग या द्वेषपूर्वक कोई शुभ या अशुभ काम करते हुए यह वेदना कि मैं अमुक काम कर रहा हू (३) ज्ञान-चेतना–ज्ञान स्वरूपको ही वेदना या ज्ञानका आनद लेना। इनमेंसे पहली दोको अज्ञान चेतना कहकर त्यागने योग्य कहा है। ज्ञानचतना शुद्ध है व ग्रहणयोग्य है।

श्री पचास्तिकायमें कुदकुदाचार्य कहते है—

कम्माण फलमेक्का एको कज्ज तु णाण मधएक्को।
चदयदि जीवरासी चेदनामावेण तिविहेण ॥ ३८ ॥

भावार्थ–कोई जीवराशिको कर्मोंके सुख दु ख फलको वेदे है, कोई जीवराशि कुछ उद्यम लिय सुख दुखरूप कर्मोंक भोगनेक निमित्त इष्ट अनिष्ट विकरस्वरूप कार्यको विशेषताके साथ वेदे हैं और एक जीवराशि शुद्ध ज्ञान हीको विशेषतासे वेद है। इस तरह चेतना तीन प्रकार है।

ये वेदनायें मुख्यतासे कौन२ वेदते है?—

सव्वे खलु कम्मफल थावरकाया तसा हि कज्ज जुद।
पाणित्तमदिक्कता णाण विंदति ते जीवा ॥ ३९ ॥

भावार्थ-निश्चयसे सर्व ही स्थावर कायिक जीव-पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु तथा वनस्पति कायिक जीव मुख्यतासे कर्मफल चेतना रखते हैं अर्थात् कर्मोंका फल सुख तथा दुःख वेदते हैं। द्वेन्द्रियादि सर्व त्रसजीव कर्मफल चेतना सहित कर्म चेतनाको भी मुख्यतासे वेदन हैं तथा अतीन्द्रिय ज्ञानी अर्हत् आदि शुद्ध ज्ञान चेतनाको ही वेदते हैं। समयसार कलशमें कहा है—

ज्ञानस्य संचेतनयैव नित्यं प्रकाशते ज्ञानमतीव शुद्धं।
अज्ञानसंचेतनया तु धावन् बोधस्य शुद्धिं निरुणद्धि बन्धः ॥३१॥

भावार्थ-ज्ञानके अनुभवसे ही ज्ञान निरन्तर अत्यन्त शुद्ध झलकता है। अज्ञानके अनुभवसे बन्ध दौड़कर आता है और ज्ञानकी शुद्धिको रोकता है। भावार्थ-शुद्ध ज्ञानका वेदन ही हितकारी है।

(११) मज्झिमनिकाय चूल दुःख स्कंध सूत्र।

एक दफे एक महानाम शाक्य गौतम बुद्धके पास गया और कहने लगा-बहुत समयसे मैं भगवानके उपदिष्ट धर्मको इस प्रकार जानता हूं। लोभ चित्तका उपक्लेश (मल) है, द्वेष चित्तका उपक्लेश है, मोह चित्तका उपक्लेश है, तौ भी एक समय लोभवाले धर्म मेरे चित्तको चिपट रहते हैं तब मुझे ऐसा होता है कि कौनसा धर्म (बात) मेरे भीतर (अध्यात्म) में नहीं छूटा है।

बुद्ध कहते हैं-वही धर्म तेरे भीतरसे नहीं छूटा जिससे एक समय लोभधर्म तेरे चित्तको चिपट रहते हैं। हे महानाम! यदि वह धर्म भीतरसे छूटा हुआ होता तो तू घरमें वास न करता, कामोप

भोग न करता। चूं कि वह धर्म तेरे भीतरसे नहीं छूटा इसलिये तू गृहस्थ है, कामोपभोग करता है। ये कामभोग अप्रसन्न करनेवाले, बहुत दुःख देनेवाले, बहुत उपायास (कष्ट) देनेवाले है। इनमे आदिनव (दुष्परिणाम) बहुत है। जब आर्य श्रावक यथार्थत अच्छी तरह जानकर इसे देख लेता है, तो वह कामोंसे अलग, अकुशल धर्मोंसे पृथक् हो, प्रीतिसुख या उनसे भी शांततर सुख पाता है। तब वह कामोंकी ओर न फिरनेवाला होता है। मुझे भी सम्बोधि प्राप्तिके पूर्व ये काम होते थे। इनमें दुष्परिणाम बहुत है ऐसा जानते हुए भी मैं कामोंसे अलग शांततर सुख नहीं पासका। जब मैंने उनसे भी शांततर सुख पाया तब मैंने अपनेको कामोंकी ओर न फिरनेवाला जाना।

क्या है कामोका आस्वाद -ये पाच काम गुण है (१) इष्ट-मनोज्ञ चक्षुसे जाननेयोग्य रूप, (२) इष्ट-मनोज्ञ श्रोत्रमे जानने-योग्य शब्द, (३) इष्ट-मनोज्ञ घ्राणविज्ञेय गंध, (४) इष्ट-मनोज्ञ जिह्वा विज्ञेय रस, (५) इष्ट-मनोज्ञ कायविज्ञेय स्पर्श। इन पाच काम गुणोंके कारण जो सुख या सौमनस्य उत्पन्न होता है यही कामोंका आस्वाद है।

कामोंका आदिनव इसके पहले अध्यायमें कहा जाचुका है। इस सूत्रमें निर्ग्रंथ (जैन) साधुओंसे गौतमका वार्तालाप दिया है उसको अनावश्यक समझकर यहा न देकर उसका सार यह है। परस्पर यह प्रश्न हुआ कि राजा श्रेणिक विम्बसार अधिक सुख विहारी है या गौतम? तब यह वार्तालापका सार हुआ कि राजा मगध श्रेणिक बिम्बसारसे गौतम ही अधिक सुख विहारी है।

नोट-इस सूत्रका सार यह है कि राग द्वेष मोह ही दुःखके कारण हैं। उनकी उत्पत्तिके हेतु पांच इन्द्रियोंके विषयोंकी लालसा है। इन्द्रिय भोग योग्य पदार्थोंका संग्रह अर्थात् परिग्रहका सम्बन्ध जहांतक है वहांतक राग द्वेष मोहका दूर होना कठिन है। परिग्रह ही सब सांसारिक कष्टोंकी भूमि है। जैन सिद्धान्तमें बताया है कि पहले तो सम्यग्दृष्टी होकर यह बात अच्छी तरह जान लेनी चाहिये कि विषयभोगोंसे सच्चा सुख नहीं प्राप्त होता है-सुखसा दिखता है परन्तु सुख नहीं है। अतीन्द्रिय सुख जो अपना स्वभाव है वही सच्चा सुख है। करोड़ों जन्मोंमें इस जीवने पांच इन्द्रियोंके सुख भोगे हैं परन्तु यह कभी तृप्त नहीं होसका। ऐसी श्रद्धा होजाने पर फिर यह सम्यग्दृष्टी उसी समय तक गृहस्थमें रहता है जबतक तीव्र पूर्ण वैराग्य नहीं हुआ। घरमें रहता हुआ भी वह अति लोभसे विरक्त होकर न्यायपूर्वक व सन्तोषपूर्वक आवश्यक इन्द्रिय भोग करता है तब वह अपनेको उस अवस्थामें बहुत अधिक सुख शांतिका भोगनेवाला पाता है। जब वह मिथ्यादृष्टी था तो भी गृहवासकी आकुलतासे वह बच नहीं सक्ता। उसकी निरन्तर भावना यही रहती है कि कब पूर्ण वैराग्य हो कि कब गृहवास छोड़कर साधु हो परम सुख शांतिका स्वाद लूं। जब समय आजाता है तब वह परिग्रह त्यागकर साधु होजाता है। जैनोंमें वर्तमान युगके चौबीस महापुरुष तीर्थंकर होगए हैं, जो एक दूसरेके बहुत पीछे हुए। ये सब राज्यवंशी क्षत्रिय थे, जन्मसे आत्मज्ञानी थे। इनमेंसे बारहवें वासपूज्य, उन्नीसवें मल्लि, बाईसवें नेमि, तेईसवें पार्श्वनाथ,

चौवीसवें महावीर या निग्रन्थनाथपुत्रने कुमारवयमें-राज्य किये विना ही गृहवास छोड दीक्षा ली व साधु हो आत्मध्यान करके मुक्ति प्राप्त की। शेष-१ ऋषभ, २ अजित, ३ संभव, ४ अभिनंदन, ५ सुमति, ६ पद्मप्रभ, ७ सुपार्श्व, ८ चंद्रप्रभु, ९ पुष्पदंत, १० सीतल, ११ श्रेयांश, १३ विमल, १४ अनंत, १५ धर्म, १६ शांति, १७ कुंथु, १८ अरह, २० मुनिसुव्रत, २१ नमि इस तरह १० तीर्थंकरोंने दीर्घकालतक राज्य किया, गृहस्थके योग्य कामभोग भोगे, पश्चात् अधिक वय होनेपर गृहत्याग निर्ग्रंथ होकर आत्मध्यान करके परम सुख पाया व निर्वाण पद प्राप्त कर लिया। इसलिये परिग्रहके त्याग करनेसे ही लालसा छूटती है। पर वस्तुका सम्बन्ध लोभका कारण होता है। यदि १०) भी पास है तो उनकी रक्षाका लोभ है, न खर्च होनेका लोभ है। यदि गिर जाय तो शोक होता है। जहां किसी वस्तुकी चाह नहीं, तृष्णा नहीं, राग नहीं वहां ही सच्चा सुख भीतरसे झलक जाता है। इसलिये इस सूत्रका तात्पर्य यह है कि इन्द्रिय भोग त्यागने योग्य हैं, दुःखके मूल हैं, ऐसी श्रद्धा रखके घरमें वैराग्य युक्त रहो। जब प्रत्याख्यानावरण कषाय (जो मुनिके संयमको रोकती है) का उपशम होजावे तब गृहत्याग साधुके अध्यात्मीक शांति और सुखमें विहार करना चाहिये।

तत्वार्थसूत्र ७में अध्यायमें कहा है कि परिग्रह त्यागके लिये पांच भावनाएं मानी चाहिये —

मनोज्ञामनोज्ञेन्द्रियविषयरागद्वेषवर्जनानि पंच ॥ ८ ॥

भावार्थ-इष्ट तथा अनिष्ट पांचों इन्द्रियोंके विषयोंमें या पदार्थोंमें रागद्वेष नहीं रखना, आवश्यक्तानुसार समभावसे भोजनपान कर लेना।

"मूर्छा परिग्रहः" ॥ १७ ॥ पर पदार्थोंमें ममत्व भाव ही परिग्रह है। बाहरी पदार्थ ममत्व भावके कारण है इसलिये गृहस्थी प्रमाण करता है, साधु त्याग करता है। वे दश प्रकारके हैं।—
"क्षेत्रवास्तुहिरण्यसुवर्णधनधान्यदासीदासकुप्यप्रमाणातिक्रमाः" ॥२९॥

(१) क्षेत्र (भूमि), (२) वास्तु (मकान), (३) हिरण्य (चांदी), (४) सुवर्ण (सोना जवाहरात), ५ धन (गो भैंस, घोड़े, हाथी), ६ धान्य (अनाज), ७ दासी, ८ दास, ९ कुप्य (कपड़े), १० भांड (वर्तन)

"अगार्यनगारश्च" । १९ । व्रती दो तरहके हैं—गृहस्थी (सागार) व गृहत्यागी (अनगार)।

"हिंसानृतस्तेयाब्रह्मपरिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ॥१॥" "देशसर्वतोऽणुमहती" ॥२॥ "अणुव्रतोऽगारी ॥ २० ॥

भावार्थ—हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील (अब्रह्म) तथा परिग्रह, इनसे विरक्त होना व्रत है। इन पापोंको एकदेश शक्तिके अनुसार त्यागनेवाला अणुव्रती है। इनको सर्वदेश पूर्ण त्यागनेवाला महाव्रती है। अणुव्रती सागार है, महाव्रती अनगार है। अतएव अणुव्रती अल्प सुखशांतिका भोगी है महाव्रती महान सुखशांतिका भोगी है।

श्री समंतभद्राचार्य रत्नकरण्डश्रावकाचारमें कहते हैं—

मोहतिमिरापहरणे दर्शनलाभादवाप्तसंज्ञानः ।
रागद्वेषनिवृत्त्यै चरणं प्रतिपद्यते साधुः ॥ ४७ ॥

भावार्थ—मिथ्यात्वके अंधकारके दूर हो जानेपर जब सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानका लाभ होजावे तब साधु राग द्वेषके हटानेके लिये चारित्रको पालते हैं।

रागद्वेषनिवृत्तेर्हिंसादिनिवर्तना कृता भवति।
अनपेक्षितार्थवृत्तिः कः पुरुषः सेवते नृपतीन् ॥ ४८ ॥

भावार्थ–राग द्वेषके छूटनेसे हिंसादि पाप छूट जाते हैं। जैसे जिसको धन प्राप्तिकी इच्छा नहीं है वह कौन पुरुष है जो राजाओंकी सेवा करेगा।

हिंसानृतचौर्येभ्यो मैथुनसेवापरिग्रहाभ्यां च।
पापप्रणालिकाभ्यो विरतिः संज्ञस्य चारित्रम् ॥ ४९ ॥

भावार्थ–पाप कर्मको लानेवाली मोरी पांच है–हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुनसेवा तथा परिग्रह। इनसे विरक्त होना ही सम्यग्ज्ञानीका चारित्र है।

सकलं विकलं चरणं तत्सकलं सर्वसङ्गविरतानाम्।
अनगाराणां विकलं सागाराणां ससङ्गानाम् ॥ ५० ॥

भावार्थः–चारित्र दो तरहका है–पूर्ण (सकल) अपूर्ण (विकल) जो सर्व परिग्रहके त्यागी गृहरहित साधु हैं वे पूर्ण चारित्र पालते हैं। जो गृहस्थ परिग्रह सहित हैं वे अपूर्ण चारित्र पालते हैं।

कषायैरिन्द्रियैर्दुष्टैर्व्याकुलीक्रियते मनः।
ततः कर्तुं न शक्नोति भावनां गृहमेधिनी ॥

भावार्थ–गृहस्थीका मन क्रोधादि कषाय तथा दुष्ट पांचों इन्द्रियोंकी इच्छाए इनसे व्याकुल रहता है। इससे गृहस्थी आत्माकी भावना (भले प्रकार पूर्णरूपसे) नहीं कर सक्ता है।

श्री कुंदकुंदाचार्य प्रवचनसारमें कहते हैं –

जेसिं विसयेसु रदी तेसिं दुःखं वियाण सब्भावं।
जदि तं ण हि सब्भावं वावारोणत्थि विसयत्थं ॥ ६४-१ ॥

भावार्थ-जिनकी इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रीति है उनको स्वाभाविक दुःख जानो। जो पीड़ा या आकुलता न हो तो विषयोंके भोगका व्यापार नहीं होसक्ता।

जे पुण इंदियवसगदा दुहिदा तण्हाहिं विसयसोक्खाणि।
इच्छंति अणुहवंति य आमरणं दुक्खसंतत्ता ॥ ७९ ॥

भावार्थ-संसारी प्राणी तृष्णाके वशीभूत होकर तृष्णाकी दाहसे दुःखी हो इन्द्रियोंके विषयसुखोंकी इच्छा करते रहते हैं और दुःखोंसे संतापित होते हुए मरण पर्यंत भोगते रहते हैं (परन्तु तृप्ति नहीं पाते)।

स्वामी मोक्षपाहुडमें कहते हैं—

ताम ण णज्जइ अप्पा विसएसु णरो पवट्टए जाम।
विसए विरत्तचित्तो जोई जाणेइ अप्पाणं ॥ ६६ ॥
जे पुण विसयविरत्ता अप्पा णाऊण भावणासहिया।
छंडंति चाउरंगं तवगुणजुत्ता ण संदेहो ॥ ६८ ॥

भावार्थ-जबतक यह नर इन्द्रियोंके विषयोंमें प्रवृत्ति करता है तबतक यह आत्माको नहीं जानता है। जो योगी विषयोंसे विरक्त है वही आत्माको यथार्थ जानता है। जो कोई विषयोंसे विरक्त होकर उत्तम भावनाके साथ आत्माको जानते हैं तथा साधुके तप व मूलगुण पालते हैं वे अवश्य चार गति रूप संसारसे छूट जाते हैं इसमें संदेह नहीं।

श्री शिवकोटि आचार्य भगवतीआराधनामें कहते हैं—

अप्पायत्ता अज्झप्परदी भोगरमणं परायत्तं।
भोगरदीए चइदो होदि ण अज्झप्परमणेण ॥ १२७० ॥

मोगरदीए णासो णियदो विग्धा य होंति अदिवहुगा।
अज्झप्पादीए सुभाविदाए ण णासो ण विग्धो वा ॥१२७१॥
णच्चा दुरतमध्दुव मत्ताणमतप्पय अविस्साम।
भोगसुहं तो तह्मा विरदो मोक्खे मदि कुज्जा ॥१२८३॥

भावार्थ—अध्यात्ममें रति स्वाधीन है, भोगोंमें रति पराधीन है भोगोंसे तो छूटना पड़ता है, अध्यात्म रतिमें स्थिर रह सक्ता है। भोगोंका सुख नाश सहित है व अनेक विघ्नोंसे भरा हुआ है। परन्तु भलेप्रकार भाया हुआ आत्मसुख नाश और विघ्नसे रहित है। इन इन्द्रियोंके भोगोंको दु खरूपी फल देनेवाले, अथिर, अशरण, अतृप्तिके कर्ता तथा विश्राम रहित जानकर इनसे विरक्त हो, मोक्षके लिये भक्ति करनी चाहिये।

---

(१२) मज्झिमनिकाय अनुमानसूत्र।

एक दफे महा मौद्गलायन बौद्ध भिक्षुने भिक्षुओंसे कहा—चाहे भिक्षु यह कहता भी हो कि मैं आयुष्मानों (महान भिक्षु) के वचा (दोष दिखानेवाले शब्द) का पात्र हू, किन्तु यदि वह दुर्वचनी है, दुर्वचन पैदा करनेवाले धर्मोंमे युक्त है और अनुशासन (शिक्षा) ग्रहण करनेमें अक्षत्र और अप्रदक्षिणा ग्राही (उत्साहरहित) है तो फिर सब्रह्मचारी न तो उसे शिक्षाका पात्र मानते हैं, न अनु शासनीय मानते हैं न उस व्यक्तिमें विश्वास करना उचित मानते हैं।

दुर्वचन पैदा करनेवाले धर्म-(१) पापकारी इच्छाओंके वशीभूत होना, (२) क्रोधके वश होना, (३) क्रोधके हेतु ढोंग करना, (४) क्रोधके हेतु डाह करना, (५) क्रोधपूर्ण वाणी कहना (६)

दोष दिखलानेवर दोष दिखलानेवालेकी तरफ हिंसक भाव करना, (७) दोष दिखलानेवालेपर क्रोध करना, (८) दोष दिखलानेवालेपर उल्टा आरोप करना, (९) दोष दिखलानेवालेके साथ दूसरी दूसरी बात करना, बातको प्रकरणसे बाहर लेजाता है, क्रोध, द्वेष अप्रत्यय (नाराजगी) उत्पन्न कराता है। (१०) दोष दिखलानेवालेका साथ छोड़ देना (११) अमरखी होना, (१२) निठुर होना, (१३) ईर्षालु व मत्सरी होना, (१४) शठ व मायावी होना (१५) जड़ और अतिमानी होना (१६) तुरन्त लाभ चाहनेवाला हठी व न त्यागनेवाला होना।

इसके विरुद्ध जो भिक्षु सुवचनी है वह सुवचन पैदा करनेवाले धर्मोंमे युक्त होता है, जो ऊपर लिखे १६ से विरक्त हैं। वह अनुशासन ग्रहण करनेमें समर्थ होता है उत्साहसे ग्रहण करनेवाला होता है। सब्रह्मचारी उसे शिक्षाका पात्र मानते हैं, अनुशासनीय मानते है, उसमें विश्वास उत्पन्न करना उचित समझते हैं।

भिक्षुको उचित है कि वह अपने हीमें अपनेको इस प्रकार समझावे। जो व्यक्ति पापेच्छ है, पापपूर्ण इच्छाओंके वशीभूत है, वह पुद्गल (व्यक्ति) मुझे अप्रिय लगता है, तब यदि मैं भी पापेच्छ या पापपूर्ण इच्छाओंके वशीभूत हुआ तो मैं भी दूसरोंको अप्रिय हुआ। ऐसा जानकर भिक्षुको मन ऐसा दृढ़ करना चाहिये कि मैं पापेच्छ नहीं हूंगा। इसी तरह ऊपर लिखे हुए १६ दोषोंके सम्बन्धमें विचार कर अपनेको इनसे रहित करना चाहिये।

भावार्थ–यह है कि भिक्षुको अपने आप इस प्रकार परीक्षण करना चाहिये। क्या मैं पापके वशीभूत हूं, क्या मैं क्रोधी हूं। इसी

तरह या मैं ऊपर लिखित दोषोंके वशीभूत हू। यदि वह देखे कि वह पापके वशीभूत है या क्रोधके वशीभूत है या अन्य दोषके वशीभूत है तो उस भिक्षुको उन बुरे अकुशल धर्मोंके परित्यागके लिये उद्योग करना चाहिये। यदि वह देखे कि उसमें ये दोष नहीं हैं तो उस भिक्षुको प्रामोध (खुशी) के साथ रातदिन कुशल धर्मोंको सीखने विहार करना चाहिये।

जैसे दहर (अल्पायु युवक) युवा शौकीन स्त्री या पुरुष परिशुद्ध उज्वल आदर्श (दर्पण) या स्वच्छ जलपात्रमें अपने मुखके प्रतिबिम्बको देखते हुए, यदि वहा रज (मैल) या अगण (दोष)को देखता है तो उस रज या अगणके दूर करनेकी कोशिश करता है। यदि वहा रज या अगण नहीं देखता है तो उसीसे सतुष्ट होता है कि अहो मेरा मुख परिशुद्ध है। इसी तरह भिक्षु अपनेको देखे। यदि अकुशल धर्मोंको अप्रहीण देखे तो उसे उन अकुशल धर्मोंके नाशके लिये प्रयत्न करना चाहिये। यदि इन अकुशल धर्मोंको प्रहीण देखे तो उसे प्रीति व प्रामोधके साथ रातदिन कुशल धर्मोंको सीखते हुए विहार करना चाहिये।

नोट-इस सूत्रमें भिक्षुओंको यह शिक्षा दी गई है कि वे अपने भावोंको दोषोंसे मुक्त करें। उन्हें शुद्ध भावसे अपने भावोंकी शुद्धतापर स्वय ही ध्यान देना चाहिये। जैसे अपने मुखको सदा स्वच्छ रखनेकी इच्छा करनेवाला मानव दर्पणमें मुखको देखता रहता है, यदि जरा भी मैल पाता है तो तुरत मुखको रूमालसे पोछकर साफ कर लेता है। यदि अधिक मैल देखता है तो पानीसे धोकर साफ करता है। इसीतरह साधुको अपने आप अपने दोषोंकी जाच

समभाव या शातभाव मोक्ष साधक है, रागद्वेष मोहभाव मोक्ष मार्गमें बाधक हैं। ऐसा समझ कर अपने भावोंकी शुद्धिका सदा प्रयत्न करना चाहिये।

श्री कुलभद्राचार्य सार समुच्चयमें कहते हैं—

यथा च जायते चेतः सम्यक्शुद्धिं सुनिर्मलाम्।
तथा ज्ञानविदा कार्यं प्रयत्नेनापि भूरिणा ॥१६१॥

भावार्थ—जिस तरह यह मन भले प्रकार शुद्धिको या निर्मलताको धारण करे उसी तरह ज्ञानीको बहुत प्रयत्न करके आचरण करना चाहिये।

विशुद्धं मानसं यस्य रागादिमलवर्जितम्।
संसाराग्र्यं फलं तस्य सकलं समुपस्थितम् ॥१६२॥

भावार्थ—जिसका मन रागादि मैलसे रहित शुद्ध है उसीको इस जगतमें मुख्य फल सफलतासे प्राप्त हुआ है।

विशुद्धपरिणामेन शान्तिर्भवति सर्वतः।
संक्लिष्टेन तु चित्तेन नास्ति शान्तिर्भवेऽपि ॥१७१॥

भावार्थ—निर्मल भावोंके होनेसे सर्व तरफसे शांति रहती है परन्तु क्रोधादिसे—दुःखित परिणामोंसे भवभवमें भी शान्ति नहीं मिल सक्ती।

संक्लिष्टचेतसा पुंसां माया संसारवर्धिनी।
विशुद्धचेतसा वृत्तिः सम्पत्तिवित्तदायिनी ॥१७३॥

भावार्थ—संक्लेश परिणामधारी मानवोंकी बुद्धि संसारको बढ़ानेवाली होती है, परन्तु निर्मल भावधारी पुरुषोंका वर्तन सम्यग्दर्शनरूपी धनको देनेवाला है, मोक्षकी तरफ लेजानेवाला है।

परोऽप्युत्पथमापन्नो निषेद्धुं युक्त एव सः ।
किं पुनः स्वमनोऽत्यर्थं विषयोत्पथयायिनत् ॥ १७९ ॥

भावार्थ दूसरा कोई कुमार्गगामी होगया हो तो भी उसे मनाहो करना चाहिये, यह तो ठीक है परन्तु विषयोंके कुमार्गमें जानेवाले अपने मनको अतिशयरूप क्यों नहीं रोकना चाहिये? अवश्य रोकना चाहिये।

अज्ञानाद्यदि मोहाद्यत्कृतं कर्म सुकुत्सितम् ।
व्यावर्तयेन्मनस्तस्मात् पुनस्तन्न समाचरेत् ॥ १७८ ॥

भावार्थ—यदि अज्ञानके वशीभूत होकर या मोहके आधीन होकर जो कोई अशुभ काम किया गया हो उसमे मनको हटा लेवे फिर उस कामको नहीं करे।

धर्मस्य संचये यत्नः कर्मणां च परिक्षये ।
साधूनां चेष्टितं चित्तं सर्वपापप्रणाशनम् ॥ १९३ ॥

भावार्थ—साधुओंका उद्योग धर्मके संग्रह करनेमें तथा कर्मोंके क्षय करनेमें होता है तथा उनका चित्त ऐसे चारित्रके पालनमें होता है जिससे सर्व पापोंका नाश होजावे।

साधकको नित्य प्रति अपने दोषोंको विचार कर अपने भावोंको निर्मल करना चाहिये।

श्री अमितगति आचार्य सामायिक पाठमें कहते हैं—

एकेन्द्रियाद्या यदि देव देहिनः प्रमादतः संचरता इतस्ततः ।
क्षता विभिन्ना मिलिता निपीडिता तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥५॥

" हे देव! प्रमादसे इधर उधर चलते हुए एकेन्द्रिय यदि मेरे द्वारा नाश किये " जुदे किये गए हों,

मिला दिये गए हों, दु खित किये गए हों तो यह मेरा अयोग्य कार्य मिथ्या हो। अर्थात् मैं इस भूलको स्वीकार करता हू।

विमुक्तिमार्गप्रतिकूलवर्तिना मया कषायाक्षवशेन दुर्धिया।
चारित्रशुद्धेर्यदकारिलोपन तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृत प्रभो ॥ ६ ॥

भावार्थ—मोक्षमार्गसे विरुद्ध चलकर क्रोधादि कषाय व पाचों इन्द्रियोंके वशीभूत होकर मुझ दुर्बुद्धिने जो चारित्रमें दोष लगाया हो वह मेरा मिथ्या कार्य मिथ्या हो अर्थात् मैं अपनी भूलको स्वीकार करता हू।

विनिन्दनालोचनगर्हणरह, मनोवच कायकषायनिर्मितम्।
निहन्मि पाप भवदु खकारण भिषग् वेष मन्त्रगुणैरिवाखिल ॥ ७ ॥

भावार्थ—जैसे वैद्य सर्पके सर्व विषको मत्रोंको पढ़कर दूर कर देता है वैसे ही मैं मन, वचन, काय तथा क्रोधादि कषायोंके द्वारा किये गए पापोंको अपनी निन्दा, गर्हा, आलोचना आदिसे दूर करता हू, प्रायश्चित्त लेकर भी उस पापको धोता हू।

---

(१२) मज्झिमनिकाय चेतोखिलसूत्र।

गौतमबुद्ध कहते है—भिक्षुओ! जिस किसी भिक्षुके पाच चेतोखिल (चित्तके कील) नष्ट नहीं हुए, ये पाचों उसके चित्तमें बद्ध है, छिन्न नहीं है, वह इस धर्म विषयमे वृद्धिको प्राप्त होगा यह समव नहीं है।

पाच चेतोखिल–(१) शास्ता, (२) धर्म, (३) सघ, (४) शील, इन चारमें सदेह युक्त होता है, इनमें श्रद्धालु नहीं होता।

इसलिये उसका चित्त तीव्र उद्योगके लिये नहीं झुकता। चार चेतो खिल तो ये हैं (५) सब्रह्मचारियोंके विषयमें कुपित, असंतुष्ट, दूषितचित्त होता है इसलिये उसका चित्त तीव्र उद्योगके लिये नहीं झुकता, ये पांच चेतोखिल हैं। इसी तरह जिस किसी भिक्षुके पांच चित्तबंधन नहीं कटे होते हैं वह धर्म विनयमें वृद्धिको नहीं प्राप्त हो सकता।

पांच चित्तबंधन-(१) कामों (कामभोगों) में अवीतराग, अवीतप्रेम, अविगतपिपास, अविगत परिदाह, अविगत तृष्णा रखना, (२) कायमें तृष्णा रखना, (३) रूपमें तृष्णा रखना ये तीन चित्तबंधन हैं, (४) यथेच्छ उदरभर भोजन करके शय्या सुख, स्पर्श सुख आलस्य सुखमें फंसा रहना यह चौथा है, (५) किसी देवनिकाय देवयोनिका प्रणिधान (दृढ़ कामना) रखके ब्रह्मचर्य आचरण करता है। इस शील, व्रत, तप, या ब्रह्मचर्यसे मैं देवता या देवतामेंसे कोई होऊं यह पांचमा चित्त बंधन है।

इसके विरुद्ध-जिस किसी भिक्षुके ऊपर लिखित पांच चेतो खिल प्रहीण हैं, पांच चित्तबन्धन समुच्छिन्न हैं, वह इस धर्ममें वृद्धिको प्राप्त होगा यह संभव है।

ऐसा भिक्षु (१) छन्दसमाधि प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, (२) वीर्यसमाधि प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, (३) चित्तसमाधि प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, (४) इंद्रियसमाधि प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है, (५) विमर्श (उत्साह) समाधि

प्रधान संस्कार युक्त ऋद्धिपादकी भावना करता है। ऐसा भिक्षु निर्वेद (वैराग्य) के योग्य है, सबोधि (परमज्ञान) के योग्य है, सर्वोत्तम योगक्षेम (निर्वाण) की प्राप्तिके लिये योग्य है।

जैसे आठ, दस या बारह मुर्गीके अंडे हों, वे मुर्गीद्वारा भले प्रकार सेये, परिस्वेदित, परिभावित हों, चाहे मुर्गीकी इच्छा न भी हो कि मेरे बच्चे स्वस्तिपूर्वक निकल आवें तौभी वे बच्चे स्वस्तिपूर्वक निकल आनेके योग्य हैं। ऐसे ही भिक्षुओ! उत्सोढ़िके पद्रह अंगोंसे युक्त भिक्षु निर्वेदके लिये, सम्बोधिके लिये, अनुत्तर योगक्षेम प्राप्तिके लिये योग्य है।

नोट- इस सूत्रमे निर्वाणके मार्गमें चलनेवालेके लिये पद्रह बातें उपयोगी बताई हैं—

(१) पाच चित्तके कांटे–नहीं होने चाहिये। भिक्षुको अश्रद्धा, देव धर्म गुरु चारित्र तथा साधर्मी साधनोंमें होना चित्तके कांटे हैं। जब श्रद्धा न होगी तब वह उन्नति नहीं कर सक्ता। इस लिये भिक्षुकी दृढ़ श्रद्धा आदर्श आत्मामें, धर्ममें गुरुमें, व चारित्रमें व सहधर्मियोंमें होनी चाहिये, तब ही वह उत्साहित होकर चारित्रको पालेगा, धर्मको बढावेगा, आदर्श साधु होकर अरहत पदपर पहुचनेकी चेष्टा करेगा।

(२) पाच चित्त बन्धन–साधकका मन पाच बातोंमें उलझा नहीं होना चाहिये। यदि उसका मन काममोगोंमें, (२) शरीरकी पुष्टिमें, (३) रूपकी सुदरता निरखनेमे, (४) इच्छानुकूल भोजन करके सुखपूर्वक लेटे रहने, निन्द्रा लेने व आलस्यमें समय बितानेमें

है जो उसकी अरहत व सिद्ध परमात्मामें व साधुमें भक्ति हो, धर्म साधनका उद्योग हो तथा गुरुओंकी आज्ञानुसार चारित्रका पालन हो।

स्वामी कुन्दकुन्दाचार्य प्रवचनसारमें कहते हैं–

ण हवदि समणात्ति मदो संजमतवसुत्तसंपजुत्तोवि।
जदि सद्दहदि ण अत्थे आदपधाणे जिणक्खादे ॥ ८९–३ ॥

भावार्थ–जो कोई साधु संयमी, तपस्वी व सूत्रके ज्ञाता हो परन्तु जिन कथित आत्मा आदि पदार्थोंमें जिसकी यथार्थ श्रद्धा नहीं है वह वास्तवमें श्रमण या साधु नहीं है।

स्वामी कुन्दकुन्द मोक्षपाहुडमें कहते हैं—

देव गुरुम्मय भत्तो साहम्मिय संजदेसु अणुरत्तो।
सम्मत्तमुव्वहंतो झाणरओ होइ जोई सो ॥ ९२ ॥

भावार्थ-जो योगी सम्यग्दर्शनको धारता हुआ देव तथा गुरुकी भक्ति करता है, साधर्मी संयमी साधुओंमें प्रीतिमान है वही ध्यानमें रुचि करनेवाला होता है।

शिवकोटि आचार्य भगवती आराधनामें कहते हैं—

अरहंतसिद्धचेइय, सुदे य धम्मे य साधुवग्गे य।
आयरियेसुवज्झा-, एसु पवयणे दंसणे चावि ॥ ४६ ॥
भत्ती पूया वण्णज , णणं च णासणमवण्णवादस्स।
आसादणपरिहारो, दंसणविणओ समासेण ॥ ४७ ॥

भावार्थ–श्री अरहंत शास्ता आप्त, सिद्ध परमात्मा, उनकी मूर्ति, शास्त्र, धर्म, साधु समूह, आचार्य, उपाध्याय, वाणी और सम्यग्दर्शन इन दस स्थानोंमें भक्ति करना, पूजा करनी, गुणोंका ", कोई निन्दा करे तो उसको निवारण करना, अविनयको

हटाना, यह सब संक्षेपसे सम्यग्दर्शनका विनय है । व्रतीमें माया, मिथ्या, निदान तीन शल्य नहीं होने चाहिये । अर्थात् कपटसे, अश्रद्धासे व भोगाकांक्षासे धर्म न पाले ।

तत्वार्थसारमें कहा है—

मायानिदानमिथ्यात्वशल्याभावविशेषत ।
अहिंसादिव्रतोपेनो व्रतीति व्यपदिश्यते ॥ ७८ ॥

भावार्थ-वही अहिंसा आदि व्रतोंका पालनेवाला व्रती कहा जाता है जो माया, मिथ्यात्व व निदान इन तीन शल्यों (कीलों व कांटों) से रहित हो ।

मोक्षमार्गका साधक कैसा होना चाहिये ।

श्री कुंदकुंदाचार्य प्रवचनसारमें कहते हैं—

इहलोग णिरावेक्खो अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्मि ।
जुत्ताहारविहारो रहिदकसाओ हवे समणो ॥ ४२–३ ॥

भावार्थ-जो मुनि इस लोकमें इन्द्रियोंके विषयोंकी अभिलाषासे रहित हो, परलोकमें भी किसी पदकी इच्छा नहीं रखता हो, योग्य परिमित लघु आहार व योग्य विहारको करनेवाला हो, क्रोध, मान, माया, लोभ कषायोंका विजयी हो, वही श्रमण या साधु होता है ।

स्वामी कुंदकुंद बोधपाहुडमें कहते हैं—

णिण्णेहा णिल्लोहा णिम्मोहा णिव्वियार णिक्कलुसा ।
णिब्भय णिरासभावा पव्वज्जा एरिसा भणिया ॥ ५० ॥

भावार्थ-जो स्नेह रहित है, लोभ रहित है, मोह रहित है, विकार रहित हैं, क्रोधादिकी कलुषतासे रहित हैं भय रहित है, आशा तृष्णासे रहित है, उन्हींको साधु दीक्षा कही गई है।

बट्टकेरस्वामी मूलाचार समयसारमें कहते हैं–

भिक्खं चर वस रण्णे थोवं जेमेहि मा बहू जंप ।
दु:खं सह जिण णिद्दा मेत्तिं भावेहि सुट्ठु वेरग्गं ॥ ४ ॥
अव्ववहारी एक्को झाणे एयग्गमणो भव णिरारंभो ।
चत्तकसायपरिग्गह पयत्तचेट्ठो असंगो य ॥ ५ ॥

भावार्थ–भिक्षासे भोजन कर वनमें रह थोड़ा भोजन कर, दु:खोंको सह, निद्राको जीत, मैत्री और वैराग्यभावनाओंको भले प्रकार विचार कर, लोक व्यवहार न कर, एकाकी रह, ध्यानमें लीन हो, आरम्भ मत कर क्रोधादि कषाय रूपी परिग्रहका त्याग कर, उद्योगी रह, व असंग या मोहरहित रह ।

जदं चरे जदं चिट्ठे जदमासे जदं सये ।
जदं भुंजेज्ज भासेज्ज एवं पावं ण बज्झइ ॥ १२२ ॥
जदं तु चरमाणस्स दयापेहुस्स भिक्खुणो ।
णवं ण बज्झदे कम्मं पोराणं च विधूयदि ॥ १२३ ॥

भावार्थ हे साधु ! यत्नपूर्वक देखके चल, यत्नसे मत पाल नका उद्योग कर, यत्नसे भूमि देखकर बैठ, यत्नसे शयन कर, यत्नसे भोजन कर, यत्नसे बोल, इस तरह वर्तनेसे पाप बंध न होगा। जो दयावान साधु यत्नपूर्वक आचरण करता है उनके नए कर्म नहीं बंधते, पुराने दूर होजाते हैं ।

श्री शिवकोटि भगवती आराधनामें कहते हैं–

जिदरागो, जिददोसो, जिदिंदिओ जिदभओ जिदकसाओ ।
रदि अरदि मोहमहणो, झाणोवगओ सदा होइ ॥ ६८ ॥

भावार्थ–जिसने रागको जीता है, द्वेषको जीता है, इन्द्रियोंको

जाता है, भयको जीता है, कषायोंको जीता है, रति अरति व मोहका जिसने नाश किया है वही सदाकाल ध्यानमें उपयुक्त रह सक्ता है।

श्री शुभचंद्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं–

विरम विरम संगान्मुंच मुंच प्रपंच-
विसृज विसृज मोहं विद्धि विद्धि स्वतत्वम्॥
कलय कलय वृत्तं पश्य पश्य स्वरूपं।
कुरु कुरु पुरुषार्थं निर्वृतानन्दहेतो ॥ ४९-१९॥

भावार्थ–हे भाई! तू परिग्रहसे विरक्त हो, जगतके प्रपंचको छोड़, मोहको विदा कर, आत्मतत्वको समझ चारित्रका अभ्यास कर, आत्मस्वरूपको देख, मोक्षके सुखके लिये पुरुषार्थ कर।

(१४) मज्झिमनिकाय द्वेधा वितर्क सूत्र।

गौतम बुद्ध कहते हैं–भिक्षुओ! बुद्धत्व प्राप्तिके पूर्व भी बोधिसत्व होते वक्त मेरे मनमें ऐसा होता था कि क्यों न दो टुक वितर्क करते करते मैं विहरूं–जो काम वितर्क, व्यापाद (द्वेष) वितर्क, विहिंसा वितर्क इन तीनोंको मैंने एक भागमें किया और जो नैष्काम्य (काम भोग इच्छा रहित) वितर्क, अव्यापाद वितर्क, अविहिंसा वितर्क इन तीनोंको एक भागमें किया। भिक्षुओ! सो इस प्रकार प्रमाद रहित, आलस्यी (उद्योगी), प्रहितत्मा (आत्म संयमी) हो विहरते भी मुझे काम वितर्क उत्पन्न होता था। सो मैं इस प्रकार जानता था। उत्पन्न हुआ यह मुझे काम वितर्क और यह आत्म आबाधाके लिये है, पर आबाधाके लिये है, उभय आबा

धाक लिया है। वह प्रज्ञानिरोधक, विघात पक्षिक (हानिके पक्षका), निर्वाणको नहीं ले जानेवाला है। यह सोचने पर काम वितर्क अस्त हो जाता था। इसतरह, बार बार उत्पन्न होनेवाले काम वितर्कोंको मैं त्यागता ही था, हटाता ही था, अलग करता ही था। इसी प्रकार व्यापाद वितर्कको तथा विहिंसा वितर्कको जब उत्पन्न होता था तब मैं अलग करता ही था।

भिक्षुओ! भिक्षु जैसे जैसे अधिकतर वितर्क करता है, विचार करता है वैसे वैसे ही चित्तको झुकना होता है। यदि भिक्षुओ! भिक्षु काम वितर्कको या व्यापाद-वितर्कको या विहिंसा वितर्कको अधिकतर करता है तो वह निष्काम वितर्कको या अव्यापाद वितर्कको या अविहिंसा वितर्कको छोडता है, और कामादि वितर्कको बढ़ाता है। उसका चित्त कामादि वितर्ककी ओर लग जाता है।

जैसे भिक्षुओ! वर्षाके अन्तिम मासमें (शरद कालमें) जब फसल भरी रहती है तब ग्वाला अपनी गायोंकी रखवाली करता है। वह उन गायोंको वहां (भरे हुए खेतों) से डंडेसे हांकता है, मारता है रोकता है निवारता है। सो किस हेतु! वह ग्वाला उन खेतोंमें चरनेके कारण वध बन्धन हानि या निन्दाको देखता है। ऐसे ही भिक्षुओ! मैं अकुशल धर्मोंके दुष्परिणाम अपकार, संक्लेशको और कुशल धर्मोंमें अर्थात् निष्कामना आदिमें सुपरिणाम और परिशुद्धताका संरक्षण देखता था।

भिक्षुओ! सो इस प्रकार प्रमादरहित विहरते यदि निष्कामता ..., अव्यापाद वितर्क या अविहिंसा वितर्क उत्पन्न होता था,

सो मैं इस प्रकार जानता था कि उत्पन्न हुआ यह मुझे निष्कामता आदि वितर्क—यह न आत्म आबाधा, न पर आबाधा न उभय आबाधाके लिये है यह प्रज्ञावर्द्धक है, अविघात पक्षिक है और निर्वाणको लेजानेवाला है। रातको भी या दिनको भी यदि मैं ऐसा वितर्क करता, विचार करता तो मैं भय नहीं देखता। किंतु बहुत देर वितर्क व विचार करते मेरी काया क्लान्त (थकी) होजाती, कायाके क्लान्त होनेपर चित्त अपहत (शिथिल) होजाता, चित्तके अपहत होनेपर चित्त समाधिसे दूर हट जाता था। सो मैं अपने भीतर (अध्यात्ममें) ही चित्तको स्थापित करता था, बढ़ाता था, एकाग्र करता था। सो किस हेतु? मेरा चित्त कहीं अपहत न होजावे।

भिक्षुओ! भिक्षु जैसे जैसे अधिकतर निष्कामता वितर्क, अव्यापाद वितर्क या अविहिंसा वितर्कका अधिकतर अनुवितर्क करता है तो वह कामादि वितर्कको छोड़ता है, निष्कामता आदि वितर्कको बढ़ाता है। उस बाधित निष्कामता अव्यापाद, अविहिंसा वितर्ककी ओर झुकता है। जैसे भिक्षुओ! ग्रीष्मके अंतिम भागमें जब सभी फसल जमाकर गाममें चली जाती है ग्वाला गायोंको रखता है। वृक्षके नीचे या चौड़ेमें रहकर उन्हें केवल याद रखना होता है कि ये गायें हैं। ऐसे ही भिक्षुओ! याद रखना मात्र होता था कि ये धर्म हैं। भिक्षुओ! मैंने न दबनेवाला वीर्य (उद्योग) आरंभ कर रखा था, न भूलनेवाली स्मृति मेरे सन्मुख थी, शरीर मेरा अचंचल, शांत था, चित्त समाहित एकाग्र था सो मैं भिक्षुओ! प्रथम ध्यानको, द्वितीय ध्यानको, तृतीय ध्यानको, चतुर्थ

ध्यानको प्राप्त हो विहरने लगा। पूर्व निवास अनुस्मरणके लिये, प्राणियोंके च्युति उत्पादक ज्ञानके लिये चित्तको झुकाता था। तथा समाहित चित्त, तथा परिशुद्ध, परिमोदात, अनंगण, विगत क्लेश, मृदुभूत कर्मनीय स्थित, एकाग्र चित होकर आस्रवोंके क्षयके लिये चित्तको झुकाता था। इस तरह रात्रिके पिछले पहर तीसरी विद्या प्राप्त हुई अविद्या दूर होगई, विद्या उत्पन्न हुई, तम चला गया, आलोक उत्पन्न हुआ। जैसा उद्योगशील अप्रमादी तत्वज्ञानी या आत्मसंयमीको होता है।

जैसे भिक्षुओ! किसी महावनमें महान गहरा जलाशय हो और उसका आश्रय ले महान् मृगोंका समूह विहार करता है। कोई पुरुष उस मृग समूहका अनर्थ आकांक्षी, अहित आकांक्षी, अयोग क्षेम आकांक्षी उत्पन्न होवे। वह उस मृग समूहके क्षेम, कल्याणकारक, प्रीतिपूर्वक गन्तव्य मार्गको बंद कर दे और एकचर (अकेले चलने लायक) कुमार्गको खोल दे और एक चारिका (जाल) रख दे। इस प्रकार वह महान् मृगसमूह दूसरे समयमें विपत्तिमें तथा क्षीणताको प्राप्त होवेगा। और भिक्षुओ! उस महान मृगसमूहका कोई पुरुष हिताकांक्षी योग क्षेमकांक्षी उत्पन्न होवे, वह उस मृगसमूहके क्षेम कल्याणकारक, प्रीतिपूर्वक गन्तव्य मार्गको खोल दे, एकचर कुमार्गको बन्द कर दे और (चारिका) जालका नाश कर दे। इस प्रकार वह मृगसमूह दूसरे समयमें वृद्धि, विरूढ़ि और विपुलताको प्राप्त होवेगा।

भिक्षुओ! अर्थके समझानेके लिये मैंने यह उपमा कही है।

यहा यह अर्थ है—गहरा महान जलाशय यह कामों (कामनाओं, भोगों) का नाम है। महान मृगसमूह यह प्राणियोंका नाम है। अनर्थाकाक्षी, अहिताकाक्षी, अयोगक्षेमकाक्षी पुरुष यह मार (पापी कामदेव) का नाम है। कुमार्ग यह आठ प्रकारके मिथ्या मार्ग हैं। जैसे—(१) मिथ्यादृष्टि, (२) मिथ्या सङ्कल्प, (३) मिथ्या वचन, (४) मिथ्या कर्मान्त (कायिक कर्म) (५) मिथ्या आजीव (जीविक) (६) मिथ्या व्यायाम (७) मिथ्या स्मृति, (८) मिथ्या समाधि। एकचा यह नन्दी रागका नाम है, एक चारिका (जाक) अविद्याका नाम है। भिक्षुओं! अर्थाकाक्षी, हिताकाक्षी, योगक्षेमाकाक्षी, यह तथागत अर्हत् सम्यक् सबुद्धका नाम है। क्षेम, स्वस्तिक, प्रीतिगमनीय मार्ग यह आर्य आष्टागिक मार्गका नाम है। जैसे कि— (१) सम्यक्‌दृष्टि, (२) सम्यक् सङ्कल्प, (३) सम्यक् वचन (४) सम्यक् कर्मान्त, (५) सम्यक् आजीव, (६) सम्यक् व्यायाम, (७) सम्यक् स्मृति, (८) सम्यक समाधि। इस प्रकार भिक्षुओं! मैंने क्षेम, स्वस्तिक प्रीतिगमनीय मार्गको खोल दिया। दोनों ओरसे एक चारिका (अविद्या) को नाश कर दिया। भिक्षुओ! श्रावकोंके हितैषी, अनुकम्पक शास्ताको अनुकम्पा करके जो करना था वह तुम्हारे लिये मैंने कर दिया। भिक्षुओ! यह वृक्ष मूल है, ये सूने घर है। ध्यानरत होओ। भिक्षुओ! प्रमाद मत करो, पीछे अफसोस करनेवाले मत बनना यह तुम्हारे लिये हमारा अनुशासन है।

नोट—यह सूत्र बहुत उपयोगी है, बहुत विचारने योग्य है।

दोहक वितर्कका नाम जैन सिद्धांतमें भेदविज्ञान है। कामवितर्क, व्यापादवितर्क, विहिंसावितर्क इन तीनोंमें राग द्वेष

आजाना है । काम और राग एक है व्यापाद द्वेषका पूर्व भाव, विहिंसा व गेद्र भाव है । दोनों द्वेषमें आते हैं । रागद्वेष दो समान का मूल है, यह न योग्य है और वीतरागता तथा वीतद्वेषता ग्रहण करने योग्य है । ऐसा बारबार विचार करनेसे—राग व द्वेष जब उठे तब उनका स्वागत न करनेसे उनको स्वपर बाधाकारी जाननेसे, व वीतरागता व वीतद्वेषताको स्वागत करनेसे, उनको स्वपरको अबाधाकारी जाननेसे, इस तरह भेदविज्ञानका बारबार अभ्यास करनेसे रागद्वेष मिटता है और वीतरागभाव बढ़ता है । चित्तमें रागद्वेषका संस्कार रागद्वेषको बढ़ाता है । चित्तमें वीतरागता व वीतद्वेषताका संस्कार वैराग्यको बढ़ाता है व रागद्वेषको घटाता है ।

रागभाव होनेसे अपने भीतर आकुलता होती है चिंता होती है, पदार्थ मिलनेकी घबड़ाहट होती है, मिलनेपर रक्षा करनेकी आकुलता होती है, वियोग होनेपर शोककी आकुलता होती है। सच्चा आत्मीक भाव ढक जाता है । कर्मसिद्धांतानुसार कर्मका बंध होता है । रागसे पीड़ित होकर हम स्वार्थसिद्धिके लिये दूसरोंको बाधा देकर व राग पैदा करके अपना विषय पोषण करते हैं । तीव्र राग होता है तो अन्याय, चोरी, व्यभिचार आदि कर लेते हैं। अति रागवश विषयभोग करनेसे गृहस्थ आप भी रोगी व निर्बल होजाता है व स्त्रीको भी रोगी व निर्बल बना देता है । इसतरह यह राग स्वपर बाधाकारी है। इसीतरह द्वेष या हिंसक भाव भी है, अपनी शांतिका नाश करता है । दूसरोंकी तरफ कटुक वचनप्रहार, वध आदि करनेसे दूसरेको बाधाकारी होता है । अपनेको कर्मका बंध कराता है । इसतरह यह द्वेष भी स्वपर बाधाकारी है, मोक्षमार्गमें

बाधक है, संसार मार्गवर्द्धक है ऐसा विचारना चाहिये। इसके विरुद्ध निष्कामभाव या वीतरागभाव तथा वीतद्वेष या अहिंसकभाव अपने भीतर शांति व सुख उत्पन्न करता है। कोई आकुलता नहीं होती है। दूसरे भी जो संयोगमें आते हैं व वाणीको सुनते हैं उनको भी सुखशांति होती है। वीतराग तथा अहिंसामई भावसे किसी भी प्राणीको कष्ट नहीं दिया जासक्ता, किसीके प्राण नहीं पीड़े जाते। सर्व प्राणी मात्र अभय भावको पाते हैं। रागद्वेषसे जब कर्मोका बन्ध होता है तब वीतरागभावसे कर्मोका क्षय होकर निर्वाण प्राप्त होता है।

ऐसा वारवार विचारकर भेदविज्ञानके अभ्याससे वीतराग या वीतद्वेष भावकी वृद्धि करना चाहिये तब ही ध्यानकी सिद्धि होसकेगी। भेदविज्ञानमें तो विचार होते हैं। चित्त चंचल रहता है। समाधान व शांति नहीं होती है। इसलिये साधक विचार करतेर अध्यात्मरत होजाता है, अपनेमें एकाग्र होजाता है, ध्यानमग्न होजाता है, तब चित्तको परम शांति प्राप्त होती है। जब ध्यानमें चित्त न लगे तब फिर भेदविज्ञानका मनन करते हुए अपनेको कामभाव व द्वेषभाव या हिंसात्मक भावसे रक्षित करे। सूत्रमें ग्वालेका दृष्टांत इसीलिये दिया है कि ग्वाला इस बातकी सावधानी रखता है कि गाए खेतोंको न खावें। जब खेत हरेभरे होते हैं तब गायोंको वारवार जाते हुए रोकता है। जब खेत फसल रहित होते हैं तब गायोंको स्मरण रखता है, उनसे खेतोंकी हानिका भय नहीं रखता है। इसीतरह जब तक कामभाव व द्वेषभाव जागृत होरहे हैं, उद्योग करते भी रागद्वेष होजाते हैं, तबतक साधकको वारवार विचार करके उनसे चित्तको

आगन्त है राग और राग एक है क्योंकि द्वेषका पूर्व भाव, विहिंसा अनेक भाव है। दोनों द्वेषमें आते हैं। रागद्वेष संसारका मूल है, त्यागने योग्य है और वीतरागता तथा वीतद्वेषता ग्रहण करने योग्य है। ऐसा बारबार विचार करनेसे–राग व द्वेष जब उठे तब उनका स्वागत न करनेसे उनको स्वपर बाधाकारी जाननेसे, व वीतरागता व वीतद्वेषताको स्वागत करनेसे, उनको स्वपरको अबाधाकारी जाननेसे इस तरह भेदविज्ञानका बारबार अभ्यास करनेसे रागद्वेष मिटता है और वीतरागभाव बढ़ता है। चित्तमें रागद्वेषका संस्कार रागद्वेषको बढ़ाता है। चित्तमें वीतरागता व वीतद्वेषताका संस्कार वैराग्यको बढ़ाता है व रागद्वेषको घटाता है।

रागभाव होनेसे अपने भीतर आकुलता होती है चिन्ता होती है, पदार्थ मिलनेकी घबड़ाहट होती है, मिलनेपर रक्षा करनेकी आकुलता होती है, वियोग होनेपर शोककी आकुलता होती है। सच्चा आत्मीक भाव ढक जाता है। कर्मसिद्धांतानुसार कर्मका बंध होता है। रागसे पीड़ित होकर हम स्वार्थसिद्धिके लिये दूसरोंको बाधा देकर व राग पैदा करके अपना विषय पोषण करते हैं। तीव्र राग होता है तो अन्याय, चोरी, व्यभिचार आदि कर लेते हैं। अति रागवश विषयभोग करनेसे गृहस्थ आप भी रोगी व निर्बल होजाता है व स्त्रीको भी रोगी व निर्बल बना देता है। इसतरह यह राग स्वपर बाधाकारी है। इसीतरह द्वेष या हिंसक भाव भी है, अपनी शांतिका नाश करता है। दूसरोंकी तरफ कटुक वचनप्रहार, वध आदि करनेसे दूसरेको बाधाकारी होता है। अपनेको कर्मका बन्ध कराता है। इसतरह यह द्वेष भी स्वपर बाधाकारी है, मोक्षमार्गमें

मार्ग है। इससे बचनेके लिये श्रीगुरुने दयालु होकर उपदेश दिया कि विषयराग छोड़ो, निर्वाणके प्रेमी बनो और अष्टांग मार्ग या सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र इस रत्नत्रय मार्गको पालो, सच्चा निर्वाणका श्रद्धान व ज्ञान रक्खो, हितकारी सभारनाशक वचन बोलो, ऐसी ही क्रिया करो, शुद्ध निर्दोष भोजन करो, शुद्ध भावके लिये उद्योग या व्यायाम करो, निर्वाणतत्वका स्मरण करो व निर्वाणभावमें या अध्यात्ममें एकाग्र होकर सम्यक्समाधि भजो। यही अविद्याके नाशका व विद्याके प्रकाशका मार्ग है, यही निर्वाणका उपाय है। आत्मध्यानके लिये प्रमाद रहित होकर एकांत सेवनका उपदेश दिया गया है।

जैन सिद्धांतमें इस कथन सम्बन्धी नीचे लिखे वाक्य उपयोगी हैं—

समयसारजीमें श्री कुंदकुंदाचार्य कहते हैं —

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च ।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियत्तिं कुणदि जीवो ॥७७॥

भावार्थ-ये रागद्वेषादि आस्रव भाव अपवित्र है, निर्वाणसे विपरीत है व संसार—दुःखोंके कारण हैं ऐसा जानकर ज्ञानी जीव इनसे अपनेको अलग करता है। जब भीतर क्रोध, मान, माया लोभ या रागद्वेष उठ खड़े होते हैं अन्यात्मीक पवित्रता बिगड़ जाती है, गन्दापना या अशुचिपना होजाता है। अपना स्वभाव तो शांत है, इन रागद्वेषका स्वभाव अशांत है, इससे ये विपरीत हैं। अपना स्वभाव सुखमई है, रागद्वेष वर्तमानमें भी दुःख देते हैं, वे भविष्यमें अशुभ कर्मबंधका दुःखदाई फल प्रगट करते हैं। ज्ञानीको ऐसा विचारना चाहिये।

हटाना चाहिये । जब वे शांत होजाएं तब तो सावधान होकर निश्चिन्त होकर आत्मध्यान करना चाहिये । स्मरण रखना चाहिये कि फिर वहीं किन्हीं कारणोंसे रागद्वेष न होजावें ।

दूसरा दृष्टांत जलाशय तथा मृगोंका दिया है कि जैसे मृग जलाशयके पास चरते हों कोई शिकारी जाल बिछा दे व जालमें फसनेका मार्ग खोल दें तब वे मृग जालमें फसकर दुःख उठाते हैं, वैसे ही ये संसारी प्राणी कामभोगोंमें फंसे हुए संसारके भारी जलाशयके पास घूम रहे हैं । यदि वे भोगोंकी नन्दी या तृष्णाके वशीभूत हों तो वे मिथ्या मार्गपर चलकर अविद्याके जालमें फस जावेंगे व दुःख उठावेंगे । मिथ्या मार्ग मिथ्या श्रद्धान, मिथ्या ज्ञान व मिथ्या चारित्र है । यही अष्टांगरूप मिथ्यामार्ग है । निर्वाणको ठीक प्रकार न जानना, संसारमें लिप्त रहनेको ही ठीक श्रद्धान करना मिथ्यादृष्टि है । निर्वाणकी तरफ जानेका संकल्प न करके संसारकी तरफ जानेका संकल्प या विचार करना मिथ्या संकल्प या मिथ्या ज्ञान है । शेष छः बातें मिथ्या चारित्रमें गर्भित हैं । मिथ्या कठोर दुःखदाई विषय पोषक वचन बोलना मिथ्या वचन है संसारवर्द्धक कार्य करना मिथ्या कर्मांत है, असत्य व चोरीसे आजीविका करके अशुद्ध, रागवर्धक रागकारक भोजन करना, मिथ्या आजीव है । संसारवर्धक धर्मके व तपके लिये उद्योग करना, मिथ्या व्यायाम है । संसारवर्धक रागादि कषायोंकी व विषय भोगोंकी पुष्टिकी स्मृति रखना मिथ्या स्मृति है । विषयाकांक्षासे व किसी परलोकके लोभसे ध्यान लगाना मिथ्या समाधि है । यह सब अविद्यामें फसनेका

मार्ग है। इससे बचनेके लिये श्रीगुरुने दयालु होकर उपदेश दिया कि विषयराग छोड़ो, निर्वाणके प्रेमी बनो और अष्टांग मार्ग या सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र इस रत्नत्रय मार्गको पालो, सच्चा निर्वाणका श्रद्धान व ज्ञान रक्खो, हितकारी संसारनाशक वचन बोलो, ऐसी ही क्रिया करो, शुद्ध निर्दोष भोजन करो, शुद्ध भावके लिये उद्योग या व्यायाम करो, निर्वाणतत्वका स्मरण करो व निर्वाणभावमें या अध्यात्ममें एकाग्र होकर सम्यक्समाधि भजो। यही अविद्याके नाशका व विद्याके प्रकाशका मार्ग है, यही निर्वाणका उपाय है। आत्मध्यानके लिये प्रमाद रहित होकर एकांत सेवनका उपदेश दिया गया है।

जैन सिद्धांतमें इस कथन सम्बन्धी नीचे लिखे वाक्य उपयोगी है—

समयसारजीमें श्री कुंदकुंदाचार्य कहते हैं —

णादूण आसवाणं असुचित्तं च विवरीयभावं च।
दुक्खस्स कारणं ति य तदो णियतिं कुणदि जीवो ॥७७॥

भावार्थ-ये रागद्वेषादि आस्रव भाव अपवित्र हैं, निर्वाणसे विपरीत हैं व संसार—दुःखोंके कारण हैं ऐसा जानकर ज्ञानी जीव इनसे अपनेको अलग करता है। जब भीतर क्रोध, मान, माया लोभ या रागद्वेष उठ खड़े होते हैं अध्यात्मीक पवित्रता बिगड़ जाती है, गन्दापना या अशुचिपना होजाता है। अपना स्वभाव तो शांत है, इन रागद्वेषका स्वभाव अशांत है, इससे ये विपरीत हैं। अपना स्वभाव सुखमई है, रागद्वेष वर्तमानमें भी दुःख देते हैं, ये भविष्यमें अशुभ कर्मबंधका दुःखदाई फल प्रगट करते हैं। ज्ञानीको ऐसा विचारना चाहिये।

श्री पूज्यपादस्वामी इष्टोपदेशमें कहते हैं—

रागद्वेषद्वयीदीर्घनेत्राकर्षणकर्मणा ।
अज्ञानात्सुचिरं जीवः संसाराब्धौ भ्रमत्यसौ ॥ ११ ॥

भावार्थ—यह जीव चिरकालसे अज्ञानके कारण रागद्वेषमय कर्मोंका खींचता हुआ इस संसारसमुद्रमें भ्रमण कर रहा है। उक्त आचार्य समाधिशतकमें कहते हैं—

रागद्वेषादिकल्लोलैरलोलं यन्मनोजलम् ।
स पश्यत्यात्मनस्तत्त्वं स तत्त्वं नेतरो जनः ॥ ३५ ॥

भावार्थ—जिनका चित्त रागद्वेषादिक लहरोंसे क्षोभित नहीं है वही अपने शुद्ध स्वरूपको देखता है, परन्तु रागीद्वेषी जन नहीं देख सक्ता है। सार समुच्चयमें कहा है—

रागद्वेषमयो जीवः कामक्रोधवशे यतः ।
लोभमोहमदाविष्टः संसारे संसरत्यसौ ॥ २४ ॥
कषायातपतप्तानां विषयामयमोहिनाम् ।
संयोगायोगखिन्नानां सम्यक्त्वं परमं हितम् ॥ ३८ ॥

भावार्थ—जो जीव रागद्वेषमई है, काम, क्रोधके वशमें है, लोभ, मोह व मदसे घिरा हुआ है, वह संसारमें भ्रमण करता ही है। क्रोधादि कषायोंके आतापसे जो तप्त है व जो इन्द्रिय विषयरूपी रोगसे या विषसे मूर्छित है व जो अनिष्ट संयोग व इष्ट वियोगसे पीड़ित है उसके लिये सम्यग्दर्शन परम हितकारी है।

आत्मानुशासनमें कहा है—

मुहुः प्रसार्य सज्ज्ञानं पश्यन् भावान् यथास्थितान् ।
प्रीत्यप्रीती निराकृत्य ध्यायेदध्यात्मविन्मुनिः ॥ १७७ ॥

(४) यदि उस भिक्षुको उन वितर्कोंके मनमें न लानेपर भी रागद्वेष मोह सम्बन्धी बुरे भाव उत्पन्न होते ही हैं तो उस भिक्षुको उन वितर्कोंके संस्कारका संस्थान (कारण) मनमें करना चाहिये। ऐसा करनेसे वे वितर्क नाश होते हैं जैसे भिक्षुओ! कोई पुरुष शीघ्र आजाता है उसको ऐसा हो क्यों मैं शीघ्र जाता हूं क्यों न धीरे२ चलूं, वह धीरे२ चले, फिर ऐसा हो क्यों न मैं बैठ जाऊँ, फिर वह बैठ जावे, फिर ऐसा हो क्यों न मैं लेट जाऊँ, फिर वह लेट जावे, वह पुरुष मोटे ईर्यापथसे हटकर सूक्ष्म ईर्यापथको स्वीकार करे। इसी तरह भिक्षुको उचित है कि वह उन वितर्कोंके संस्कारके संस्थानको मनमें विचारे।

(५) यदि उस भिक्षुको उन वितर्कोंके वितर्क संस्कार संस्थानको मनमें करनेसे भी रागद्वेष मोह सम्बन्धी अकुशल वितर्क उत्पन्न होते ही हैं तो उस दांतोंको दांतोंपर रखकर, जिह्वाको तालूसे चिपटा कर, चित्तसे चित्तका निग्रह करना चाहिये, संतापन व निष्पीडन करना चाहिये। ऐसा करनेसे वे रागद्वेष मोहभाव नाश होते हैं। जैसे बलवान पुरुष दुर्बलको सिरसे, कंधेसे पकड़कर निग्रहीत करे, निपीड़ित करे, संतापित करे।

इस तरह पांच निमित्तोंके द्वारा भिक्षु वितर्कके नाना मार्गोंको वश करनेवाला कहा जाता है। वह जिस वितर्कको चाहेगा उसका वितर्क करेगा। जिस वितर्कको नहीं चाहेगा उस वितर्कको नहीं करेगा। ऐसे भिक्षुने तृष्णारूपी बंधनको हटा दिया। अच्छी तरह जानकर, साक्षात् कर, दुःखका अंत कर दिया।

नोट-इस सूत्रमें रागद्वेष मोहके दूर करनेका विधान है। वास्तवमें निमित्तोंके आधीन भाव होते हैं, भावोंकी सम्हालके लिये निमित्तोंको बचाना चाहिये। यहा पाच तरहसे निमित्तोंको टालनेका उपदेश दिया है। (१) जब बुरे निमित्त हों जिनसे रागद्वेष मोह होता है तब उनको छोडकर वैराग्यके निमित्त मिलावे जैसे स्त्री, नपुंसक, बालक, श्रृंगार, कुटुम्बादिका निमित्त छोड़कर एकान्त सेवन वन निवास शास्त्रस्वाध्याय, साधुसंगतिका निमित्त मिलावे तब वे बुरे भाव नाश होजावेंगे।

(२) बुरे निमित्तोंके छोड़नेपर भी अच्छे निमित्त मिलाने पर भी यदि रागद्वेष मोह पैदा हों तो उनके फलको विचारे कि इनसे मेरेको यहा भी कष्ट होगा, भविष्यमें भी कष्ट होगा, मैं निर्वाण मार्गसे दूर चला जाउंगा। ये भाव अशुद्ध हैं, त्यागने योग्य हैं। ऐसा बार बार विचारनेसे वे रागादि भाव दूर होजावेंगे।

(३) ऐसा करनेपर भी रागद्वेषादि भाव पैदा हों तो उनको स्मरण नहीं करना चाहिये। जैसे ही वे मनमें आवें मनको हटा लेना चाहिये। मनको तत्व विचारादिमें लगा देना चाहिये।

(४) ऐसा करनेपर भी यदि रागद्वेष, मोह पैदा हो तो उनके संस्कारक कारणोंको विचार करे। इसतरह धीरे२ वे रागादि दूर होजायँगे।

(५) ऐसा होते हुए भी यदि रागादि भाव पैदा हों तो बलात्कार चित्तको हटाकर तत्वविचारमें लगानेका अभ्यास करना चाहिये। पुन पुन उत्तम भावोंके संस्कारसे बुरे भावोंके संस्कार मिट जाते हैं।

जैन सिद्धातानुसार भी यही बात है कि राग, द्वेष, मोहको त्यागे विना वीतरागता सहित ध्यान नहीं होसकेगा। इसलिये इन भावोंको दूर करनेका ऊपर लिखित प्रयत्न करे। दूसरा प्रयत्न आत्म ध्यानका भी जरूरी है। जितना२ आत्मध्यान द्वारा भाव शुद्ध होगा उतना२ उन कषायरूपी कर्मोंकी शक्ति क्षीण होगी, जो भावी कालमें अपने विपाकपर रागादि भावोंके पैदा करते हैं इस तरह ध्यानके बलसे हम उस मोहकर्मको जितना२ क्षीण करेंगे उतना२ रागद्वेषादि भाव नहीं होगा।

वास्तवमें सम्यग्दर्शन ही रागादि दूर करनेका मूल उपाय है। जिसने संसारको असार व निर्वाणको सार समझ लिया वह अवश्य रागद्वेष मोहके निमित्तोंसे श्रद्धापूर्वक बचेगा और वैराग्यके निमित्तोंमें वर्तन करेगा। धैर्यके साथ उद्योग करनेसे ही रागादि भावोंपर विजय प्राप्त होगी।

जैन सिद्धातके कुछ उपयोगी वाक्य ये हैं—

समाधिशतकमें पूज्यपादस्वामी कहते हैं—

अविद्याभ्यासससंस्कारैरवशं क्षिप्यते मनः।
तदेव ज्ञानसंस्कारैः स्वतस्तत्त्वेऽवतिष्ठते ॥ ३७ ॥

भावार्थ—अविद्याके अभ्यासके सस्कारसे मन लाचार होकर रागी, द्वेषी, मोही होजाता है, परन्तु यदि ज्ञानका संस्कार डाला जावे, सत्य ज्ञानके द्वारा विचारा जावे तो यह मन स्वयं ही आत्माके सच्चे स्वरूपमें ठहर जाता है।

यदा मोहात्प्रजायेते रागद्वेषौ तपस्विनः।
तदैव भावयेत्स्वस्थमात्मानं शाम्यतः क्षणात् ॥ ३९ ॥

भावार्थ—जब किसी तत्त्वीके मनमें मोहके कारण रागद्वेष पैदा होजावे उसी समय उसे उचित है कि वह शान्तभावसे अपने स्वरूपमें ठहरकर निर्वाणस्वरूप अपने आत्माकी भावना करे। राग-द्वेष लौकिक संसर्गसे होते हैं अतएव उसको छोड़े।

जनेभ्यो वाक् ततः स्पन्दो मनसश्चित्तविभ्रमाः।
भवन्ति तस्मात्संसर्गं जनैर्योगी ततस्त्यजेत् ॥ ७२ ॥

भावार्थ—जगतके लोगोंसे वार्तालाप करनेसे मनकी चंचलता होती है, तब चित्तमें राग, द्वेष मोह विकार पैदा होजाते हैं। इस लिये योगीको उचित है कि मानवोंके संसर्गको छोड़े।

स्वामी पूज्यपाद इष्टोपदेशमें कहते हैं—

अभवच्चित्तविक्षेप एकान्ते तत्त्वसंस्थितिः।
अभ्यस्येदभियोगेन योगी तत्त्वं निजात्मनः ॥ ३६ ॥

भावार्थ—तत्वोंको भले प्रकार जाननेवाला योगी ऐसे एकान्तमें जावे जहां चित्तको कोई क्षोभक या रागद्वेष पैदा करनेके निमित्त न हो और वहां आसन लगाकर तत्वस्वरूपमें तिष्ठे, आलस्य निद्राको जीत और अपने निर्वाणस्वरूप आत्माका अभ्यास करे।

संसारमें अकुशल कर्म या पाप पांच हैं—हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील, परिग्रह इनसे बचनेके लिये पांच पांच भावनाएं जैन सिद्धांतमें बताई हैं। जो उनपर ध्यान रखता है वह उन पांचों पापोंसे बच सक्ता है।

श्री उमास्वामी महाराज तत्वार्थसूत्रमें कहते हैं—

(१) हिंसासे बचनेकी पांच भावनाएँ—

वाङ्मनोगुप्तीर्यादाननिक्षेपणसमित्यालोकितपानभोजनानि पञ्च ॥४-७॥

(१) वचनगुप्ति-वचनकी सम्हाल, पर पीड़ाकारी वचन न कहा जावे, (२) मनोगुप्ति—मनमें हिंसाकारक भाव न लाऊं (३) ईर्यासमिति-चार हाथ जमीन आगे देखकर शुद्ध भूमिमें दिनमें चलूं (४) आदाननिक्षेपण समिति-देखकर वस्तुको उठाऊं व रखूं (५) आलोकित पानभोजन-देखकर भोजन व पान करूँ।

(२) असत्यमें वचनेकी पांच भावनाएं—

क्रोधलोभभीरुत्वहास्यप्रत्याख्यानान्यनुवीचिभाषणं च पञ्च ॥ ७-५॥

(१) क्रोध प्रत्याख्यान क्रोधसे बचूं क्योंकि यह असत्यका कारण है।

(२) लोभ प्रत्याख्यान लोभसे बचूं क्योंकि यह असत्यका कारण है।

(३) भीरुत्व प्रत्याख्यान—भयसे बचूं क्योंकि यह असत्यका कारण है।

(४) हास्य प्रत्याख्यान-हंसीसे बचूं क्योंकि यह असत्यका कारण है।

(५) अनुवीची भाषण शास्त्रके अनुसार वचन कहूं।

(३) चोरीमें बचनेकी पांच भावनाएं—

शून्यागारविमोचितावासपरोपरोधाकरणभैक्ष्यशुद्धिसधर्माविसंवादाः पञ्च ॥ ६-७ ॥

(१) शून्यागार-सूने खाली, स मान रहित, वन, पर्वत, मैदानादिमें ठहरना। (२) विमोचितावास—छोड़े हुए उजड हुए मकानमें ठहरना। (३ परोपरोधाकरण—जहां आप हो कोई आवे तो मना न करे या जहां कोई रोके वहां न ठहरे। (४) भैक्ष्यशुद्धि—

भोजन शुद्ध व दोष रहित लेवे। (५) सधर्माविसवाद-स्वधर्मी जैनोंसे झगड़ा न करें, इससे सत्य धर्मका लोप होता है।

(४) कुशीलसे बचनेकी पाच भावनाए—

स्त्रीरागकथाश्रवणतन्मनोहराङ्गनिरीक्षणपूर्वरतानुस्मरणवृष्येष्टरसस्व-
शरीरसंस्कारत्यागाः पञ्च ॥ ७-७ ॥

(१) स्त्रीरागकथाश्रवण त्याग-स्त्रियोंमें राग बढानेवाली कथाके सुननेका त्याग, (२) तन्मनोहरागनिरीक्षण त्याग-स्त्रियोंके मनोहर अङ्गोंको राग सहित देखनेका त्याग, (३) पूर्वरतानुस्मरण त्याग-पहले भोगोंके स्मरणका त्याग, (४) वृष्येष्टरस त्याग-कामोद्दीपक इष्ट रस खानेका त्याग, (५) स्वशरीरसस्कार त्याग-अपने शरीरके शृगार करनेका त्याग।

(५) परिग्रहसे बचनेकी पाच भावनाए-ममता त्यागकी भावनाए—

" मनोज्ञामनोज्ञविषयरागद्वेषवर्जनानि पच। "

अच्छे या बुरे पाचों इन्द्रियोंके पदार्थोंमें राग व द्वेष नहीं करना। जो कुछ खानपान स्थान व सयोग प्राप्त हो उनमें सतोष रखना। इन्द्रियोंकी तृष्णाको मिटानेका यही उपाय है।

सार समुच्चयमे कहा है—

ममत्वाज्जायते लोभो लोभाद्रागश्च जायते।
रागाच्च जायते द्वेषो द्वेषाद् दुःखपरपरा ॥ २३३ ॥
निर्ममत्व पर तत्व निर्ममत्व पर सुख।
निर्ममत्व पर बीज मोक्षस्य कथित बुधै ॥ २३४ ॥

स्ताओ प्राप्त होगा। ऐसे ही भिक्षुओ! तुम भी बुराईको छोड़ो, कुशल धर्मोंमें लगो, इस प्रकार धर्म विनयमें उन्नति करोगे।

भिक्षुओं! भूतकालमें इसी श्रावस्ती नगरीमें वैदेहिका नामकी गृहपत्नी थी। उसकी कीर्ति फैली हुई थी कि वैदेहिका सुरत है, निष्कलह है और उपशात है। वैदेहिकाके पास काली नामकी दक्ष, आलस्यरहित, अच्छे प्रकार काम करनेवाली दासी थी। एक दफे काली दासीके मनमें हुआ कि मेरी स्वामिनीकी यह मगल कीर्ति फैली हुई है कि यह उपशात है। क्या मेरी आर्या भीतरमें क्रोधको विद्यमान रहते उसे प्रगट नहीं करती या अविद्यमान रहती? क्यों न मैं आर्याकी परीक्षा करू?

एक दफे काली दासी दिन चढे उठी तब आर्याने कुपित हो, असतुष्ट हो भौंहें टेढी करली और कहा—क्योंरे दिन चढ़े उठती है! तब काली दासीको यह हुआ कि मेरी आर्याके भीतर क्रोध विद्यमान है। क्यों न और भी परीक्षा करू। काली और दिन चढ़ाकर उठी तब वैदेहिने कुपित हो कटु वचन कहा, तब कालीको यह हुआ कि मेरी आर्याके भीतर क्रोध है। क्यों न मैं और भी परीक्षा करू। तब वह तीसरी दफे और भी दिन चढ़े उठी, तब वैदेहिकाने कुपित हो किवाड़की बिलाई उसके मारदी, शिर फूट गया, तब काली दासीने शिरके लोहू बहाते पड़ोसियोंसे कहा कि देखो, इस उपशाताके कामको। तब वैदेहिकाकी अपकीर्ति फैली कि यह अनुपशात है।

इसी प्रकार भिक्षुओं! एक भिक्षु तब ही तक सुरत, निष्कलह उपशात है, जबतक वह अप्रिय शब्दपथमें नहीं पड़ता। जब उसपर

अप्रिय शब्दपथ पड़ता है तब भी तो उस मुरत, निष्कम्ट और उपशात रहना चाहिये। मैं उस भिक्षुको सुवचनहीं कहता जो भिक्षा आदिके कारण सुवच होता है मृदुभाषी होता है। ऐसा भिक्षु भिक्षादिक न मिलनेपर सुवच नहीं रहता। जो भिक्षु केवल धर्मका सत्कार करते व पूजा करते सुवच होता है, उसे मैं सुवच कहता हूं। इसलिये भिक्षुओं! तुम्हें इस प्रकार सीखना चाहिये "केवल धर्मका सत्कार करते पूजा करते सुवच होऊंगा, मृदु भाषी होऊंगा।"

भिक्षुओ! ये पाच वचनपथ (बात कहनेके मार्ग) हैं जिनसे कि दूसरे तुमसे बात करते बोलते हैं। (१) कालसे या अकालसे, (२) भूत (यथार्थ) से या अभूतसे, (३) स्नेहसे या परुषता (कटुता) से, (४) सार्थकतासे या निरर्थकतासे, (५) मैत्री पूर्ण चित्तसे या द्वेषपूर्ण चित्तसे। भिक्षुओ! चाहे दूसरे कालसे बात करें या अकालसे, भूतसे अभूतसे, या स्नेहसे या द्वेषसे, सार्थक या निरर्थक, मैत्री पूर्ण चित्तसे या द्वेषपूर्ण चित्तसे तुम्हें इस प्रकार सीखना चाहिये—"मैं अपने चित्तको विकारयुक्त न होने दूगा और न दुर्वचन निकालूगा, मैत्रीभावसे हितानुकम्पी होकर विहरूगा न कि द्वेषपूर्ण चित्तसे। उस विरोधी व्यक्तिको भी मैत्रीभाव चित्तसे अप्लावित कर विहरूगा। उसको लक्ष्य करके सारे लोकको विपुल विशाल, अप्रमाण मैत्रीपूर्ण चित्तसे अप्लावित कर अवैरता–अव्यापादिता (द्रोहरहितता) से परिप्लावित (भिगोकर) विहरूगा।" इस प्रकार भिक्षुओ! तुम्हें सीखना चाहिये।

(१) जैसे कोई पुरुष हाथमें कुदाल लेकर आए और वह ऐसा कहे कि मैं इस महापृथ्वीको अपृथ्वी करूंगा, वह जहानहां खोद, मिट्टी फेंक और माने कि यह अपृथ्वी हुई तो क्या यह महा पृथ्वीको अपृथ्वी कर सकेगा? नहीं, क्यों नहीं कर सकेगा? महा पृथ्वी गंभीर है, अप्रमेय है। वह अपृथ्वी (पृथ्वीका अभाव) नहीं की जासकी। वह पुरुष नाहकमें हैरानी और परेशानीका भागी होगा। इसी प्रकार पृथ्वीके समान चित्त करके तुम्हें क्षमावान होना चाहिये'

(२) और जैसे भिक्षुओ! कोई पुरुष लाख, हल्दी, नील या मजीठ लेकर आए और यह कहे कि मैं आकाशमें रूप (चित्र) लिखूंगा तो क्या वह आकाशमें चित्र लिख सकेगा? नहीं, क्योंकि आकाश अरूपी है अदर्शन है वहां रूपका लिखना सुकर नहीं। वह पुरुष नाहकमें हैरानी और परेशानीका भागी होगा। इसी तरह पांच वचनपथ होनेपर भी तुम्हें सर्वलोकको आकाश समान चित्तसे वैररहित देखकर रहना चाहिये।

(३) और जैसे भिक्षुओ! कोई पुरुष जलती तृणकी उल्काको लेकर आए और यह कहे कि मैं इस तृण उल्कासे गंगानदीको सतप्त करूंगा परितप्त करूंगा तो क्या यह जलती तृण उल्कासे गंगा नदीको सतप्त कर सकेगा? नहीं क्योंकि गंगानदी गंभीर है, अप्रमेय है। वह जलती तृण उल्कासे नहीं सतप्त की जासकी। वह पुरुष नाहकमें हैरानी उठाएगा। इसीप्रकार पांच वचनपथके होने हुए तुम्हें यह सीखना चाहिये कि मैं सारे लोकको गंगा समान चित्तसे अप्रमाण अवैरभावसे परिप्लावित कर विहरूंगा।

(४) और जैसे एक मर्दित, मृदु, खर्खराहट रहित बिल्लीके चमड़ेकी खाल हो, तब कोई पुरुष काठ या ठीकरा लेकर आए और बोले कि मैं इस काठसे बिल्लीकी खालको खुर्खुरी बनाऊंगा तो क्या वह कर सकेगा? नहीं, क्योंकि बिल्लीकी खाल मर्दित है, मृदु है, वह काठसे या ठीकरेसे खुर्खुरी नहीं की जासक्ती। इसी तरह पांचों वचनपथके होनेपर तुम्हें सीखना चाहिये कि मैं सर्वलोकको बिल्लीकी खालके समान चित्तसे वैरभावरहित भावसे भरकर विहरूंगा।

(५) भिक्षुओं! चोर लुटेरे चाहे दोनों ओर मुठिया लगे, आरेसे अग अगको चीरे तौभी जो भिक्षु मनको द्वेषयुक्त करे तो वह मेरा शासनकर (उपदेशानुसार चलनेवाला) नहीं है। वहांपर भी भिक्षुओं! ऐसा सीखना चाहिये कि मैं अपने चित्तको विकारयुक्त न होने दूंगा न दुर्वचन निकालूंगा। मैत्रीभावसे हितानुकम्पी होकर विहरूंगा, न द्वेषपूर्ण चित्तसे। उस विरोधीको भी मैत्रीपूर्ण चित्तसे आप्लावित कर विहरूंगा। उसको लक्ष्य करके सारे लोकको विपुल, विशाल, अप्रमाण, मैत्रीपूर्ण चित्तसे भरकर अवैरता व अव्यापादितासे भरकर विहरूंगा।

भिक्षुओं! इस ककचोपम (आरेके दृष्टांतवाले) उपदेशको निरंतर मनमें करो। यह तुम्हें चिरकालतक हित, सुखके लिये होगा।

नोट-इस सूत्रमें नीचे प्रकार सुन्दर शिक्षाएं हैं—

(१) भिक्षुको दिन रातमें केवल दिनमें एकवार भोजन करना चाहिये, यही शिक्षा गौतमबुद्धने दी थी व आप भी एकासन करते थे। योगीको, त्यागीको, ध्यानके अभ्यासीको दिनमें एक ही

दफे मात्रा सहित अल्पभोजन करके काल बिताना चाहिये। स्वास्थ्य लिये व प्रमाद त्यागके लिये व शांतिपूर्ण जीवनके लिये यह बात आवश्यक है। जैन सिद्धांतमें भी साधुको एकासन करनेका उपदेश है। साधुके २८ मूल गुणोंमें यह एकासन या एकभुक्त मूलगुण है–परम्य कर्तव्य है।

(२) भिक्षुओंको गुरुकी आज्ञानुसार बड़े प्रेमसे चलना चाहिये। जैसा इस सूत्रमें कहा है कि मैं भिक्षुओंको केवल उनका कर्तव्य स्मरण करा देता था, वे सहर्ष उनपर चलते थे। इसपर दृष्टांत साम्य घोड़े जुते रथका दिया है। हांकनेवालेके संकेत मात्रसे जिधर वह चाहे घोड़े चलते हैं, हांकनेवालेको प्रसन्नता होती है, घोड़ोंको भी कोई कष्ट नहीं होता है। इसी तरह गुरु व शिष्यका व्यवहार होना चाहिये।

(३) भिक्षुओंको सदा इस बातमें सावधान रहना चाहिये कि वह अपने भीतरसे बुराइयोंको हटावें, रागद्वेष मोहादि भावोंको दूर करे तथा निर्वाण साधक हितकारी धर्मोंको ग्रहण करें। इसपर दृष्टांत सालके बनका दिया है कि चतुर माली रसको सुखानेवाली डालियोंको दूर करता है और रसदार शाखाओंकी रक्षा करता है तब वह वनरूप फलता है। इसीतरह भिक्षुको प्रमादरहित होकर अपनी उन्नति करनी चाहिये।

(४) क्रोधादि कषायोंको भीतरसे दूर करना चाहिये। तथा निर्बल पर क्रोध न करना चाहिये, क्षमाभाव रखना चाहिये। निमित्त पड़ने पर भी क्रोध नहीं करना चाहिये। यहां वैदेहिका

गृहिणी और काली दासीका दृष्टान्त दिया है। वह गृहिणी ऊपरसे शांत थी, भीतरसे क्रोधयुक्त थी। जो दासी विनयी व स्वामिनीकी आज्ञानुसार सममाव करनेवाली थी वह यदि कुछ देरसे उठी हो तो स्वामिनीको शांत भावसे कारण पूछना चाहिये। यदि वह कारण पूछती क्रोध न करती तो उसकी बातसे उसको संतोष होजाता। वह कह देती कि शरीर अस्वस्थ होनेसे देरसे उठी हूं। इस दृष्टांतको देकर भिक्षुओंको उपदेश दिया गया है कि स्वार्थसिद्धिके लिये ही शांत भाव न रक्खो किन्तु धर्मलाभके लिये शांतभाव रक्खो। क्रोधभाव वैरी है ऐसा जानकर कभी क्रोध न करो तथा साधुको कष्ट पड़ने पर भी, इच्छित वस्तु न मिलने पर भी मृदुभाषी कोमल परिणामी रहना चाहिये।

(५) उत्तम क्षमा या भाव अहिंसा या विश्वप्रेम रखनेकी कड़ी शिक्षा साधुओंको दी गई है कि उनको किसी भी कारण मिलने पर दुर्वचन सुननेपर या शरीरके टुकड़े किये जाने पर भी मनमें विकारभाव न लाना चाहिये, द्वेष नहीं करना चाहिये, उपसर्गकर्तापर भी मैत्रीभाव रखना चाहिये।

पांच तरहसे प्रवचन कहा जाता है-(१) समयानुसार कहना, (२) सत्य कहना, (३) प्रेमयुक्त कहना (४) सार्थक कहना (५) मैत्रीपूर्ण चित्तसे कहना। पांच तरहसे दुर्वचन कहा जाता है-(१) विना अवसर कहना, (२) असत्य कहना, (३) कठोर वचन कहना, (४) निरर्थक कहना, (५) द्वेषपूर्ण चित्तसे कहना। साधुका कर्तव्य है कि चाहे कोई सुवचन कहे या कोई दुर्वचन कहे दोनों दशाओंमें सम

भाव रखना चाहिये। उसे मैत्रीभाव अनुकम्पा भाव ही रखना चाहिये। उसकी अज्ञान दशापर दयाभाव लाकर क्रोध नहीं करना चाहिये। क्षमा व मैत्रीभाव रखनेके लिये साधुको नीचे लिखे दृष्टांत दिये हैं-

(१) साधुको पृथ्वीके समान क्षमाशील होना चाहिये। कोई दुष्ट सर्वथा नाश करना चाहे तौभी वह नहीं कर सक्ता, पृथ्वीका अभाव नहीं किया जासक्ता। वह परम गंभीर है, सहनशील है। वह सदा बनी रहती है। इसी तरह भले ही कोई शरीरको नाश करे, साधुको भीतरसे क्षमावान व गंभीर रहना चाहिये तब उसका नाश नहीं होगा, वह निर्वाणमार्गी बना रहेगा, (२) साधुको आकाशके समान निर्लेप निर्मल व निर्विकार रहना चाहिये। जैसे आकाशमें चित्र नहीं लिखे जासकते वैसे ही निर्मल चित्तको विकारी व क्रोध युक्त नहीं बनाया जासक्ता।

(३) साधुको गंगा नदीके समान शांत, गंभीर व निर्मल रहना चाहिये। कोई गंगाको मसालसे जलाना चाहे तो असंभव है, मसाल स्वयं बुझ जायगी। इसीतरह साधुको कोई कितना भी कष्ट देकर क्रोधी या विकारी बनाना चाहे परन्तु साधुको गंगाजलके समान शांत व पवित्र रहना चाहिये।

(४) साधुको बिल्लीकी चिकनी खालके समान कोमल चित्त रहना चाहिये। कोई उस खालको काष्टके टुकड़ेसे खुरखुरा करना चाहे तो वह नहीं कर सक्ता, इसीतरह कोई कितना कारण मिलावे साधुको समता मृदुता, सरलता, शुचिता, क्षमाभाव नहीं त्यागना चाहिये।

(५) साधुको यदि लुटेरे आरेसे चीर भी डालें तो भी मैत्री भाव या क्षमाभावको नहीं त्यागना चाहिये।

इस सूत्रमें बहुत ही बढ़िया उत्तम क्षमा व अहिंसा धर्मका उपदेश है। जैन सिद्धांतमें भी ऐसा ही कथन है।

कुछ उपयोगी वाक्य नीचे दिये जाते हैं—

श्री वट्टकेरस्वामी मूळाचार अनगारभावनामें कहते हैं—

अक्खोमक्खणमेत्त भुजंति मुणी पाणधारणणिमित्त।
पाण धम्मणिमित्त धम्म पि चरंति मोक्खट्ठं ॥ ४९ ॥

भावार्थ—जैसे गाड़ीके पहियेमें तैल देकर रक्षा की जाती है वैसे मुनिराज प्राणोंकी रक्षानिमित्त भोजन करते हैं। प्राणोंको धर्मके निमित्त रखते हैं। धर्मको मोक्षके लिये आचरण करते हैं।

श्री कुदकुदस्वामी प्रवचनसारमें कहते हैं—

समसत्तुबन्धुवग्गो समसुहदुक्खो पसमणिंदसमो।
समलोट्ठुकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो ॥ ६२–३ ॥

भावार्थ—जो शत्रु व मित्र वर्गपर समभाव रखता है सुख व दुःख पड़ने पर समभावी रहता है, प्रशंसा व निंदा होनेपर निर्विकारी रहता है कंकड़ व सुवर्णको समान देखता है, जीने या मरनेमें हर्ष विषाद नहीं करता है वही श्रमण या साधु है।

श्री वट्टकेरस्वामी मूळाचार अनगार भावनामें कहते हैं—

वसुधम्मि वि विहरंता पीडं ण करेंति कस्सइ कयाइ।
जीवेसु दयावण्णा माया जह पुत्तभंडेसु ॥ ३२ ॥

भावार्थ—साधुजन पृथ्वीमें विहार करते हुए किसीको भी कभी पीड़ा नहीं देते हैं। वे सर्व जीवोंपर ऐसी दया रखते हैं जैसे माताका प्रेम पुत्र पुत्री आदि पर होता है।

श्री गुणभद्राचार्य आत्मानुशासनमें कहते हैं —

अधीत्य सकलं श्रुतं चिरमुपास्य घोरं तपो।
यदीच्छसि फलं तयोरिह हि लाभपूजादिकम् ॥
छिनत्सि सुतपस्तरोः प्रसवमेव शून्याशयः।
कथं समुपलप्स्यसे सुरसमस्य पक्वं फलम् ॥ १८९ ॥

भावार्थ सर्व शास्त्रोंको पढ़कर तथा दीर्घ कालतक घोर तप साधन कर यदि तू शास्त्रज्ञान और तपका फल इस लोकमें लाभ पूजा, सत्कार आदि चाहता है तो तू विवेकशून्य होकर सुंदर तपरूपी वृक्षके फूलको ही तोड डालता है। तब तू उस वृक्षके मोक्षरूपी पक्व फलको कैसे पा सकेगा? तपका फल निर्वाण है, यही भावना करनी योग्य है। श्री शुभचंद्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

अभयं यच्छ भूतेषु कुरु मैत्रीमनिन्दिताम्।
पश्यात्मसदृशं विश्वं जीवलोकं चराचरम् ॥ ५२-८ ॥

भावार्थ—सर्व प्राणियोंको अभयदान दो, सर्वसे प्रशंसनीय मैत्रीभाव करो, जगतके सर्व स्थावर व त्रस प्राणियोंको अपने समान देखो। श्री सारसमुच्चयमें कहते हैं—

मैत्र्यङ्गना सदोपास्या हृदयानन्दकारिणी।
या विधत्ते कृतोपास्तिश्चित्तं विद्वेषवर्जितं ॥ २६० ॥

भावार्थ—मनको आनन्द देनेवाली मैत्रीरूपी स्त्रीका सदा सेवन करना चाहिये। उसकी उपासना करनेसे चित्तसे द्वेष निकल जाता है।

सर्वसत्वे दया मैत्री यः करोति सुमानसः।
जयत्यसावरीन् सर्वान् बाह्याभ्यन्तरसंस्थितान् ॥ २६१ ॥

भावार्थ—जो कोई मनुष्य सर्व प्राणीमात्रपर दया तथा मैत्रीभाव करता है वह बाहरी व भीतरी रहनेवाले सर्व शत्रुओंको जीत लेता है।

मनस्याल्हादिनी सेव्या सर्वकालसुखप्रदा।
उपसेव्या त्वया भद्र! क्षमा नाम कुलाङ्गना ॥ २६९ ॥

भावार्थ—मनको प्रसन्न रखनेवाली व सर्वकाल सुख देनेवाली ऐसी क्षमा नाम कुलवधूका हे भद्र! सदा ही तुझे सेवन करना चाहिये।

आत्मानुशासनमें कहा है—

हृदयसरसि यावन्निर्मलेऽप्यत्यगाधे।
वसति खलु कषायग्राहचक्रं समन्तात् ॥
श्रयति गुणगणोऽयं तन्न तावद्विशङ्कं।
समदमयमशेषैस्तान् विजेतुं यतस्व ॥ २१३ ॥

भावार्थ—हे साधु! तेरे मनरूपी गंभीर निर्मल सरोवरके भीतर जबतक सर्व तरफ क्रोधादि कषायरूपी मगरमच्छ बस रहे हैं तबतक गुणसमूह निशंक होकर तेरे भीतर आश्रय नहीं कर सके। इसलिये तू यत्न करके शांत भाव, इन्द्रियदमन व यम नियम आदिके द्वारा उनको जीत।

वैराग्यमणिमालामें श्रीचंद्र कहते हैं—

आतमें वचनं कुरु सारं चेत्त्वं वांछसि संसृतेपारं।
मोहं त्यक्त्वा कामं क्रोधं त्यज भज त्वं संयमवरबोधं ॥ ६ ॥

भावार्थ—हे भाई! यदि तू संसार समुद्रके पार जाना चाहता है तो मेरा यह सार वचन मान कि तू मोहको त्याग, कामभाव व क्रोधको छोड़ और तू संयम सहित उत्तम ज्ञानका भजन कर।

कन्धेपर रखकर जहां इच्छा हो वहां जाऊं तो क्या ऐसा करनेवाला उस बेड़ेमें कर्तव्य पालनेवाला होगा ? नहीं । किंतु वह उस बेड़ेसे दुःख उठानेवाला होगा । परन्तु यदि पारगत पुरुषको ऐसा हो— क्यों न मैं इस बेड़ेको स्थलपर रखकर या पानीमें डालकर जहां इच्छा हो वहां जाऊं तो भिक्षुओ ! ऐसा करनेवाला पुरुष उस बेड़ेके सम्बन्धमें कर्तव्य पालनेवाला होगा । ऐसे ही भिक्षुओ ! मैंने बेड़ेकी भांति विस्तरणके लिये तुम्हें धर्मोंको उपदेशा है, पकड़ रखनेके लिये नहीं । धर्मको बेड़ेके समान (कुल्लूपम) उपदेश जानकर तुम धर्मको भी छोड़ दो अधर्मकी तो बात ही क्या ?

भिक्षुओ ! ये छः दृष्टि स्थान हैं । आर्यधर्मसे अज्ञानी पुरुष रूप (Matter) को यह मेरा है' 'यह मैं हूं' 'यह मेरा आत्मा है' इस प्रकार समझता है इसी तरह (२) वेदनाको, (३) संज्ञाको (४) संस्कारको, (५) विज्ञानको, (६) जो कुछ भी यह देखा, सुना यादमें आया ज्ञात, प्राप्त, पर्योषित (खोजा), और मन द्वारा अनुविचारित (पदर्थ) है उसे भी यह मेरा है' 'यह मैं हूं' यह मेरा आत्मा है' इस प्रकार समझता है । जो यह (छः) दृष्टि स्थान है सो लोक है सोई आत्मा है मैं मरकर सोई नित्य, ध्रुव शाश्वत, निर्विकार (अविपरिणाम धर्मा) आत्मा होऊंगा और अनन्त वर्षों तक वैसा ही [illegible] इसे भी मेरा है' 'यह मैं हूं' यह मेरा आत्मा'

भावार्थ—जो कोई मनुष्य सर्व प्राणीमात्रपर दया तथा मैत्री भाव करता है, वह बाहरी व भीतरी रहनेवाले सर्व शत्रुओंको जीत लेता है।

मनस्याल्हादिनी सेव्या सर्वकालसुखप्रदा ।
उपसेव्या त्वया भद्र ! क्षमा नाम कुलाङ्गना ॥ २६९ ॥

भावार्थ—मनको प्रसन्न रखनेवाली व सर्वकाल सुख देनेवाली ऐसी क्षमा नाम कुलवधूका हे भद्र! सदा ही तुझे सेवन करना चाहिये।

आत्मानुशासनमें कहा है—

हृदयसरसि यावन्निर्मलेऽप्यत्यगाधे ।
वसति खलु कषायग्राहचक्रं समन्तात् ॥
श्रयति गुणगणोऽयं तन्न तावद्विशङ्कं ।
समदमयमशेषैस्तान् विजेतुं यतस्व ॥ २१३ ॥

भावार्थ—हे साधु! तेरे मनरूपी गंभीर निर्मल सरोवरके भीतर जबतक सर्व तरफ क्रोधादि कषायरूपी मगरमच्छ बस रहे हैं तबतक गुणसमूह निशंक होकर तेरे भीतर आश्रय नहीं कर सके। इसलिये तू यत्न करके शांत भाव, इन्द्रियदमन व यम नियम आदिके द्वारा उनको जीत।

वैराग्यमणिमालामें श्रीचंद्र कहते हैं—

आकर्णय वचनं गुरु सारं चेत्त्वं वांछसि संसृतिपारं ।
मोहं त्यक्त्वा कामं क्रोधं त्यज भज त्वं संयमवरबोधं ॥ ८ ॥

भावार्थ—हे भाई! यदि तू संसार समुद्रके पार जाना चाहता है तो मेरा यह सार वचन मान कि तू मोहको त्याग, कामभाव व क्रोधको छोड़ और तू संयम सहित ज्ञानका भजन कर।

देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते है—

> अप्पसमाणा दिट्ठा जीवा सव्वेवि तिहुवणत्थावि ।
> जो मज्झत्थो जोई ण य तूसइ णेय रूसेइ ॥ ३७ ॥

भावार्थ—जो योगी अपने समान तीन लोकके जीवोंको देख कर मध्यस्थ या वैराग्यवान् रहता है—न वह किसीपर क्रोध करता है न किसीपर हर्ष करता है ।

---

(१७) मज्झिमनिकाय अलगद्दमय सूत्र ।

गौतमबुद्ध कहते हैं—कोई२ मोघ पुरुष गेय, व्याकरण, गाथा, उदान, इतिवृत्तक जातक, अदभुत धर्म, वैदल्य, इन नौ प्रकारके धर्मोपदेशको धारण करते हैं वे उन धर्मोंको धारण करते भी उनके अर्थको प्रज्ञासे नहीं परखते हैं । अर्थोंको प्रज्ञासे परखे विना धर्मोंका आशय नहीं समझते । वे या तो उपारंभ (सहायता) के लाभके लिये धर्मको धारण करते हैं या वादमें प्रमुख बननेके लाभके लिये धर्मको धारण करते हैं और उसके अर्थको नहीं अनुभव करते हैं । उनके लिये यह विपरीत तरहसे धारण किये धर्म अहित और दुःखके लिये होते हैं । जैसे भिक्षुओ ! कोई अलगद्द (साप) चाहनेवाला पुरुष अलगद्दकी खोजमें घूमता हुआ एक महान् अलगद्दको पाए और उसे देहसे या पूछसे पकड़े, उसको वह अलगद्द उलटकर हाथमें, बाहमें या अन्य किसी अंगमें डस ले । वह उसके कारण मरणको या मरणसमय दुःखको प्राप्त होवे, ऐसे ही वह भिक्षु ठीक न समझनेवाला दुःख पावेगा ।

परन्तु जो कोई कुलपुत्र धर्मोपदेशको धारण करते हैं, उन धर्मोंको धारणकर उनके अर्थको प्रज्ञासे परखते हैं, प्रज्ञासे परखकर धर्मोंके अर्थको समझते हैं वे उपारम लाभ व वादमें प्रमुख बननेके लिये धर्मोंको धारण नहीं करते हैं, वे उनके अर्थको अनुभव करते हैं। उनके लिये यह सुगृहीत धर्म चिरकाल तक हित और सुखके लिये होते हैं। जैसे भिक्षुओ! कोई अलगर्द गवेषी पुरुष एक महान् अलगर्दको देखे, उसको साप पकड़नेके अजपद दंडसे अच्छी तरह पकड़े। गर्दनसे ठीक तौरपर पकड़े, फिर चाहे वह अलगर्द उस पुरुषके हाथ, पाव, या किसी और अंगको अपने देहसे परिवेष्टित करे, किंतु वह उसके कारण मरणको व मरण समान् दुःखको नहीं प्राप्त होगा।

मैं वेड़ीकी भांति निस्तरण (पार जाने) के लिये तुम्हें धर्मको उपदेशता हूं, पकड रखनेके लिये नहीं। उसे सुनो, अच्छी तरह मनमें धरो, कहता हूं—

जैसे भिक्षुओ! कोई पुरुष कुमार्गपर जाते एक ऐसे महान् समुद्रको प्राप्त हो जिसका इधरका तीर भयम पूर्ण हो और उधरका तीर क्षेमयुक्त और भयरहित हो। वहां न पार लेजानेवाली नाव हो न इधरसे उधर जानेके लिये पुल हो। तब उसके मनमें हो—क्यों न मैं तृण काष्ठ-पत्र जमा कर बेड़ा बांधूं और उस वेड़ेके सहारे स्वस्तिपूर्वक पार उतर जाऊं। तब वह बेड़ा बांधकर उस वेड़ेके सहारे पार उतर जाए। उत्तीर्ण होजानेपर उसके मनमें ऐसा हो—यह वेड़ा मेरा बड़ा उपकारी हुआ है क्यों न मैं इसे शिरपर या

कंधेपर रखकर जहां इच्छा हो वहां जाऊं तो क्या ऐसा करनेवाला उस बेड़ेमें कर्त्तव्य पालनेवाला होगा ? नहीं। किंतु वह उस बेड़ेसे दुःख उठानेवाला होगा। परन्तु यदि पारगत पुरुषको ऐसा हो—क्यों न मैं इस बेड़ेको स्थलपर रखकर या पानीमें डालकर जहां इच्छा हो वहां जाऊं तो भिक्षुओ ' ऐसा करनेवाला पुरुष उस बेड़ेके सम्बन्धमें कर्त्तव्य पालनेवाला होगा। ऐसे ही भिक्षुओ ! मैंने बेड़ेकी भांति निस्तरणके लिये तुम्हें धर्मोंको उपदेशा है, पकड़ रखनेके लिये नहीं। धर्मको बेड़ेके समान (कुल्लूपम) उपदेश जानकर तुम धर्मको भी छोड़ दो अधर्मकी तो बात ही क्या ?

भिक्षुओ ! ये छः दृष्टि स्थान हैं। आर्यधर्मसे अज्ञानी पुरुष रूप (Matter) को 'यह मेरा है' 'यह मैं हूं' 'यह मेरा आत्मा है' इस प्रकार समझता है इसी तरह (२) वेदनाको, (३) संज्ञाको (४) संस्कारको, (५) विज्ञानको, (६) जो कुछ भी यह देखा, सुना, यादमें आया ज्ञात, प्राप्त, पर्येषित (खोजा), और मन द्वारा अनुविचारित (पदार्थ) है उसे भी 'यह मेरा है' 'यह मैं हूं' 'यह मेरा आत्मा है' इस प्रकार समझता है। जो यह (छः) दृष्टि स्थान है सो लोक है सोई आत्मा है मैं मरकर सोई नित्य, ध्रुव, शाश्वत निर्विकार (अविपरिणाम धर्मा) आत्मा होऊँगा और अनन्त वर्षोंतक वैसा ही स्थित रहूंगा। इसे भी 'यह मेरा है' 'यह मैं हूं' 'यह मेरा आत्मा' है इस प्रकार समझता है।

परन्तु भिक्षुओ ! आर्य धर्मसे परिचित ज्ञानी आर्य श्रावक (१) रूपको 'यह मेरा नहीं' 'यह मैं नहीं हूं' 'यह मेरा आत्मा

नहीं है'—इस प्रकार समझता है इसी तरह, (२) वेदनाको (३) संज्ञाको (४) संस्कारको, (५) विज्ञानको, (६) जो कुछ भी देखा सुना या मनद्वारा अनुविचारित है उसको जो यह (छ) दृष्टि स्थान है सो लोक है सो आत्मा है इत्यादि। यह मेरा आत्मा नहीं है। इस प्रकार समझता है। वह इस प्रकार समझते हुए अशनित्रास (भय) को नहीं प्राप्त होता।

क्या है बाहर अशनिपरित्रास—किसीको ऐसा होता है अहो पहले यह मेरा था, अहो अब यह मेरा नहीं है, अहो मेरा होवे, अहो उसे मैं नहीं पाता हूं। वह इस प्रकार शोक करता है दुःखित होता है, छाती पीटकर क्रन्दन करता है। इस प्रकार बाहर अशनिपरित्रास होता है।

क्या है बाहरी अशनि-अपरित्रास—

जिस किसी भिक्षुको ऐसा नहीं होता यह मेरा था, अहो इसे मैं नहीं पाता हूं वह इस प्रकार शोक नहीं करता है, मूर्छित नहीं होता है। यह है बाहरी अशनि-अपरित्रास।

क्या है भीतर अशनिपरित्रास—किसी भिक्षुको यह दृष्टि होती है। सो लोक है, सो ही आत्मा है, मैं मरकर सोई नित्य, ध्रुव, शाश्वत निर्विकार होऊंगा और अनन्त वर्षोंतक वैसे ही रहूंगा। वह तथागत (बुद्ध) को सारे ही दृष्टिस्थानोंके अधिष्ठान, पर्युत्थान (उठने), अभिनिवेश (आग्रह) और अनुशयों (मलों) के विनाशके लिये, सारे संस्कारोंको शमनके लिये, सारी उपाधियोंके परित्यागके लिये और तृष्णाके क्षयके लिये, विराग, निरोध (रागादिके नाश) और

निर्वाणके लिये धर्मोपदेश करते सुनता है। उसको ऐसा होता है—
' मैं उच्छिन्न होऊंगा, और मैं नष्ट होऊंगा। हाय! मैं नहीं
रहूंगा ' वह शोक करता है, दुःखित होता है, मूर्छित होता है।
इस प्रकार अशनि परित्रास होता है। क्या है अशनि अपरित्रास,
। जस किसी भिक्षुको ऊपरकी एसी दृष्टि नहीं होती है वह मूर्छित
नहीं होता है।

भिक्षुओ! उस परिग्रहको परिग्रहण करना चाहिये जो परिग्रह
कि नित्य, ध्रुव, शाश्वत्, निर्विकार अनन्तवीर्य वैसा ही रहे।
भिक्षुओ ! क्या एसे परिग्रहको देखते हो ! नहीं। मैं भी ऐसे परि
ग्रहको नहीं देखता जो अनन्त वर्षोंतक वैसा ही रहे। मैं उस आत्म
वादको स्वीकार नहीं करता जिसके स्वीकार करनेसे शोक, दुःख व
दौर्मनस्य उत्पन्न हो। न मैं उस दृष्टि निश्चय (धारणाके विषय) का
आश्रय लेता हूं जिससे शोक व दुःख उत्पन्न हो। भिक्षुओ!
आत्मा और आत्मीयके ही सत्यतः उपलब्ध होनेपर जो यह
दृष्टि स्थान सांई लोक है सोई आत्मा है इत्यादि। क्या यह केवल
पूरा बालधर्म नहीं है। वास्तवमें यह केवल पूरा बालधर्म है तो
क्या मानते हो भिक्षुओ! रूप नित्य है या अनित्य-अनित्य है।
जो अनित्य है वह दुःखरूप है या सुखरूप है—दुःखरूप है। जो
अनित्य, दुःख स्वरूप और परिवर्तनशील, विकाशी है क्या उसके
लिये यह देखना—यह मेरा है, यह मैं हूं, यह मेरा आत्मा है,
योग्य है ? नहीं। उसी तरह वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञानको
' यह मेरा आत्मा नहीं' ऐसा देखना चाहिये।

इसलिये भिक्षुओ ! भीतर (शरीरमें) या बाहर, स्थूल या सूक्ष्म, उत्तम या निकृष्ट, दूर या निकट, जो कुछ भी भूत, भविष्य वर्तमान रूप है, वेदना है, संज्ञा है, सस्कार है, विज्ञान है वह सब मेरा नहीं है। 'यह मैं नहीं हू' 'यह मेरा आत्मा नहीं है' ऐसा भले प्रकार समझकर देखना चाहिये।

ऐसा देखनेपर बहुश्रुत आर्यश्रावक रूपमें भी निर्वेद (उदासीनता) को प्राप्त होता है, वेदनामें भी, सज्ञामें भी, सस्कारमें भी विज्ञानमें भी निर्वेदको प्राप्त होता है। निर्वेदसे विरागको प्राप्त होता है। विराग प्राप्त होनेपर विमुक्त होजाता है। रागादिसे विमुक्त होनेपर 'मैं विमुक्त होगया' यह ज्ञान होता है फिर जानता है-जन्म क्षय होगया, ब्रह्मचर्यवास पूरा होगया, करणीय कर लिया, यहां और कुछ भी करनेको नहीं है। इस भिक्षुने अविद्याको नाश कर दिया है, उच्छिन्नमूल, अभावको प्राप्त, भविष्यमें न उत्पन्न होने लायक कर दिया है। इसलिये यह उत्क्षिप्त परिघ (जूएसे मुक्त) है। इस भिक्षुने पौर्वभविक (पुनर्जन्म सम्बन्धी) जाति सस्कार (जन्म दिलानेवाले पूर्वकृत कर्मोंके चित्त प्रवाह पर पड़े सस्कार) को नाश कर दिया है, इसलिये यह सकीर्ण परिख (खाई पार) है। इस भिक्षुने तृष्णाको नाश कर दिया है इसलिये यह अत्यूढ़ हरीसिक (जो हलकी हरीस जैसे दुनियाके भारको नहीं उठाए है) है। इस भिक्षुने पाच अवरभागीय सयोजनों (ससारमें फसानेवाले पाच दोष- (१) सत्कायदृष्टि-शरीरादिमें आत्मदृष्टि, (२) विचिकित्सा-सशय, ३) शीलव्रत परामर्श-व्रत आचरणका अनुचित अभिमान, (४)

काम राग—आसीम राग (५) उखाड़ (दूरभाव) नाश कर दिया है इसलिये वह निरर्गल (कामरूपी बाधासे मुक्त) है। इस भिक्षुका अभिमान (दूसरा अहंकार) नष्ट होता है। भविष्यमें न उत्पन्न होनेलायक होता है इसलिये वह पन्न ध्वज (जिसकी रागादिकी ध्वजा गिर गई है, पन्न भार (जिसका भार गिर गया है) विसंयुक्त (रागादिसे विमुक्त) होता है। इसप्रकार मुक्त भिक्षुको इन्द्रादि देवता नहीं जान सके कि इस तथागत (भिक्षु) का विज्ञान इसमें निश्रित है, क्योंकि इस जन्ममें ही तथागत अन् अनुवेद्य (अज्ञेय) है।

भिक्षुओ! कोई कोई श्रमण ब्राह्मण ऐसे (उपर लिखित) वादको माननेवाले, ऐसा कहनेवाले मुझ असत्य, तुच्छ, मृषा, अभूत, झूठ लगाते हैं कि श्रमण गौतम वैनेयिक (नहींक वादको माननेवाला) है। वह विद्यमान सत्व (जीव या आतमा) के उच्छेदका उपदेश करता है। भिक्षुओ! जो कि मैं नहीं कहता।

भिक्षुओ! पहले भी और अब भी मैं उपदेश करता हूं दुःखको और दुःख निरोधको। यदि भिक्षुओ! तथागतको दूसरे निन्दते उससे तथागतको चोट, असंतोष और चित्त विकार नहीं होता। यदि दूसरे तथागतका सत्कार या पूजन करते हैं उससे तथागतको आनन्द सोमनस्य चित्तका प्रसन्नताऽतिरेक नहीं होता। जब दूसरे तथागतका सत्कार करते हैं तब तथागतको ऐसा होता है जो पहले ही त्याग दिया है। उसीके विषयमें इस प्रकारके कार्य किये जाते हैं। इसलिये भिक्षुओ! यदि दूसरे तुम्हें भी निन्दें तो

उसके लिये तुम्हें चित्त विकार न आने देना चाहिये। यदि दूसरे तुम्हारा सत्कार करें तो उनके लिये तुम्हें भी ऐसा होना चाहिये। जो पहले त्याग दिया है उसीके विषयमें ऐसे कार्य किये जारहे हैं।

इसलिये भिक्षुओ! जो तुम्हारा नहीं है, उसे छोड़ो, उसका छोड़ना चिरकाल तक तुम्हारे हित सुखके लिये होगा। भिक्षुओ! क्या तुम्हारा नहीं है? रूप तुम्हारा नहीं है इसे छोड़ो। इसी तरह वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान तुम्हारा नहीं है इन्हें छोड़ो। जैसे इस जेतवनमें जो तृण, काष्ट, शाखा, पत्र है उसे कोई अपहरण करे, जलाय या जो चाहे सो करे, तो क्या तुम्हे ऐसा होना चाहिये। "हमारी चीजको यह अपहरण कर रहा है?" नहीं, सो किस हेतु!—यह हमारा आत्मा या आत्मीय नहीं है। ऐसे ही भिक्षुओ! जो तुम्हारा नहीं है उसे छोडो। रूप, वेदना संज्ञा, संस्कार, विज्ञान तुम्हारा नहीं है इसे छोड़ो।

भिक्षुओ! इसप्रकार मैंने धर्मको उत्तान, विवृत, प्रकाशित, आवरण रहित करके अच्छी तरह व्याख्यान किया है (स्वाख्यात है)। ऐसे स्वाख्यात धर्ममें उन भिक्षुओंके लिये कुछ उपदेश करनेकी जरूरत नहीं है जो कि (१) अर्हत् क्षीणास्रव (रागादि मलसे रहित) होगए हैं ब्रह्मचर्यवास पूरा कर चुके कृत करणीय भार मुक्त, सच्चे अर्थको प्राप्त परिक्षीण भव संयोजन (जिनके भवसागरमें डालनेवाले बंधन नष्ट होगए हैं) सम्यग्ज्ञानियुक्त (यथार्थ ज्ञानसे जिनकी मुक्ति होगई है) है (२) ऐसे स्वाख्यात धर्ममें जिन भिक्षुओंके पांच (ऊपर कथित) अवरभागीय संयोजन नष्ट होगए हैं, व

सभी ओपपातिक (देव) हो। वहां जो परिनिर्वाणको प्राप्त होनेवाले हैं इस लोकसे लौटकर नहीं आनेवाले (अनावृत्तिधर्मा, अनागामी) हैं। (३) ऐसे स्वाख्यात धर्ममें जिन भिक्षुओंके राग द्वेष मोह तीन संयोजन नष्ट होगए हैं निर्बल होगए हैं वे सारे सकृदागामी (सकृद्-एकवार ही इस लोकमें आकर दुःखका अन्त करेंगे) होंगे। (४) ऐसे स्वाख्यात धर्ममें जिन भिक्षुओंके तीन संयोजन (राग द्वेष मोह) नष्ट होगए वे सारे नवर्तिन होनेवाले संबोधि (बुद्धके ज्ञान) परायण स्रोतापन्न (निर्वाणको ओर लेजानेवाले प्रवाहमें स्थिर रीतिसे आरूढ़) हैं।

भिक्षुओ! ऐसे स्वाख्यात धर्ममें जो भिक्षु श्रद्धानुसारी हैं, धर्मानुसारी हैं वे सभी संबोधि परायण हैं। इसप्रकार मैंने धर्मका अच्छी तरह व्याख्यान किया है। ऐसे स्वाख्यात धर्ममें जिनकी मेरे विषयमें श्रद्धा मात्र, प्रेम मात्र भी है वे सभी स्वर्गपरायण (स्वर्गगामी) हैं।

नोट—इस सूत्रमें स्वानुभवगम्य निर्वाणका या शुद्धात्माका बहुत ही बढ़िया उपदेश दिया है जो परम कल्याणकारी है। इसको बारबार मनन कर समझना चाहिये। इसका भावार्थ यह है—

(१) पहले यह बताया है कि शास्त्रको या उपदेशको ठीक ठीक समझकर केवल धर्म लाभके लिये पालना चाहिये, किसी लाभ व सत्कारके लिये नहीं। इस पर दृष्टान्त सर्पका दिया है। जो सर्पको ठीक नहीं पकड़ेगा उसे सर्प काट खाएगा, वह मर जायगा। परन्तु जो सर्पको ठीकर पकड़ेगा वह सर्पको वश कर लेगा। इसी तरह

जो धर्मके असली तत्वको उल्टा समझ लेगा उसका अहित होगा। परन्तु जो ठीक ठीक भाव समझेगा उसका परम हित होगा। यही बात जैन सिद्धातमें कही है कि ख्याति लाभ पूजादिकी चाहके लिये धर्मको न पाले, केवल निर्वाणके लिये ठीक२ समझकर पाले, विपरीत समझेगा तो बाहरी ऊचासे ऊचा चारित्र पालनेपर भी मुक्ति नहीं होगी। जैसे यहा प्रज्ञासे समझनेका उपदेश है वैसे ही जैन सिद्धातमें कहा है कि प्रज्ञासे या भेद विज्ञानसे पदार्थको समझना चाहिये कि मैं निर्वाण स्वरूप आत्मा भिन्न हू व सर्व रागादि विकार भिन्न हैं।

(२) दूसरी बात इस सूत्रमें बताई है कि एक तरफ निर्वाण परम सुखमई है, दूसरी तरफ महा भयकर ससार है। बीचमें भव-समुद्र है। न कोई दूसरी नाव है न पुल है। जो आप ही भव-समुद्र तरनेकी नौका बनाता है व आप ही इसके सहारे चलता है वह निर्वाण पर पहुच जाता है। जैसे किनारे पर पहुंचने पर चतुर पुरुष जिस नावके द्वारा चल कर आया था उसको फिर पकड़ कर धरता नहीं–उसे छोड़ देता है, उसी तरह ज्ञानी निर्वाण पहुच कर निर्वाण मार्गको छोड़ देता है। साधन उसी समय तक आवश्यक है जबतक साध्य सिद्ध न हो, फिर साधनकी कोई जरूरत नहीं। सूत्रमें कहा है कि धर्म भी छोड़ने लायक है तब अधर्मकी क्या बात। यही बात जैन सिद्धातमें बताई है कि मोक्षमार्ग निश्चय धर्म और व्यवहार धर्मसे दो प्रकारका है। इनमें निश्चय धर्म ही यथार्थ मार्ग है, व्यवहार धर्म केवल निमित्त कारण है। निश्चय धर्म

सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमय शुद्धात्मानुभव है या सम्यक्समाधि है, व्यवहार धर्म पूर्ण रूपसे साधुका चारित्र है अपूर्णरूपसे गृहस्थका चारित्र है। गृही भी आत्मानुभवके लिये पूजापाठ जप तपादि करता है जब स्वात्मानुभव निश्चयधर्मपर पहुंचता है तब व्यवहार स्वयं छूट जाता है। जब स्वानुभव नहीं होसक्ता फिर व्यवहारका आलम्बन लेता है। स्वानुभव उपादान कारण है। जब ऊंचा स्वानुभव होता है तब उसमें नीचा छूट जाता है। साधु भी व्यवहार चारित्र द्वारा आत्मानुभव करते हैं, आत्मानुभवके समय व्यवहारचारित्र स्वयं छूट जाता है। जब आत्मानुभवसे हटते हैं फिर व्यवहारचारित्रका सहारा लेते हैं। इस अभ्याससे जब ऊंचा आत्मानुभव होता है तब नीचा छूट जाता है। इसी तरह जब निर्वाण रूप आप होजाता है अनन्तकालके लिये परम ज्ञान व स्वानुभवरूप होजाता है तब उसका साधनरूप स्वानुभव छूट जाता है।

जैन सिद्धांतमें उन्नति करनेका चौदह श्रेणिया बताई हैं, इनको पार करके मोक्ष लाभ होता है। मोक्ष हुआ, श्रेणिया दूर रह जाती हैं।

वे गुणस्थानके नामसे कहे जाते हैं—उनके नाम हैं (१) मिथ्यादर्शन (२) सासादन (३) मिश्र, (४) अविरति सम्यग्दर्शन (५) देशविरत, (६) प्रमत्त विरत, (७) अप्रमत्त विरत, (८) अपूर्व करण, (९) अनिवृत्तिकरण, (१०) सूक्ष्मलोभ, (११) उपशांत मोह, (१२) क्षीण मोह, (१३) सयोगकेवली जिन, (१४) अयोगकेवली जिन। इनमेंसे पहले पाच गृहस्थ श्रावकोंके होते है छठेसे बारहवें तक साधुओंके व तेरह तथा चौदहवें गुणस्थान अर्हन्त सशरीर पर

समाधि होते हैं। सात व सातसे आगे सर्व गुणस्थान ध्यान व समाधिरूप हैं। जैसे निर्वाणका मार्ग स्वानुभवरूप निर्विकल्प है वैसे निर्वाण भी स्वानुभवरूप निर्विकल्प है। कार्य होनेपर नाचेका स्वानुभव स्वयं छूट जाता है।

फिर इस सूत्रमें बताया है कि रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञानको व जो कुछ देखा सुना, अनुभवा व मनसे विचार किया है उसे छोड़दो। उसमें मेरापना न करो। यह सब न मेरा है न यह मैं हूं, न मेरा आत्मा है ऐसा अनुभव करो। यह वास्तवमें भेद विज्ञानका प्रकार है।

जैन सिद्धान्तके अनुसार मतिज्ञान व श्रुतज्ञान पांच इन्द्रिय व मनसे होनेवाला पराधीन ज्ञान है, वह आप निर्वाणस्वरूप नहीं है। निर्वाण निर्विकल्प है, स्वानुभवगम्य है वही मैं हूं या आत्मा है इस भावसे विरुद्ध सर्व ही इन्द्रिय व मनद्वारा होनेवाले विकल्प त्यागने योग्य है। यही यहां भाव है। इन्द्रियोंके द्वारा रूपका ग्रहण करना है। पांचों इन्द्रियोंके सर्व विषय रूप हैं, फिर उनके द्वारा सुख दुःख वेदना होती है, फिर उन्हींकी संज्ञारूप बुद्धि रहती है, उसीका बारबार चित्तपर असर पड़ना संस्कार है, फिर वहां एक धारणारूप ज्ञान होजाता है, इसीको विज्ञान कहते हैं। वास्तवमें ये पांचों ही त्यागनेयोग्य हैं। इसी तरह मनकेद्वारा होनेवाले सर्व विकल्प त्यागनेयोग्य है। जैन सिद्धान्तमें बताया है कि यह आप आत्मा अतीन्द्रिय है, मन व इन्द्रियोंसे अगोचर है। आपसे आप ही अनुभवगम्य है। श्रुतज्ञानका फल जो भावरूप स्वसंवेदनरूप आत्मज्ञान

इ उसके सिवाय सर्व विचाररूप ज्ञान पराधीन व त्यागनेयोग्य है स्वानुभवमें कार्यकारी नहीं है। फिर सूत्रमें यह बताया है कि इ दृष्टियाम समु यरूप जो लोक है वही आत्मा है, मैं मरकर नित्य, अपरिणामी ऐसा आत्मा होजाऊंगा। इसका भाव यही समझमें आता है कि जो कोई वादी आत्माको व जगतको सबको एक ब्रह्मरूप मानते हैं व यह व्यक्ति ब्रह्मरूप नित्य होजायगा इस सिद्धांतका निषेध किया है। इस कथनसे अजात, अमृत, शाश्वत, शांत, पडित वेद नीय, तर्क अगोचर निर्वाण स्वरूप शुद्धात्माका निषेध नहीं किया है। उस स्वरूप मैं हूं ऐसा अनुभव करना योग्य है। उस सिवाय मैं कोई और नहीं हूं न कुछ मेरा है, ऐसा यहां भाव है।

(४) फिर यह बताया है कि जो हम ऊपर लिखित मिथ्या दृष्टिको रखता है उसे ही भय होता है। मोही व अज्ञानीको अपने नाशका भय होता है। निर्वाणका उपदेश सुनकर भी वह नहीं सम झता है। रागद्वेष मोहके नाशको निर्वाण कहते हैं। इससे वह अपना नाश समझ लेता है। जो निर्वाणके यथार्थ स्वभाव पर दृष्टि रखता है, जिसे कोई भय नहीं रहता है वह संसारके नाशको हितकारी जानता है।

(५) फिर यह बताया है कि निर्वाणके सिवाय सर्व परिग्रह नाशवंत हैं। उनको जो अपनाता है वह दुःखित होता है। जो नहीं अपनाता है वह सुखी होता है। ज्ञानी भीतर बाहर, स्थूल सूक्ष्म, दूर या निकट, भूत, भविष्य वर्तमानके सर्व रूपोंको, परमाणु या स्कंधोंको अपना नहीं मानता है। इसी तरह उनके निमित्त

होनेवाले त्रिकाल सम्बंधी वेदना, संज्ञा, संस्कार व विज्ञानको अपना नहीं मानता है। जो मैं परसे भिन्न हूं ऐसा अनुभव करता है वही ज्ञानी है, वही संसार रहित मुक्त होजाता है।

(६) फिर इस सूत्रमें बताया है कि जो बुद्धको नास्तिक वादका या सर्वथा सत्यके नाशका उपदेशदाता मानते हैं सो मिथ्या है। बुद्ध कहते हैं कि मैं ऐसा नहीं कहता। मैं तो संसारके दुःखोंके नाशका उपदेश देता हूं।

(७) फिर यह बताया है कि जैसा मैं निन्दा व प्रशंसामें समभाव रखता हूं व शोकित व आनन्दित नहीं होता हूं वैसा भिक्षुओंको भी निंदा व प्रशंसामें समभाव रखना चाहिये।

(८) फिर यह बताया है कि जो तुम्हारा नहीं है उसे छोड़ो। रूपादि विज्ञान तक तुम्हारा नहीं है इसे छोड़ो। यही स्वाख्यात (भलेप्रकार कहा हुआ) धर्म है।

(९) फिर यह बताया है कि जो स्वाख्यात धर्मपर चलते हैं वे नीचेप्रकार अवस्थाओंको यथासंभव पाते हैं—

(१) क्षीणास्रव हो मुक्त होजाते हैं, (२) देव गतिमें जाकर अनागामी होजाते हैं वहींसे मुक्ति पाएँगे (३) देवगतिसे एक वार हो यहां आकर मुक्त होंगे, उनको सकृदागामी कहते हैं, (४) स्रोतापन्न होजाते हैं, संसार सम्बन्धी रागद्वेष मोह नाश करके संबोधि परायण ज्ञानी होजाते हैं, ऐसे भी श्रद्धा मात्रसे स्वर्गगामी हैं।

जैन सिद्धांतमें भी बताया है जो मात्र अविरत सम्यग्दृष्टी हैं, चारित्र रहित सत्य स्वाख्यात धर्मके श्रद्धावान हैं सच्चे प्रेमी हैं,

वे मरकर प्राय स्वर्ग जाते है। कोई देव गतिमें जाकर कई जन्मोंमें कोई एक जन्म मनुष्यका लेकर, कोई उसी शरीरसे निर्वाण पाते है। जैसे यहा राग द्वेष मोहको तीन संयोजन या मल बताया है वैसे ही जैन सिद्धातमें बताया है। इनका त्यागना ही मोक्षमार्ग है व यही मोक्ष है।

जैनसिद्धातके कुछ वाक्य—

श्री अमितिगत आचार्य तत्वभावनामें कहते है—

य चेतसि स्थिरवस्तुविषय स्नेह स्थिरो वर्तते ।
तावन्नश्यति दु खदानकुशल कर्मप्रपच कथम् ॥
आर्द्रत्वे वसुधातलस्य सजटा शुष्यति किं पादपा ।
मज्जत्तापनिपातरोधनपरा शाखोपशाखान्विता ॥ ९६ ॥

भावार्थ-जबतक तेरे मनमें बाहरी पदार्थोंसे राग भाव स्थिर होरहा है तबतक किस तरह दु खकारी कर्मोंका तेरा प्रपच नाश होसक्ता है। जब पृथ्वी पानीसे भीजी हुई है तब उसके ऊपर सूर्य तापको रोकनेवाले अनेक शाखाओंसे सहित जटाधारी वृक्ष कैसे सूख सक्ते है ?

शूरोऽहं शुभधीरहं पटुरहं सर्वाधिकश्रीरहं ।
मान्योहं गुणवानहं विभुरहं पुमानहं चाग्रणी ॥
इत्यात्मन्नपहाय दुष्कृतकरीं त्व सर्वथा कल्पनाम् ।
शश्वद्ध्याय तदात्म त्वममल नैश्रेयसी श्रीर्यत ॥ ६२ ॥

भावार्थ-मैं शूर हू मैं बुद्धिशाली हू, मैं चतुर हू, मैं धनमें श्रेष्ठ हू, मैं मान्य हू, मैं गुणवान हू, मैं बलवान हू, मैं महान पुरुष। इन पापकारी कल्पनाओंको हे आत्मन्! छोड़ और निरंतर अपने

शुद्ध आत्मतत्वका ध्यान कर, जिससे अपूर्व निर्वाण लक्ष्मीका लाभ हो।

> नाहं कस्यचिदस्मि कश्चन न मे भावः परो विद्यते।
> मुक्त्वात्मानमपास्तकर्मसमितिं ज्ञानेक्षणालंकृतिम्॥
> यस्यैषा मतिरस्ति चेतसि सदा ज्ञातात्मतत्वस्थिते।
> बंधस्तस्य न यंत्रितं त्रिभुवनं सांसारिकैर्बन्धनैः॥ ११॥

भावार्थ-मेरे सिवाय मैं किसीका नहीं हूं न कोई परभाव मेरा है। मैं तो सर्व कर्मजालसे रहित ज्ञानदर्शनसे विभूषित एक आत्मा हूं, इसको छोडकर कुछ मेरा नहीं है। जिसके मनमें यह बुद्धि रहती है उस तत्वज्ञानी महात्माके तीन लोकमें कहीं भी ममताके बंधनोंसे बंध नहीं होता है।

> मोहांधानां स्फुरति हृदये बाह्यमात्मीयबुद्ध्या।
> निर्मोहानां व्यपगतमलः शश्वदात्मैव नित्यः॥
> यत्तद्भेदं यदि विविदिषा ते स्वकीयं स्वकीयैर्-
> मोहं चित्त! क्षपयसि तदा किं न दुष्टं क्षणेन॥ ८८॥

भावार्थ-मोहसे अन्ध जीवोंके भीतर अपनेसे बाहरी वस्तुमें आत्मबुद्धि रहती है, मोह रहितोंके भीतर केवल निर्वाण स्वरूप शुद्ध नित्य आत्मा ही अकेला बसता है। जब तू इस भेदको जानता है तब तू अपना दुष्ट मोह उन सबसे क्षणमात्रमें क्यों नहीं छोड़ देता है।

तत्वज्ञानतरंगिणीमें ज्ञानभूषण भट्टारक कहते हैं—

> कीर्तिं वा पररंजनं खविषयं केचिन्निजं जीवितं।
> संतानं च परिग्रहं भयमपि ज्ञानं तथा दर्शनं॥
> अन्यस्याखिलवस्तुनो रूगयुतिं तद्धेतुमुद्दिश्य च।
> कुर्युः कर्म विमोहिनो हि सुधियश्चिद्रूपलब्ध्यै परं॥ ९-९॥

ते साधकत्वमधिगम्य भवन्ति सिद्धा ।
मूढास्त्वमूमनुपलभ्य परिभ्रमन्ति ॥ २०-११ ॥

भावार्थ-जो ज्ञानी सर्व प्रकार मोहको दूर करके ज्ञानमयी अपनी निश्चल भूमिका आश्रय लेते है वे मोक्षमार्गको प्राप्त होकर सिद्ध परमात्मा होजाते है, परन्तु अज्ञानी इस शुद्धात्मीक भावको न पाकर ससारमें भ्रमण करते है ।

तत्वार्थसारमें कहते है—

अकामनिर्जरा बालतपो मन्दकषायता ।
सुधर्मश्रवण दान तथायतनसेवनम् ॥ ४२-४ ॥
सरागसयमश्चैव सम्यक्त्व देशसयम ।
इति देवायुषो ह्येते भवन्त्यास्रवहेतव ॥ ४३-४ ॥

भावार्थ-देव आयु बाधकर देवगति जानेके कारण ये है— (१) अकाम निर्जरा—शातिसे कष्ट भोग लेना (२) बालतप—सम्यग्ज्ञान रहित इच्छाको रोकना, (३) मद कषाय क्रोधादिकी बहुत कमी, (४) धर्मानुराग रहित भिक्षुका चारित्र पालना, (५) गृहस्थ श्रावकका सयम पालना, (६) सम्यग्दर्शन मात्र होना ।

सार समुच्चयमें कहा है —

आत्मान स्नापयेन्नित्य ज्ञाननीरेण चारुणा ।
येन निर्मलता याति जीवो जन्मान्तरेष्वपि ॥ ३१४ ॥

भावार्थ-अपनेको सदा पवित्र ज्ञानरूपी जलसे स्नान कराना चाहिये । इसी स्नानसे यह जीव जन्म जन्मके मैलसे छूटकर पवित्र होजाता है ।

---

(१८) मज्झिमनिकाय वम्मिक (वल्मीक) सूत्र।

एक देवताने आयुष्मान् कुमार काश्यपसे कहा—

भिक्षु, यह वल्मीक रातको धुपवाता है दिनको जलता है।

ब्राह्मणने कहा-सुमेध! शस्त्रसे अभीक्षण (काट) सुमेधने शस्त्र काटते लंगीको देखा स्वामी लंगी है।

ब्रा० लंगीको फेंक, शस्त्रसे काट। सुमेधने धुपवाना देखकर कहा धुपवाना है। ब्रा०-धुपवानेको फेंक, शस्त्रसे काट।

सुमेधने कहा-दो रास्ते हैं। ब्रा०-दो रास्ते फेंक।

सुमेध चगवार (छलनी) है। ब्रा०-चगवार फेंक दे। सुमेध-कूर्म है। ब्रा०-कूर्म फेंक दे। सुमेध-असिसूना (पशु मारनेका पीढ़ा) है। ब्रा०-असिसूना फेंक दे। सुमेध-मांसपेशी है। ब्रा०-मांसपेशी फेंक दे। सुमेध नाग है। ब्रा०-रहने दे नागको मत छेड़, दे नागको नमस्कार कर।

देवताने कहा इसका भाव बुद्ध भगवानसे पूछना। तब कुमार काश्यपने बुद्धसे पूछा।

गौतमबुद्ध कहते हैं-(१) वल्मीक यह मातापितासे उत्पन्न, भात दालसे बढ़ा, इसी चातुर्भौतिक (पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु रूपी) कायाका नाम है जो कि अनित्य है तथा उत्सादन (हटाने) मर्दन भेदन विध्वंसन स्वभाववाला है, (२) जो दिनके कामोंके लिये रातको सोचता है, विचारता है यही रातका धुपवाना है, (३) जो रातको सोच विचार कर दिनको काया और वचनसे कामोंमें लगता है। यह दिनका जलना है, (४) ब्राह्मण-अर्हत् सम्यक्

सम्बुद्धका नाम है, (५) सुमेध यह शैक्ष्य भिक्षु (जिसकी शिक्षाकी अभी आवश्यक्ता है ऐसा निर्वाण मार्गारूढ़ व्यक्ति) का नाम है, (६) शस्त्र यह आर्य प्रज्ञा (उत्तम ज्ञान) का नाम है, (७) अभीक्षण (काटना) यह वीयारम (उद्योग) का नाम है, (८) लगी अविद्याका नाम है। लगीको फेंक सुमेध–अविद्याको छोड़, शस्त्रसे काट, प्रज्ञासे काट यह अर्थ है, (१०) धुधुआना यह क्रोधकी परेशानीका नाम है, धुधुआनाके कदे–क्रोध मलको छोड दे, प्रज्ञा शस्त्रसे काट यह अर्थ है, (१०) दो रास्ते यह विचिकित्सा (संशय)का नाम है, दो रास्ते फेंक दे, संशय छोड़ दे, प्रज्ञासे काट दे (११) चगवार यह पाच नीवरणो (आवरणों) का नाम है जैसे–(१) कामछन्द (भोगोंमें राग), (२) व्यापाद (परपीडा करण), (३) स्त्यान गृद्धि (कायिक मानसिक आलस्य, (४) औद्धत्य कौकृत्य (उच्छृ ङ्खलता और पश्चात्ताप) (५) विचिकित्सा (संशय), चगवार फेंक दे। इन पाच नीवरणोंको छोड दे, प्रज्ञासे काट दे, (१२) कूर्म यह पाच उपादान स्कंधोंका नाम है। जैसे कि—

(१) रूप उपादान स्कंध, (२) वेदना उ०, (३) संज्ञा उ०, (४) संस्कार उ०, (५) विज्ञान उ०, इस कर्मको फेंकदे। प्रज्ञा शस्त्रसे इन पाचोंको काट दे। (१३) अभिसूना–यह पाच काम गुणों (भोगों) का नाम है। जैसे (१) चक्षु द्वारा प्रिय विज्ञेय रूप, (२) श्रोत्र विज्ञेय प्रिय शब्द, (३) घ्राण विज्ञेय सुगंध, (४) जिह्वा विज्ञेय इष्ट रस, (५) काय विज्ञेय इष्ट स्प्रष्टव्य। इस असिसूनाको फेंक दे, प्रज्ञासे इन पाच कामगुणोंको काट दे। (१४) मांसपेशी–

[illegible] है। जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य–

श्री कुन्दकुन्दाचार्य समयसारमें कहते हैं—

जीवो बंधो य तहा छिज्जंति सलक्खणेहिं णियएहिं ।
पण्णाछेदणएण दु छिण्णा णाणत्तमावण्णा ॥ ३१६ ॥

भावार्थ–अलग २ भिन्न २ लक्षणको रखनेवाले जीव और उसके बंधक कर्मादि, रागादि व शरीरादि हैं । प्रज्ञारूपी छैनीसे दोनोंको छेदनसे दोनों अलग रह जाते हैं । अर्थात् बुद्धिमें निर्वाण स्वरूप जीव भिन्न अनुभवमें आता है ।

पण्णाए घित्तव्वो जो चेदा सो अहं तु णिच्छयदो ।
अवसेसा जे भावा ते मज्झ परेत्ति णादव्वा ॥३१९॥

भावार्थ–प्रज्ञा रूपी छैनीसे जो कुछ ग्रहण योग्य है वह चेतनेवाला मैं ही निश्चयसे हूं । मेरे सिवाय बाकी सर्व भाव मुझसे पर हैं, जुदे हैं ऐसा जानना चाहिये ।

समयसारकलशमें कहा है–

ज्ञानाद्विवेचकतया तु परात्मनोर्यो
जानाति हंस इव वाः पयसोर्विशेषं ।
चैतन्यधातुमचलं स सदाधिरूढो
जानीत एव हि करोति न किंचनापि ॥ १४–२ ॥

भावार्थ–ज्ञानके द्वारा जो अपने आत्माको और परको अलग अलग इसप्रकार जानता है जैसे हंस दूध और पानीको अलग २ जानता है । जानकर वह ज्ञानी अपने निश्चल चैतन्य स्वभावमें आरूढ़ रहता हुआ मात्र जानता ही है, कुछ करता नहीं है ।

श्री योगेन्द्रदेव योगसारमें कहते हैं–

अप्पा अप्पउ जइ मुणहि तउ णिव्वाणु लहहि ।
पर अप्पा जउ मुणिहि तुहु तहु संसार भमेहि ॥ १२ ॥

भावार्थ-यदि तू अपनेसे आपको ही अनुभव करेगा तो निर्वाण पावेगा और जो परको आप मानेगा तो तू संसारमें ही भ्रमेगा।

जो परमप्पा सो जि हउ जो हउ सो परमप्पु ।
इउ जाणेविणु जोइआ अण्ण म करहु वियप्पु ॥ २२ ॥

भावार्थ-जो परमात्मा है वही मैं हूं जो मैं हूं सो ही परमात्मा है ऐसा समझकर हे योगी! और कुछ विचार न कर।

सुद्धु सचेयणु बुद्धु जिणु केवलणाणसहाउ ।
सो अप्पा अणुदिण मुणहु जइ चाहउ सिवलाहु ॥ २६ ॥

भावार्थ-जो तु निर्वाणका लाभ चाहता है तो तु रात दिन उसी आत्माका अनुभव कर जो शुद्ध है चैतन्यरूप है, ज्ञानी व बुद्ध है, रागादि विजयी जिन है तथा केवलज्ञान स्वभाव धारी है।

अप्पसरूवह जो रमइ छंडवि सहु ववहारु ।
सो सम्माइट्ठी हवइ लहु पावइ भवपारु ॥ ८८ ॥

भावार्थ-जो कोई सर्व लोक व्यवहारमें ममता छोडकर अपने आत्माके स्वरूपमें रमण करता है वही सम्यग्दृष्टी है, वह शीघ्र संसारसे पार होजाता है।

सारसमुच्चयमें कहा है-

शत्रुभावस्थितान् यस्तु करोति वशवर्तिनः ।
प्रज्ञाप्रयोगसामर्थ्यात् स शूरः स च पंडितः ॥ २९० ॥

भावार्थ-जो कोई राग द्वेष मोहादि भावोंको जो आत्माके

शत्रु है परन्तु क्योंकि बन्ध अपने वश कर लेता है वही वीर है व वही पण्डित है।

तत्त्वानुशासनमें कहा है–

मिथस्तु स्व परं ज्ञात्वा श्रद्धाय च यथास्थिति।
विहायान्यदनर्थित्वात् स्वमेवावैतु पश्यतु ॥ १४३ ॥
नान्योऽस्मि नाहमस्त्यन्यो नान्यस्याहं न मे पर ।
अन्यस्त्वन्योऽहमेवाहमन्योऽन्यस्याहमेव मे ॥ १४८ ॥

भावार्थ–ध्यानकी इच्छा करनेवाला आपको आप परको पर ठीक ठीक श्रद्धान करके अन्यको अकार्यकारी जानकर छोड़दे, केवल अपनेको ही जाने व देखे। मैं अन्य नहीं हूं न अन्य मुझ रूप है, न अन्यका मैं हूं न अन्य मेरा है। अन्य अन्य है, मैं मैं हूं, अन्यका अन्य है मैं मेरा ही हूं यही भेदविज्ञान है।

---

(१९) मज्झिमनिकाय रथविनीत सूत्र।

एक दफे गौतम बुद्ध राजगृहमें थे। तब बहुतसे भिक्षु जातिभूमिक (कपिल वस्तुक निवासी) गौतम बुद्धके पास गए। तब बुद्धने पूछा–भिक्षुओ! जातिभूमिक भिक्षुओंमें कौन ऐसा सम्भावित (प्रतिष्ठित) भिक्षु है, जो स्वयं अल्पेच्छ (निर्लोभ) हो और अल्पेच्छकी कथा कहनेवाला हो, स्वयं सन्तुष्ट हो और संतोषकी कथा कहनेवाला हो, स्वयं प्रविविक्त (एकान्त चिन्तनशील) हो और प्रविवेककी कथा कहनेवाला हो। स्वयं असंसृष्ट (अनासक्त) हो व असंसर्ग कथा कहनेवाला हो, स्वयं प्रारब्ध वीर्य (उद्योगी) हो, और

-वीर्यारम्भकी कथा कहनेवाला हो, स्वय शीलसम्पन्न (सदाचारी) हो, और शील सम्पदाकी कथा कहनेवाला हो, स्वय समाधि सपन्न हो और समाधि सम्पदाकी कथा कहनेवाला हो स्वय प्रज्ञा सम्पन्न हो और प्रज्ञा सम्पदाकी कथा कहनेवाला हो, स्वय विमुक्ति सम्पन्न हो और विमुक्ति सपदा कथा कहनेवाला हो स्वय विमुक्ति ज्ञान दर्शन सम्पन्न (मुक्तिके ज्ञानका साक्षात्कार जिसने कर लिया) हो और विमुक्ति ज्ञान दर्शन सम्पदाकी कथा कहता हो, जो सब्रह्मचारियों (सह धर्मियों) के लिये अववादक (उपदेशक), विज्ञापक, सन्दर्शक, समादयक, समुत्तेजक, सम्प्रहर्षक (उत्साह देनेवाला) हो।

तब उन भिक्षुओंने कहा-कि जाति भूमिमें ऐसा पूर्ण मैत्रायणी पुत्र है तब पास बैठे हुए भिक्षु सारिपुत्रको ऐसा हुआ-क्या कभी पूर्ण मैत्रायणी पुत्रके साथ समागम होगा ?

जब गौतमबुद्ध राजग्रहीसे चलकर श्रावस्तीमें पहुचे तब पूर्ण मैत्रायणी पुत्र भी श्रावस्ती आए और परस्पर धार्मिक कथा हुई। जब पूर्ण मैत्रायणी पुत्र वहीं अचपनमें एक वृक्षके नीचे दिनमें विहार (ध्यान स्वाध्याय) के लिये बैठे थे तब सारि पुत्र भी उसी वनमें एक वृक्षके नीचे बैठे। सायकालको सारिपुत्र (प्रतिसल्लान) (ध्यान)से उठ पूर्ण मैत्रायणी पुत्रके पास गए और प्रश्न किया। आप बुद्ध भगवान्के पास ब्रह्मचर्यवास किस लिये करते है। क्या शील विशुद्धिके लिये ? नहीं! क्या चित्त विशुद्धिके लिये ? नहीं। क्या दृष्टि विशुद्धि (सिद्धात ठीक करने) के लिये ? नहीं। क्या सदेह दूर करनेके लिये ? नहीं। क्या मार्ग अमार्गके ज्ञानके दर्शनकी विशुद्धिके

लिये ? नहीं। क्या प्रतिपद (मार्ग) ज्ञानदर्शनकी विशुद्धिके लिये ? नहीं। क्या ज्ञानदर्शनकी विशुद्धिके लिये ? नहीं। तब आप किस लिये भगवान्‌के पास ब्रह्मचर्यवास करते हैं ? उपादान रहित (परिग्रह रहित) परिनिर्वाणके लिये मैं भगवान्‌के पास ब्रह्मचर्य वास करता हूं।

सारिपुत्र कहते हैं—तो क्या इन ऊपर लिखित धर्मोंसे अलग उपादान रहित परिनिर्वाण है ? नहीं। यदि इन धर्मोंसे अलग उपादान रहित निर्वाणका अधिकारी भी निर्वाणको प्राप्त होगा, तुम्हें एक उपमा देता हूं। उपमासे भी कोई२ विज्ञ पुरुष कहे का अर्थ समझते हैं।

जैसे राजा प्रसेनजित कोसलको श्रावस्तीमें बसते हुए कोई अति आवश्यक काम साकेत (अयोध्या)में उत्पन्न होजावे। वहां जानेके लिये श्रावस्ती और साकेतके बीचमें सात रथ विनीत (डाक) स्थापित करे। तब राजा प्रसेनजित श्रावस्तीसे निकलकर अन्तःपुरके द्वारपर पहले रथ विनीत (रथकी डाक) पर चढ़े, फिर दूसरेपर चढ़े पहलेको छोड़दे, फिर तीसरेपर चढ़े दूसरेको छोड़दे। इसतरह चलते चलते सातवें रथ विनीतसे साकेतके अंतपुरके द्वारपर पहुच जावे तब वहां मित्र व अमात्यादि राजासे पूछे—क्या आप इसी रथविनीत द्वारा श्रावस्तीसे साकेत आए हैं ? तब राजा यही उत्तर देगा मैंने बीचमें सात रथ विनीत स्थापित किये थे। श्रावस्तीसे निकलकर चलते २ क्रमसे एकको छोड़ दूसरेपर चढ़ इस सातवें रथविनीतसे साकेतके अंत पुरके द्वारपर पहुच गया हूं। इसी तरह शीलविशुद्धि तभीतक है

जबतक चित्त विशुद्धि न हो। चित्त विशुद्धि तभीतक है जबतक दृष्टि विशुद्धि न हो। दृष्टि विशुद्धि तभीतक है जबतक कांक्षा (सन्देह) वितरण विशुद्धि न हो। यह विशुद्धि तभीतक है जबतक मार्गामार्ग ज्ञान दर्शन विशुद्धि न हो। यह विशुद्धि तभीतक है जबतक प्रतिपदज्ञानदर्शन विशुद्धि न हो। यह विशुद्धि तभी तक है जबतक ज्ञान दर्शन विशुद्धि न हो। ज्ञान दर्शन विशुद्धि तभी तक है जबतक उपादान रहित परिनिर्वाणको प्राप्त नहीं होता। मैं इसी अनुपादान परिनिर्वाणके लिये भगवानके पास ब्रह्मचर्य प्राप्त करता हू।

सारिपुत्र प्रसन्न होजाता है। इस प्रकार दोनों महानागों (महावीरों) ने एक दूसरेको सुभाषितका अनुमोदन किया।

नोट-इस सूत्रसे सच्चे भिक्षुका लक्षण प्रगट होता है जो सबसे पहले कहा है कि अल्पेच्छ हो इत्यादि। फिर यह दिखलाया है कि निर्वाण सर्व उपादान या परिग्रहसे रहित शुद्ध है। उसकी प्राप्तिके लिये सात मार्ग या श्रेणियां हैं। जैसे सात जगह रथ बदलकर मार्गको तय करते हुए कोई श्रावस्तीसे साकेत आवे। चलनेवालेका ध्येय साकेत है। इसी ध्येयको सामने रखते हुए वह सात रथोंके द्वारा पहुच आवे। इसी तरह साधकका ध्येय निरुपादान निर्वाणपर पहुचना है। इसीके लिये क्रमश सात शक्तियोंमें पूर्णता प्राप्त करता हुआ निर्वाणकी तरफ बढ़ता है। (१) शील विशुद्धि या सदाचार पालनेसे चित्तविशुद्धि होगी। कामवासनाओंसे रहित मन होगा। (२) फिर चित्त विशुद्धिसे दृष्टि विशुद्धि होगी अर्थात् श्रद्धा निर्मल

जो णिहदमोहगंठी रागपदोसे खवीय सामण्ण।
होज समसुहदुक्खो सो सोक्ख अक्खय लहदि ॥१०७-२॥
जो खविदमोहकलुसो विसयविरत्तो मणो णिरुंभित्ता।
समवट्ठिदो सहावे सो अप्पाणं हवदि धादा। ॥ १०८-२ ॥
इहलोग णिरावेक्खो अप्पडिबद्धो परम्मि लोयम्मि।
जुत्ताहारविहारो रहिदकसाओ हवे समणो ॥ ४२-३ ॥

भावार्थ—जो मोहकी गांठको क्षय करके साधुपदमें स्थित होकर रागद्वेषको दूर करता है और सुख दुःखमें समभावका धारी होता है वही अविनाशी निर्वाण सुखको पाता है। जो महात्मा मोहरूप मैलको क्षय करता हुआ पांचों इन्द्रियोंके विषयोंसे विरक्त होता हुआ व मनको रोकता हुआ अपने शुद्ध स्वभावमें एकतासे ठहर जाता है, वही आत्माका ध्यान करनेवाला है। जो मुनि इस लोकमें विषयोंकी आशासे रहित है, परलोकमें भी किसी पदकी इच्छा नहीं रखता है, योग्य आहार विहारका करनेवाला है तथा क्रोधादि कषाय रहित है वही साधु है।

श्री कुंदकुंदाचार्य भावपाहुड़में कहते हैं—

जो जीवो भावंतो जीवसहावं सुभावसंजुत्तो।
सो जरमरण विणासकुणइ फुड लहइ णिव्वाण ॥ ६१ ॥

भावार्थ—जो जीव आत्माके स्वभावको जानता हुआ आत्माके स्वभावकी भावना करता है वह जरा मरणका नाश करता है और प्रगटपने निर्वाणको पाता है।

श्री शुभचंद्राचार्य ज्ञानार्णवमें कहते हैं—

अतुलसुखनिधान ज्ञानविज्ञानबीज
विलयगतकलंक शांतविश्वप्रचारम् ।
गलितसकलशंक विश्वरूप विशाल
भज विगतविकार स्वात्मनात्मानमेव ॥४३-१९॥

भावार्थ-हे आनन्द ! तू अपने ही आत्माके द्वारा अनंत सुख समुद्र, केवल ज्ञानका बीज कलंक रहित, सर्व संकल्पविकल्प रहित, सर्वशंका रहित, ज्ञानापेक्षा सर्वव्यापी, महान, तथा निर्विकार आत्माको ही भज, उसीका ही ध्यान कर।

ज्ञानभूषण भट्टारक तत्वज्ञानतरंगिणीमें कहते हैं—

संगत्यागो निर्जनस्थानकं च तत्वज्ञानं सर्वचिंताविमुक्ति ।
निर्बाधत्वं योगरोधो मुनीनां मुक्तये ध्याने हेतवोऽमी निरुक्ता ॥८-१६॥

भावार्थ—परिग्रहका त्याग, निर्जनस्थान तत्वज्ञान, सर्व चिंताओंका निरोध, बाधारहितपना मन वचन काय योगोंकी गुप्ति, ये ही मोक्षके हेतु ध्यानके साधन कहे गए हैं।

श्री देवसेनाचार्य तत्वसारमें कहते हैं—

परदब्बं देहाई कुणइ ममत्तिं च जाम तस्सुवरिं।
परसमयादो ताव बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं ॥ ३४ ॥

भावार्थ-पर द्रव्य शरीरादि है। जब तक उनके ऊपर ममता करता है तबतक पर पदार्थमें रत है व तबतक नाना प्रकार कर्मोको बांधता है।

(२०) मज्झिमनिकाय–निवाय सूत्र ।

गौतमबुद्ध कहते हैं–नैवायिक (बहेलिया शिकारी) यह सोच कर निवाय (मृगोंके शिकारके लिये जालमें बोए खेत) नहीं बोता कि इस मेरे बोए निवायको खाकर मृग दीर्घायु हो चिरकाल तक गुजारा करें। वह इसलिये बोता है कि मृग इस मेरे बोए निवायको मूर्छित हो भोजन करेंगे, मदको प्राप्त होंगे, प्रमादी होंगे, स्वेच्छाचारी होंगे (और मैं इनको पकड़ लूंगा)।

भिक्षुओ! पहले मृगों (के दल) ने इस निवायको मूर्छित हो भोजन किया। प्रमादी हुए (पकड़े गए) नैवायिकके चमत्कारसे मुक्त नहीं हुए।

दूसरे मृगों (के दल) ने पहले मृगोंकी दशाको विचार इस निवाय भोजनसे विरत हो भयभीत हो अरण्य स्थानोंमें विहार किया। ग्रीष्मके अंतिम मासमें घास पानीके क्षय होनेसे उनका शरीर अत्यंत दुर्बल होगया, बल वीर्य नष्ट होगया तब नैवायिकके बोए निवायको खानेके लिये लौटे मूर्छित हो भोजन किया (पकड़े गए)।

तीसरे मृगों (के दल) ने दोनों मृगोंके दलोंकी दशाको देख यह सोचा कि हम इस निवायको अमूर्छित हो भोजन करें। उन्होंने अमूर्छित हो भोजन किया। प्रमादी नहीं हुये। तब नैवायिकने उन मृगोंके गमन आगमनके मार्गको चारों तरफसे डंडोंसे घेर लिया। ये भी पकड़ लिये गये।

चौथे मृगों (के दल) ने तीनों मृगोंकी दशाको विचार यह सोचा कि हम वहां आश्रय लें जहां नैवायिककी गति नहीं है, वहां

ममूर्छित होकर निवापको भोजन करें। उन्होंने ऐसा ही किया। स्वेच्छाचारी नहीं हुए। तब नैवायिकको यह विचार हुआ कि ये मृग चतुर है। हमारे छोड़े निवापको खाते हैं परन्तु उसने उनके आश्रयको नहीं देख पाया जहांकि वे पकड़े जाते। तब नैवायिकको यह विचार हुआ कि इनके पीछे पड़ें तब सारे मृग इस खेत निवापको छोड़ देंगे, क्यों न हम इन चौथे मृगोंकी उपेक्षा करें ऐसा सोच उसने उपेक्षित किया। इस प्रकार चौथे मृग नैवायिकके फंदसे छूटे-पकडे नहीं गए। भिक्षुओ! अर्थको समझानेके लिये यह उपमा कही है। निवाप पांच काम गुणो (पांच इन्द्रिय भोगों) का नाम है। नैवायिक पापी मारका नाम है। मृग समूह श्रमण-ब्राह्मणोंका नाम है। पहले प्रकारके मृगोंके समान श्रमण ब्राह्मणोंने इन्द्रिय विषयोंको मूर्छित हो भोग-प्रमादी हुए स्वेच्छाचारी हुए, मारके फंदेमें फंस गए।

दूसरे प्रकारके श्रमण ब्राह्मण [illegible] श्रमण ब्राह्मणोंकी दशा को विचार कर, विषयभोगसे सर्वथा वि[illegible]त हो, अरण्य स्थानोंका अवगाहन कर विहरने लगे। वहां शाकाहारी हुए जमीनपर पड़े फलोंको खानेवाले हुए। ग्रीष्मके अन्त समयमें घास पानीके क्षय होनेपर भोजन न पाकर बल वीर्य [illegible] [illegible]नसे चित्तकी शांति नष्ट होगई। लौटकर विषय भोगोंको मूर्छित होकर करने ल[illegible]। मारके फन्देमें फंस गए।

तीसरे प्रकारके श्रमण ब्राह्मणोंने दोनों ऊपरके श्रमण ब्राह्मणोंकी दशा विचार यह सोचा क्यों न हम अमूर्छित हो विषयभोग करें ऐसा सोच अमूर्छित हो विषयभो[illegible] [illegible]या, स्वेच्छाचारी नहीं हुए

किन्तु उनमें ये दृष्टियां हुईं (इन दृष्टियोंके या नयोंके विचारमें फंस गए) (१) लोक शाश्वत है, (२) (अथवा) यह लोक अशाश्वत है, (३) लोक सान्त है, (४) (अथवा) लोक अनन्त है, (५) वही जीव है सोई शरीर है, (६) (अथवा) जीव अन्य है, शरीर अन्य है (७ तथागत (बुद्ध मुक्त) मरनेके बाद होते हैं, (८) (अथवा) तथागत मरनेके बाद नहीं होते,(९) तथागत मरनेके बाद होते भी हैं, नहीं भी होते, (१०) तथागत मरनेके बाद न होते हैं न नहीं होते हैं। इस प्रकार इन (विकल्प जालोंमें फंसकर) तीसरे श्रमण ब्राह्मण भी मारके फंदेसे नहीं छूटे।

चौथे प्रकारके श्रमण ब्राह्मणोंने पहले तीन प्रकारके श्रमण ब्राह्मणोंकी दशाको विचार यह सोचा कि क्यों न हम वहां आश्रय ग्रहण करें जहां मारकी और मार परिषद्‌की गति नहीं है। वहां हम अमूर्छित हो भोजन करेंगे मदको प्राप्त न होंगे स्वेच्छाचारी न होंगे, ऐसा सोच उन्होंने वैसा ही किया। ये चौथे श्रमण ब्राह्मण मारके फंदेसे छूटे रहे।

कैसे (आश्रय करनेसे) मार और मार परिषद्‌की गति नहीं होती।

(१) भिक्षु कामों (इच्छाओं)से रहित हो, बुरी बातोंसे रहित हो सवितर्क सविचार विवेकज प्रीतिसुख रूप प्रथम ध्यानको प्राप्त हो, विहरता है। इस भिक्षुने मारको अन्धा कर दिया। मारकी चक्षुसे अगम्य बनकर वह भिक्षु पापी मारसे अदर्शन होगया।

(२) फिर वह भिक्षु अवितर्क अविचार समाधिजन्य द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(३) फिर वह भिक्षु उपेक्षा सहित, स्मृतिसहित, सुखविहारी तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(४) फिर वह भिक्षु अदु ख व असुखकर, उपेक्षा व स्मृतिसे परिशुद्ध, चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(५) फिर वह भिक्षु रूप सञ्ज्ञाओंको, प्रतिघा (प्रतिहिंसा) सञ्ज्ञाओंको, नानापनकी सञ्ज्ञाओंको मनमें न करके " अनन्त आकाश है " इस आकाश आनन्त्य आयतनको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(६) फिर वह भिक्षु आकाश पतनको सर्वथा, अतिक्रमण कर "अनन्त विज्ञान है" इस विज्ञान आनन्त्य आयतनको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(७) फिर वह भिक्षु सर्वथा विज्ञान आयतनको अतिक्रमण कर " कुछ नहीं " इस आकिंचन्यायतनको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(८) फिर वह भिक्षु सर्वथा आकिंचन्यायतनको अतिक्रमण कर नैव सञ्ज्ञा न असञ्ज्ञा आयनतको प्राप्त हो विहरता है। इसने भी मारको अन्धा कर दिया।

(९) फिर वह भिक्षु सर्वथा नैव सञ्ज्ञा न असञ्ज्ञायतनको उल्लघन कर सञ्ज्ञावेदयित निरोधको प्राप्त हो विहरता है। प्रज्ञासे देखते हुए इसके आस्रव परिक्षीण होजाते हैं। इस भिक्षुने मारको अन्धा

कर दिया। वह भिक्षु मारकी चक्षुमें अगम्य बनकर पापीसे अदर्शन होगया। लोकमें विमत्तिक (अनासक्त) हो उत्तीर्ण होगया है।

नोट–इस सूत्रमें सम्यक्समाधिरूप निर्वाण मार्गका बहुत ही बढ़िया कथन किया है। तीन प्रकारके व्यक्ति मोक्षमार्गी नहीं हैं। (१) वे जो विषयोंमें लम्पटी है, (२) वे जो विषयभोग छोडकर जाते परन्तु वासना नहीं छोड़ते, वे फिर लौटकर विषयोंमें फंस जाते। (३) वे जो विषयभोगोंमें तो मूर्छित नहीं होते, मात्रारूप अप्रमादी हो भोजन करते परन्तु नाना प्रकार विकल्प जालोंमें या संदेहोंमें फंसे रहते हैं, वे भी समाधिको नहीं पाते। चौथे प्रकारके भिक्षु ही सर्व तरह संसारसे बचकर मुक्तिको पाते है, जो काम भोगोंमें विरक्त होकर रागद्वेष व विकल्प छोड़कर निश्चिन्त हो, ध्यानका अभ्यास करते है। ध्यानके अभ्यासको बढ़ाते बढ़ाते बिल्कुल समाधि भावको प्राप्त होजाते हैं तब उनके आस्रव क्षय होजाते हैं वे संसारसे उत्तीर्ण होजाते है। वास्तवमें पांच इन्द्रियरूपी खेतोंको अनासक्त हो भोगना और तृष्णासे बचे रहना ही निर्वाण प्राप्तिका उपाय है। गृहीपदमें भी ज्ञान वैराग्ययुक्त आवश्यक अर्थ व काम पुरुषार्थ साधते हुए ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। साधु होकर पूर्ण इन्द्रिय विजयी हो, संयम साधनके हेतु सरस नीरस भोजन पाकर ध्यानका अभ्यास बढाना चाहिये। ध्यान समाधिसे विभूषित वीतरागी साधु ही संसारसे पार होता है।

अब जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य काम भोगोंके सम्बन्धमें कहते हैं–

प्रवचनसारमें कहा है —

ते पुण उदिण्णतण्हा दुहिदा तण्हाहिं विसयसोक्खाणि।
इच्छंति अणुभवंति य आमरणं दुक्खसंतत्ता॥ ७९-१॥

भावार्थ-संसारी प्राणी तृष्णाके वशीभूत होकर तृष्णाकी दाहसे दुःखी होते हुए इन्द्रिय भोगोंके सुखोंको बारबार चाहते हैं और भोगते हैं। मरण पर्यन्त ऐसा करते हैं तथापि संतापित रहते हैं।

शिवकोट आचार्य भगवती आराधनामें कहते हैं।

जीवस्स णत्थि तित्ती, चिरं पि भोएहि भुंजमाणेहिं।
तित्तीये विणा चित्तं, उब्बूरं उब्बुदं होइ॥ १२६४॥

भावार्थ-चिरकाल तक भोगोंको भोगते हुए भी इस जीवको तृप्ति नहीं होती है। तृप्ति विना चित्त घबड़ाया हुआ उड़ा उड़ा फिरता है। आत्मानुशासनमें कहा है—

दृष्ट्वा जनं व्रजसि किं विषयाभिलाषं
स्वल्पोऽप्यसौ तव महज्जनयत्यनर्थम्।
स्नेहाद्युपक्रमजुषो हि यथातुरस्य
दोषो निषिद्धचरणं न तथेतरस्य॥ १९१॥

भावार्थ-हे मूढ़! तू लोगोंकी देखादेखी क्यों विषयभोगोंकी इच्छा करता है। ये विषयभोग थोड़ेसे भी सेवन किये जावें तौभी महान अनर्थको पैदा करते हैं। रोगी मनुष्य थोड़ा भी घी आदिका सेवन करे तो उसको वे दोष उत्पन्न
उत्पन्न करते हैं। इसलिये विवेकी
उचित नहीं। श्री अमितगति

भावार्थ-इन्द्रियजन्यसुख सुख नहीं है किंतु जो तृष्णारूपी आग पैदा होती है उसकी वेदनाका क्षणिक इलाज है। सुख तो आत्मामें स्थित होनेसे होता है, जब परिणाम विशुद्ध हों व निराकुलता हो।

मैंने इन्द्रियजन्य सुखको बारबार भोगा है, वह कोई अपूर्व नहीं है। वह तो आकुलताका कारण है। मैंने निर्विकल्प आत्मीक सुख कभी नहीं पाया, उसीके लिये मेरी भावना है।

---

(२१) मज्झिमनिकाय-महासारोपम सूत्र।

गौतमबुद्ध कहते हैं-(१) भिक्षुओ! कोई कुल पुत्र श्रद्धा पूर्वक घरसे बेघर हो प्रव्रजित (संन्यासी) होता है। "मैं जन्म जरा, मरण, शोकादि दुःखोंमें पड़ा हूं। दुःखसे लिप्त मेरे लिये क्या कोई दुःखस्कंधक अन्त करनेका उपाय है?" वह इस प्रकार प्रव्रजित हो लाभ सत्कार व प्रशंसाका भागी होता है। इसीसे सन्तुष्ट हो अपनेको परिपूर्ण सकल्प समझता है कि मैं प्रशंसित हूं, दूसरे भिक्षु अप्रसिद्ध शक्तिहीन हैं। वह इस लाभ सत्कार प्रशंसासे मतवाला होता है, प्रमादी बनता है, प्रमत्त हो दुःखमें पड़ता है।

जैसे सार चाहनेवाला पुरुष सार (हीर या असली रस गूदा) की खोजमें घूमता हुआ एक सारवाले महान वृक्षके रहते हुए उसके सारको छोड़, फल्गु (सार और छिलकेके बीचका काठ) को छोड़, पपड़ीको छोड़, शाखा पत्तेको काटकर और उसे ही सार समझ लेकर चला जावे, उसको आंखवाला पुरुष देखकर ऐसा

वह कि द पुरुष ' थारा म रको हीं समझा । मारसे जो काम करना है वह इस शाला पत्तेम न होगा। ऐसे ही भिक्षुओं यह वह है जिस भिक्षुने ब्रह्मचय (बा.री शील) क शाखा पत्तेको ग्रहण किया और उतनेहीसे अपना कृत्यको समाप्त कर दिया।

(२) कोई कुल पुत्र श्रद्धासे प्रव्रजित हो लाभ, सत्कार, श्लोकका भागी होता है। वह इससे सन्तुष्ट नहीं होता व उस लाभ दिसे न घमण्ड करता है न दूसरोंको नीच देखता है, वह मतवार व प्रमादी नहीं होता, प्रमाद रहित हो शील (सदाचार) का आरा धन करता है, उसीसे सन्तुष्ट हो, अपनेको पूर्ण संकल्प समझता है वह उस शील सम्पदासे अभिमान करता है, दूसरोंको नीच समझत है। यह भी प्रमादी हो दुखित होता है।

जैसे भिक्षुओ! कोई सारका खोजी पुरुष छाल और पपड़ीको काटकर व उसे सार समझकर लेकर चला जावे, उसको आंखवाला देखकर कहे कि आप सारको नहीं समझे। सारसे जो काम करना है वह इस छाल और पपड़ीसे न होगा। तब वह दुखित होता है। ऐसे ही यह शील सम्पदाका अभिमानी भिक्षु दुखित होता है। क्योंकि इसमें यहीं अपना कृत्यकी समाप्ति करदी।

(३) कोई कुलपुत्र श्रद्धापूर्वक प्रव्रजित हो लाभादिसे सन्तुष्ट न हो, शील सम्पदासे मतवाला न हो समाधि सम्पदाको पाकर उससे सन्तुष्ट होता है, अपनेको परिपूर्ण संकल्प समझता है। वह उस समाधि सम्पदासे अभिमान करता है, दूसरोंको नीच समझता है, वह तरह मतवाला होता है।

प्रमादी हो दुःखित होता है। जैसे कोई सार चाहनेवाला सारको छोड़ फल्गु जो छालको काटकर, सार समझकर लेकर चला जावे उसको आखवाला पुरुष देखकर कहे आप सारको नहीं समझे काम न निकलेगा, तब वह दुःखित होता है। इसी तरह वह कुल-पुत्र दुःखित होता है।

(४) कोई कुलपुत्र श्रद्धासे प्रव्रजित हो लाभादिमें, शील-सम्पदासे व समाधि सम्पदासे मतवाला नहीं होता है। प्रमादरहित हो ज्ञानदर्शन (तत्व साक्षात्कार) का आराधन करता है। वह उस ज्ञानदर्शनमें सतुष्ट होता है। परिपूर्ण सङ्कल्प अपनेको समझता है। वह इस ज्ञानदर्शनमे अभिमान करता है, दूसरोंको नीच समझता है, वह मतवाला होता है, दुःखी होता है।

जैसे भिक्षुओ! सार खोजी पुरुष सारको छोड़कर फल्गुको काटकर सार समझ लेकर चला जावे। उसको आखवाला पुरुष देख-कर कहे कि यह सार नहीं है तब वह दुःखित होता है। इसी तरह यह भिक्षु भी दुःखित होता है।

(५) कोई कुलपुत्र लाभादिमें, शील सम्पदासे, समाधि सम्पदासे मतवाला न होकर ज्ञान दर्शनमें सतुष्ट होता है। परन्तु पूर्ण सङ्कल्प नहीं होता है। वह प्रमाद रहित हो शीघ्र मोक्षको आरा-धित करता है। तब यह सभव नहीं कि वह भिक्षु उस सद्य प्राप्त (अकालिक) मोक्षसे च्युत होवे। जैसे सारखोजी पुरुष सारको ही काटकर यही सार है, ऐसा समझ ले जावे, उसे कोई आखवाला पुरुष देख कर कहे कि अहो! आपने सारको समझा है, आपका

सारसे जो काम लेना है वह मतलब पूर्ण होगा। ऐसे ही वह कुछ पुन अकालिक मोक्षस च्युत न होगा।

इस प्रकार भिक्षुओ! यह ब्रह्मचर्य (भिक्षुपद) लाभ, सत्कार श्लोक पानेके लिये नहीं है शील सम्पत्तिके लामके लिये नहीं हैं, न समाधि सम्पत्ति लाभके लिये हैं, न ज्ञानदर्शन (तत्वको ज्ञान और साक्षात्कार) के लाभके लिये हैं। जो यह न च्युत होनेवाली चित्तकी मुक्ति है इसीके लिये यह ब्रह्मचर्य है, यही सार है, यही अन्तिम निष्कर्ष है।

नोट—इस सूत्रमें बताया है कि साधकको मात्र एक निर्वाण लाभका ही उद्देश्य रखना चाहिये। जबतक निर्वाणका लाभ न हो तबतक नीचेकी श्रेणियोंमें सतोष नहीं मानना चाहिये, न किसी प्रकारका अभिमान करना चाहिये। जैसे सारको चाहनेवाला वृक्षकी शाखा आदि ग्रहण करेगा तो सार नहीं मिलेगा। जब सारको ही पासकेगा तब ही उसका इच्छित फल सिद्ध होगा। उसी तरह साधुको लाभ सत्कार श्लोकमें सतोष न मानना चाहिये, न अभिमान करना चाहिये। शील या व्यवहार चारित्रकी योग्यता प्राप्तकर भी सतोष मानकर बैठ न रहना चाहिये, आगे समाधि प्राप्तिका उद्यम करना चाहिये। समाधिकी योग्यता होजाने पर फिर समाधिके बलसे ज्ञानदर्शनका आराधन करना चाहिये। अर्थात् शुद्ध ज्ञानदर्शनमय होकर रहना चाहिये। फिर उससे मोक्षभावका अनुभव करना चाहिये। इस तरह वह शाश्वत् मोक्षको पा लेता है।

जैन सिद्धान्तानुसार भी यही भाव है कि साधुको ख्याति

नाम पूजाका रागी न होकर व्यवहार चारित्र अर्थात् शीलको भले प्रकार पालकर ध्यान समाधिको बढ़ाकर धर्मध्यानकी पूर्णता करके फिर शुक्लध्यानमें आकर शुद्ध ज्ञानदर्शन स्वभावका अनुभव करना चाहिये। इसीके अभ्याससे शीघ्र ही भाव मोक्षरूप अर्हत् पदको प्राप्त होकर मुक्त होजायगा। फिर मुक्तिसे कभी च्युत नहीं होगा। यहां बौद्ध सूत्रमें जो ज्ञानदर्शनका साक्षात्कार करना कहा है इसीसे सिद्ध है कि वह कोई शुद्ध ज्ञानदर्शन गुण है जिसका गुणी निर्वाण स्वरूप आत्मा है। यह ज्ञान रूप वेदना संज्ञा संस्कार जनित विज्ञानसे भिन्न है। पांच स्कंधोंसे पर है। सर्वथा क्षणिकवादमें अच्युत मुक्ति सिद्ध नहीं होसक्ती है। पाली बौद्ध साहित्यमें अनुभवगम्य शुद्धात्माका अस्तित्व निर्वाणको अजात व अमर माननेसे प्रगटरूपसे सिद्ध होता है, सूक्ष्म विचार करनेकी जरूरत है।

जैन सिद्धांतके कुछ वाक्य—

श्री नागसेनजी तत्वानुशासनमें कहते हैं—

रत्नत्रयमुपादाय त्यक्त्वा बंधनिबंधनं।
ध्यानमभ्यस्यतां नित्यं यदि योगिन्मुमुक्षसे ॥ २२३ ॥
ध्यानाभ्यासप्रकर्षेण त्रुटन्मोहस्य योगिनः।
चरमांगस्य मुक्तिः स्यात्तदा अन्यस्य च क्रमात् ॥२२४॥

भावार्थ—हे योगी! यदि तू निर्वाणको चाहता है तो तू सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्चारित्र इस रत्नत्रय धर्मको धारण कर तथा राग द्वेष मोहादि सर्व बंधके कारण भावोंको त्याग कर और भलेप्रकार सदा ध्यान समाधिका अभ्यास कर। जब ध्यानका उत्कृष्ट साधन होजायगा तब उसी शरीरसे निर्वाण पानेवाले योगीका

सर्व मोह क्षय होजायगा तथा जिसको ध्यानका उत्तम पद न प्राप्त होगा वह क्रमसे निर्वाणको पावेगा।

समयसारमें कहा है—

वदणियमाणि धरंता सीलाणि तहा तवं च कुव्वंता ।
परमट्ठबाहिरा जेण तेण ते होंति अण्णाणी ॥ १६० ॥

भावार्थ—व्रत व नियमोंको पालते हुए तथा शील और तपको करते हुए भी जो परमार्थ जो तत्वसाक्षात्कार है उससे रहित है वह आत्मज्ञान रहित अज्ञानी ही है। पंचास्तिकायमें कहा है—

जस्स हिदयेणुमत्तं वा परदव्वम्हि विज्जदे रागो ।
सो ण विजाणदि समयं सगस्स सव्वागमधरोवि ॥ १६७ ॥
तम्हा णिव्वुदिकामो णिस्संगो णिम्ममो य हविय पुणो ।
सिद्धेसु कुणदि भत्तिं णिव्वाणं तेण पप्पोदि ॥ १६९ ॥

भावार्थ—जिसके मनमें परमाणु मात्र भी राग निर्वाण स्वरूप आत्माको छोड़कर परद्रव्यमें है वह सर्व आगमको जानता हुआ भी अपने शुद्ध स्वरूपको नहीं जानता है। इसलिये सर्व प्रकारकी इच्छाओंसे विरक्त होकर, ममता रहित होकर, तथा परिग्रह रहित होकर किसी परको न ग्रहण करके जो सिद्ध स्वभाव स्वरूपमें भक्ति करता है, मैं निर्वाण स्वरूप हूं ऐसा ध्याता है, वही निर्वाणको पाता है।

मोक्षपाहुड़में कहा है—

सव्व कसाय मुत्तं गारवमयरायदोसवामोहं ।
लोयववहारविरदो अप्पा झाएह झाणत्थो ॥ २७ ॥

भावार्थ—मोक्षका अर्थी सर्व क्रोधादि कषायोंको छोड़कर,

अहंकार, मद, राग, द्वेष मोह, व लौकिक व्यवहारसे विरक्त होकर ध्यानमें लीन होकर अपने ही आत्माको ध्याता है।

शिवकोटि भगवती आराधनामें कहते हैं–

जह जह णिव्वेदुवसम, वेरग्गदयादमा पवड्ढंति।
तह तह अब्भासयरं, णिव्वाणं होइ पुरिसस्स ॥ १८६२ ॥
वयर रदणेसु जहा, गोसीसं चन्दणं व गंधेसु।
वेरुलियं व मणीणं, तह ज्ञाणं होइ खवयस्स ॥ १८९४ ॥

भावार्थ–जैसे जैसे साधुमें धर्मानुराग शांति, वैराग्य, दया, व संयम बढ़ते जाते हैं वैसे निर्वाण अति निकट आता जाता है। जैसे रत्नोंमें हीरा प्रधान है, सुगन्ध द्रव्योंमें गोसीर चंदन प्रधान है, मणियोंमें वैडूर्यमणि प्रधान है तैसे साधुके सर्व व्रत व तपोंमें ध्यान समाधि प्रधान है।

आत्मानुशासनमें कहा है–

यमनियमनितान्तः शान्तबाह्यान्तरात्मा
परिणमितसमाधिः सर्वसत्त्वानुकम्पी।
विहितहितमिताशी क्लेशजालं समूलं
दहति निहतनिद्रो निश्चिताध्यात्मसारः ॥ २२५ ॥

भावार्थ–जो साधु यम नियममें तत्पर हैं, जिनका अंतरङ्ग बहिरंग शांत है, जो समाधि भावको प्राप्त हुए हैं, जो सर्व प्राणी-मात्र पर दयावान हैं, शास्त्रोक्त हितकारी मात्रासे आहारके करनेवाले हैं, निद्राको जीतनेवाले हैं, आत्माके स्वभावका सार जिन्होंने पाया है, वे ही ध्यानके बलसे सर्व दुःखोंके जाल संसारको जला देते हैं।

समधिगतसमस्ता सर्वसावद्यदूराः।
स्वहितनिहितचित्ता शान्तसर्वप्रचाराः।
स्वपरसफलजल्पा सर्वसंकल्पमुक्ता
कथमिह न विमुक्तेर्भाजनं ते विमुक्ता ॥ २२६ ॥

भावार्थ–जिन्होंने सर्व शास्त्रोंका रहस्य जाना है, जो सर्व पापोंसे दूर हैं, जिन्होंने आत्महितमें अपना मन लगाया है, जिन्होंने सर्व इन्द्रियोंकी इच्छाओंको शमन कर दिया है, जिनकी वाणी स्वपर हितकारिणी है, जो सर्व संकल्पोंसे रहित हैं, ऐसे विरक्त साधु निर्वाणके पात्र क्यों न होंगे? अवश्य होंगे।

ज्ञानार्णवमें कहा है—

आशाः सद्यो विपद्यन्ते यान्त्यविद्याः क्षयं क्षणात्।
म्रियते चित्तभोगीन्द्रो यस्य सा साम्यभावना ॥ ११–२४ ॥

भावार्थ–जिसके समभावकी शुद्ध भावना है, उसकी आशाएं शीघ्र नाश हो जाती हैं, अविद्या क्षणभरमें चली जाती है, मनरूपी नाग भी मर जाता है।

(२२) मज्झिमनिकाय महागोसिंग सूत्र।

एकसमय गौतम बुद्ध गोसिंग सालवनमें बहुतसे प्रसिद्ध शिष्योंके साथ विहार करते थे। जैसे सारिपुत्र, महामौद्गलायन महाकाश्यप, अनुरुद्ध, रेवत, आनन्द आदि।

महामौद्गलायनकी प्रेरणासे सायंकालको ध्यानसे उठकर प्रसिद्ध [illegible] पास धर्मचर्चाके लिये आए।

तब सारिपुत्रने कहा—आवुस आनन्द रमणीय है। गोसिंग सालवन चांदनी रात है। सारी पांतियोंमें साल फूले हुए हैं। मानो दिव्य गंध बह रही है। आवुस आनन्द! किस प्रकारके भिक्षुसे यह गोसिंग सालवन शोभित होगा?

(१) आनन्द कहते हैं—जो भिक्षु बहुश्रुत, श्रुतधर, श्रुतसंयमी हो, जो धर्म आदि मध्य अन्तमें कल्याण करनेवाले, सार्थक, सव्यंजन, केवल, परिपूर्ण, परिशुद्ध, ब्रह्मचर्यको बखाननेवाले हैं। वैसे धर्मोंको उसने बहुत सुना हो, धारण किया हो, वचनसे परिचय किया हो, मनसे परखा हो, दृष्टि (साक्षात्कार) में धंसा लिया हो, ऐसा भिक्षु चार प्रकारकी परिषदको सर्वांगपूर्ण, पद व्यंजन युक्त स्वतंत्रता पूर्वक धर्मको अनुशयों (चित्रमलों) के नाशके लिये उपदेशे। इस प्रकारके भिक्षु द्वारा गोसिंग सालवन शोभित होगा।

तब सारिपुत्रने रेवतसे पूछा—यह वन कैसे शोभित होगा?

(२) रेवत कहते हैं—भिक्षु यदि ध्यानरत, ध्यानप्रेमी होवे, अपने भीतर चित्तकी एकाग्रतामें तत्पर और ध्यानसे न हटनेवाला, विपश्यना (साक्षात्कारके लिये ज्ञान) से युक्त, शून्य गृहोंको बढानेवाला होवे इस प्रकारके भिक्षु द्वारा गोसिंग सालवन शोभित होगा।

तब सारिपुत्रने अनुरुद्धसे यही प्रश्न किया।

(३) अनुरुद्ध कहते हैं—जो भिक्षु अमानव (मनुष्यसे अगोचर) दिव्यचक्षुसे सहस्रों लोकोंको अवलोकन करे। जैसे आंखवाला पुरुष महलके ऊपर खड़ा सहस्रों चक्रोंके समुदायको देखे, ऐसे भिक्षुसे यह वन शोभित होगा।

तब सारिपुत्रने महाकाश्यपने यही प्रश्न पूछा।

(४) महाकाश्यप कहते हैं–भिक्षु स्वय आरण्यक (वनमें रहने वाला) हो, और आरण्यकता प्रशंसक हो, स्वय पिंडपातिक (मधुकरी वृत्तिवान्) हो और पिंडपातिकता प्रशंसक हो, स्वय पांशुकूलिक (फेंके चिथड़ोंको पहननेवाला) हो, स्वय त्रैचीवरिक (सिर्फ तीन वस्त्रोंको पासमें रखनेवाला) हो, स्वय अल्पेच्छु हो, स्वय सतुष्ट हो, प्रविविक्त (एकान्त विचरनेवाला) हो, ममत्व रहित हो, उद्योगी हो सदाचारी हो, समाधियुक्त हो, प्रज्ञायुक्त हो, विमुक्ति युक्त हो, विमुक्ति ज्ञान दर्शनसे युक्त हो व ऐसा ही उपदेश देने वाला हो, ऐसे भिक्षुसे यह वन शोभित होगा।

तब सारिपुत्रने महामौद्गलायनसे यही प्रश्न किया।

(५) महामौद्गलायन कहते हैं दो भिक्षु धर्म सम्बन्धी कथा करें। वह एक दूसरेसे प्रश्न पूछें, एक दूसरेको प्रश्नका उत्तर दें, चिढ़ न करें, उनकी कथा धर्म सम्बधी चले। इस प्रकारके भिक्षुसे यह वन शोभित होगा।

तब महामौद्गलायनने सारिपुत्रसे यही प्रश्न किया।

(६) सारिपुत्र कहते हैं–एक भिक्षु चित्तको वशमें करता है, स्वय चित्तके वशमें नहीं होता। वह जिस विहार (ध्यान प्रकार) को पाकर पूर्वाह्न समय विहरना चाहता है। उसी विहारसे पूर्वाह्न समय विहरता है। जिस विहारको प्राप्तकर मध्याह्न समय विहरना चाहता है उसी विहारसे विहरता है, जैसे किसी राजाके पास दुशालोंके करण्डक (पिटारे) भरे हों, वह जिस दुशालेको

पूर्वाह्न समय, जिस मध्याह्न समय, जिसे संध्या समय धारण करना चाहे उसे धारण करे। इस प्रकारके भिक्षुसे यह वन शोभता है।

तब सारिपुत्रने कहा—हम सब भगवानके पास जाकर ये बातें कहें। जैसे वे हमें बतलाएं वैसा हम धारण करें। तब वे भगवान बुद्धके पास गए और सबका कथन सुनाया। तब सारिपुत्रने भगवानसे कहा—किसका कथन सुन्दर है।

(७ गौतम बुद्ध कहते हैं—तुम सभीका भाषित एक एक करके सुभाषित है और मेरी भी सुनो। जो भिक्षु भोजनके बाद भिक्षासे निबटकर, आसन मार शरीरको सीधा रख, स्मृतिको सामने उपस्थित कर सङ्कल्प करता है। मैं तबतक इस आसनको नहीं छोड़ूंगा जबतक कि मेरे चित्तमल चित्तको न छोड़ देंगे। ऐसे भिक्षुसे गोसिंग वन शोभित होगा।

नोट-यह सूत्र साधुकी शिक्षाहेतु बहुत उपयोगी है। साधुको एकांतमें ही ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। परम सन्तोषी होना चाहिये। समर्ग रहित व इच्छा रहित होना चाहिये, वे सब बातें जैन सिद्धान्तानुसार एक साधुके लिये माननीय है। जो निर्ग्रंथ सर्व परिग्रह त्यागी साधु जैनोंमें होते हैं वे वस्त्र भी नहीं रखते हैं, एक भुक्त होते हैं। जैसा यहां जिन स्थानमें ठहर कर ध्यान करना कहा है वैसे ही जैन साधुको भी पूर्वाह्न मध्याह्न व संध्याको ध्यानका अभ्यास करना चाहिये। ध्यानके अनेक भेद हैं। जिस ध्यानमें जब चित्त एकाग्र हो उसी प्रकारके ध्यानका तप ध्यावे। अपने आत्माके ज्ञानदर्शन स्वभावका साक्षात्कार करे साधुको बहुत

मुक्तिरैकान्तिकी तस्य चित्ते यस्याचला धृति ।
तस्य नैकान्तिकी मुक्तिर्यस्य नास्त्यचला धृति ॥ ७१ ॥

भावार्थ-जिसके मनमें निश्चल आत्मामें थिरता है उसको अवश्य निर्वाणका लाभ होता है, जिसके चित्तमें ऐसा निश्चल भेद-नहीं है उसको निर्वाण प्राप्त नहीं होसकता है।

ज्ञानार्णवमें कहा है —

निःशेषक्लेशनिर्मुक्तममूर्त्तं परमाक्षरम्।
निष्प्रपञ्चं व्यतीताक्षं पश्य स्वं स्वात्मनि स्थितं ॥ ३४ ॥

भावार्थ-हे आत्मन्! तू अपने ही आत्मामें स्थित, सर्व क्लेशोंसे रहित, अमूर्तीक, परम अविनाशी, निर्विकल्प और अतींद्रिय अपने ही स्वरूपका अनुभव कर।

रागादिपङ्कविश्लेषात्प्रसन्ने चित्तवारिणि।
परिस्फुरति निःशेषं मुनेर्वस्तुकदम्बकम् ॥ १७-२३ ॥

भावार्थ-रागादि कर्दमके अभावसे जब चित्तरूपी जल शुद्ध होजाता है तब मुनिके सर्व वस्तुओंका स्वरूप स्पष्ट भासता है।

तत्वज्ञान तरंगिणीमें कहा है—

व्रतानि शास्त्राणि तपांसि निर्जने निवासमन्तर्बहि सङ्गमोचनं।
मौनं क्षमातापनयोगधारणं चिच्चिन्तयामा कलयन् शिवं श्रयेत् ॥ ११-१४॥

भावार्थ-जो कोई शुद्ध चेतन व स्वरूपके मननके साथ साथ व्रतोंको पालता है, शास्त्रोंको पढ़ता है। तप करता है, निर्जनस्थानमें रहता है, बाहरी भीतरी परिग्रहका त्याग करता है, मौन धारता है, क्षमा पालता है व आतापन योग धारता है वही मोक्षको पाता है।

(२३) मज्झिमनिकाय महागोपालक सूत्र।

गौतमबुद्ध कहते हैं-भिक्षुओ! ग्यारह बातों (अंगों) से युक्त ग्वाला गोयूथकी रक्षा करनेके अयोग्य है-(१) रूप (वर्ण) का जाननेवाला नहीं होता (२) लक्षणमें भी चतुर नहीं होता, (३) काली मक्खियोंको हटानेवाला नहीं होता, (४) घावका ढांकनेवाला नहीं होता, (५) धुआं नहीं करता, (६) तीर्थ (जलका उतार) नहीं जानता (७) पानको नहीं जानता, (८) वीथी (डगर) को नहीं जानता (९) चारागाहका जानकार नहीं होता, (१०) बिना छोड़े (मरे) भी दुह लेता है (११) गायोंके पितरों, गायोंके स्वामी वृषभ जो हैं उनकी अधिक पूजा (भोजनादि प्रदान) नहीं करता।

ऐसे ही ग्यारह बातोंसे युक्त भिक्षु इस धर्म विनयमें वृद्धि विरूढि विपुलता पानेके अयोग्य है। भिक्षु-(१) रूपको जाननेवाला नहीं होता। जो कोई रूप है वह सब चार महाभूत (पृथ्वी, जल, वायु, तेज) और चार भूतोंको लेकर बना है इसे यथार्थसे नहीं जानता।

(२) लक्षणमें चतुर नहीं होता-भिक्षु यह यथार्थसे नहीं जानता कि कर्मके कारण (लक्षण) से बाल (मूढ) होता है और कर्मके कारणसे पण्डित होता है।

(३) भिक्षु आसाटिक (काली मक्खियों) का हटानेवाला नहीं होता है-भिक्षु उत्पन्न काम (भोग वासना) के वितर्कको स्वीकार करता है, छोड़ता नहीं, हटाता नहीं, अलग नहीं करता, अभावको प्राप्त नहीं कराता, इसी तरह उत्पन्न व्यापाद (परपीड़ा) के

वितर्कका उत्पन्न हिंसाके वितर्कका, तथा अन्य उत्पन्न होने अकुशल धर्मोका स्वागत करता है, छोडता नहीं।

(४) भिक्षु व्रण (घात) का ढाकनेवाला नहीं होता है– भिक्षु आंखसे रूपको देखकर उसके निमित्त (अनुकूल प्रतिकूल होने) का ग्रहण करनेवाला होता है। अनुव्यंजन (पहचान) का ग्रहण करनेवाला होता है। जिस विषयमें इस चक्षु इन्द्रियको संवत न रखनेपर लोभ और दौर्मनस्य आदि बुराइयां अकुशल धर्म आ चिपटते हैं उसमें संयम करनेके लिये तत्पर नहीं होता। चक्षुइंद्रियकी रक्षा नहीं करता, चक्षुइन्द्रियके संवरमें लग नहीं होता। इसी तरह श्रोत्रसे शब्द सुनकर, घ्राणसे गंध सूंघकर, जिह्वासे रस चखकर, कायासे स्पृश्यको स्पर्शकर, मनसे धर्मको जानकर निमित्तका ग्रहण करनेवाला होता है। इनके संयममें लग नहीं होता।

(५) भिक्षु धुआं नहीं करता–भिक्षु सुने अनुसार, जाने अनुसार, धर्मको दूसरोंके लिये विस्तारसे उपदेश करनेवाला नहीं होता।

(६) भिक्षु तीर्थको नहीं जानता–जो वह भिक्षु बहुश्रुत, आगम प्राप्त, धर्मधर, विनयधर, मात्रिका धर है उन भिक्षुओंके पास समय समयपर जाकर नहीं पूछता, नहीं प्रश्न करता कि यह कैसे है, इसका क्या अर्थ है, इसलिये वह भिक्षु अविवृतको विवृत नहीं करता, खोलकर नहीं बतलाता, अस्पष्टको स्पष्ट नहीं करता, अनेक प्रकारके शंका–स्थानवाले धर्मोंमें उठी शंकाका निवारण नहीं करता।

(७) भिक्षु पानको नहीं जानता–भिक्षु तथागतके बतलाये धर्म विनयके उपदेश किये जाते समय उसके अर्थवेद (अर्थ ज्ञान) को नहीं पाता।

(८) भिक्षु घाटको नहीं जानता—भिक्षु आर्य अष्टांगिक मार्ग ([illegible]) को ठीक ठीक नहीं जानता।

(९) भिक्षु गोचरमें कुशल नहीं होता—भिक्षु चार स्मृति प्रस्थानोंको ठीक ठीक नहीं जानता (देखो अध्याय–८ कायस्मृति, वेदनास्मृति, चित्तस्मृति धर्मस्मृति)।

(१०) भिक्षु बिना छोड़े अशेषकर दूहनेवाला होता है—भिक्षुओंको श्रद्धालु गृहपति भिक्षान्न, निवास, आसन, पथ्य और चिकित्सा सामग्रीसे अच्छी तरह सन्तुष्ट करते हैं, वहां भिक्षु मात्रासे (यथाशक्ति) ग्रहण करना नहीं जानता।

(११) भिक्षु चिरकालसे प्रव्रजित रूपके नायक जो स्थविर भिक्षु हैं उन्हें अतिरिक्त पूजासे पूजित नहीं करता—भिक्षु स्थविर भिक्षुओंके लिये गुप्त और प्रगट मैत्रीयुक्त कायिक कर्म, वाचिक कर्म और मानस कर्म नहीं करता।

इस तरह इन ग्यारह धर्मोंसे युक्त भिक्षु इस धर्म विनयमें वृद्धि विरूढ़िको प्राप्त करनेमें अयोग्य है।

भिक्षुओ, ऊपर लिखित ग्यारह बातोंसे विपरीत ग्यारह धर्मोंसे युक्त गोपालक गौवोंकी रक्षा करनेके योग्य होता है। इसी प्रकार ऊपर कथित ग्यारह धर्मोंसे विरुद्ध ग्यारह धर्मोंसे युक्त भिक्षु वृद्धि विरूढ़ि, विपुलता प्राप्त करनेके योग्य है। अर्थात् भिक्षु—(१) रूपका यथार्थ जाननेवाला होता है, (२) बाल और पण्डितके कर्मलक्षणोंको जानता है, (३) काम, व्यापाद, हिंसा, लोभ, दौर्मनस्य आदि अकुशल धर्मोंका त्याग करता है, (४) पांचों इन्द्रिय क

उठे मनसे जानकर निनिरग्राही नहीं होता- वांतयवान रहता है, (५) जाने हुए धर्मको दूसरोंके लिय विस्तारसे उपदेश करता है, (६) बहुत श्रुत भिक्षुओंके पास समय समय पर प्रश्न पूछता है, (७) तथगतके बतलाए धर्म और विनयके उपदेश किये जाते समय अर्थ ज्ञानको पाता है, (८) आर्य-अष्टांगिक मार्गको ठीक २ जानता है, (९) चारों स्मृति प्रस्थानोंको ठीक ठीक जानता है, (१०) भोजनादि ग्रहण करनेमें मात्रको जानता है, (११) स्थविर भिक्षुओंके लिये गुप्त और प्रकट मैत्रीयुक्त कायिक, वाचिक, मानस कर्म करता है।

नोट-इस सूत्रमें मूर्ख और चतुर ग्वालेका दृष्टान्त देकर अज्ञानी साधु और ज्ञानी साधुकी शक्तिका उपयोगी वर्णन किया है। वास्तवमें जो साधु इन ग्यारह सुधर्मोंसे युक्त होता है वही निर्वाणमार्गकी तरफ बढ़ता हुआ उन्नति कर सक्ता है उसे (१) सर्व पौद्गलिक रचनाका ज्ञाता होकर मोह त्यागना चाहिये। (२) पहिनके लक्षणोंको जानकर स्वयं पवित्र रहना चाहिये। (३) क्रोधादि कषायोंका त्यागी होना चाहिये। (४) पांच इन्द्रिय व मनका संयमी होना चाहिये। (५) परोपकारादि धर्मका उपदेश होना चाहिये। (६) विनय सहित बहुज्ञातासे शंका निवारण करते रहना चाहिये। (७) धर्मोपदेशक सारको समझना चाहिये। (८) मोक्षमार्गका ज्ञाता होना चाहिये। (९) धर्मरक्षक भावनाओंको स्मरण करना चाहिय। (१०) संतोषपूर्वक अल्पाहारी होना चाहिये। (११) बड़ोंकी सेवा मैत्रीयुक्त भावसे मन वचन कायसे करनी चाहिये। जैन सिद्धान्तानुसार भी ये सब गुण साधुमें होने चाहिये।

जैन सिद्धान्तके कुछ वाक्य—

सारसमुच्चयमें कहा है —

ज्ञानं ध्यानोपवासैश्च परीषहजयस्तथा।
शीलसंयमयोगैश्च स्वात्मानं भावयेत् सदा ॥ ८ ॥

भावार्थ—साधुको योग्य है कि शास्त्रज्ञान, आत्मध्यान, तथा उपवासादि तप करते हुए तथा क्षुधा तृषा दुर्वचन, आदि की परीषह जीतते हुए शील संयम तथा योगाभ्यासके साथ अपने शुद्धात्माकी या निजात्माकी भावना करे।

गुरुशुश्रूषया जन्म चित्तं सद्ध्यानचिन्तया।
श्रुतं यस्य समे याति विनियोगं स पुण्यभाक् ॥ १९ ॥

भावार्थ जिसका जन्म गुरुकी सेवा करनेमें, मन यथार्थ ध्यानके करनेमें, शास्त्रज्ञान समताभावके धारणमें काम आता है वही पुण्यात्मा है।

कषायान् शत्रुवत् पश्येद्विषयान् विषवत्तथा।
मोहं च परमं व्याधिमेवमूचुर्विचक्षणाः ॥ २९ ॥

भावार्थ—क्रोधादि कषायोंको शत्रुके समान देखे इन्द्रियोंके विषयोंको विषके बराबर जाने मोहको बड़ा भारी रोग जाने, ऐसा ज्ञानी आचार्योंने उपदेश दिया है।

धर्मामृतं सदा पेयं दुःखातङ्कविनाशनम्।
यस्मिन् पीते परं सौख्यं जीवानां जायते सदा ॥ ६२ ॥

भावार्थ—दुःखरूपी रोगोंको नाश करनेवाले धर्मामृतका सदा पान करना चाहिये। अर्थात् धर्मके स्वरूपको भक्तिसे मानना, सुनना व मनन करना चाहिये, जिस धर्मामृतके पीनेसे जीवोंको परम सुख सदा ही रहता है।

निःसंगिनेऽपि वृत्तढ्या निस्नेहाः सुश्रुतिप्रियाः ।
अभूषेऽपि तपोभूषास्ते पात्रं योगिनः सदा ॥ २०१ ॥

भावार्थ-जो परिग्रह रहित होने पर भी चारित्रके धारी हैं, जगतके पदार्थोंसे स्नेहरहित होने पर भी सत्य आगमके प्रेमी हैं, भूषण रहित होने पर भी तप ध्यानादि आभूषणोंके धारी हैं ऐसे ही योगी सदा धर्मके पात्र हैं।

मोक्षपाहुडमें कहा है—

उद्धद्धमज्झलोये केई मज्झं ण अहयमेगागी।
इयभावणाए जोई पावंति हु सासयं ठाणं ॥ ८१ ॥

भावार्थ-इस ऊर्ध, अधो, मध्य लोकमें कोई पदार्थ मेरा नहीं है, मैं एकाकी हूं, इस भावनासे युक्त योगी ही शाश्वत पद निर्वाणको पाता है।

भगवती आराधनामें कहा है—

सव्वग्गंथविमुक्को सीदीभूदो पसण्णचित्तो य।
जं पावइ पीइसुहं ण चक्कवट्टी वि तं लहदि ॥ ११८२ ॥

भावार्थ-जो साधु सर्व परिग्रह रहित है, शांत चित्त है व प्रसन्नचित्त है उनको जो प्रीति और सुख होता है उसको चक्रवर्ती भी नहीं पासक्ता है।

आत्मानुशासनमें कहा है—

विषयविरतिः संगत्यागः कषायविनिग्रहः ।
शमयमदमास्तत्त्वाभ्यासस्तपश्चरणोद्यमः ॥
नियमितमनोवृत्तिर्भक्तिर्जिनेषु दयालुता ।
भवति कृतिनः संसाराब्धेस्तटे निकटे सति ॥ २२४ ॥

भावार्थ-जिनके संसार सागरके पार होनेका तट निकट आगया है उनको इतनी बातोंकी प्राप्ति होती है, (१) इन्द्रियोंके विषयोंमें विरक्त भाव, (२) परिग्रह का त्याग, (३) क्रोधादि कषायों पर विजय, (४) शांत भाव (५) इन्द्रियोंका निरोध, (६) अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य व परिग्रह त्याग महाव्रत, (७) तत्वोंका अभ्यास, (८) तपका उद्यम, (९) मनकी वृत्तिका निरोध, (१०) श्री जिनेन्द्र भगवानमें भक्ति, (११) प्राणियोंपर दया। ज्ञानार्णवमें कहा है-

शीतांशुरश्मिसंपर्काद्विसर्पति यथाम्बुधिः।
तथा सद्वृत्तसंसर्गान्नृणां प्रज्ञापयोनिधिः॥ १७-१५॥

भावार्थ-जैसे चन्द्रमाकी किरणोंकी संगतिसे समुद्र बढ़ता है, वैसे सम्यक्चारित्रधारी साधुओंकी संगतिसे प्रज्ञा (भेद विज्ञान) रूपी समुद्र बढ़ता है।

निःशेषभुवनैकप्रदीप
[illegible] निर्भरानन्दकाष्ठाम्।
परमनिर्वाणप्रदर्शनम्
परिकलय विशुद्धं स्वात्मनात्मानमेव ॥१०३-३२॥

भावार्थ-तू अपने ही आत्माके द्वारा सर्व जगतके पदार्थोंके दिखानेके लिये अनुपम दीपकके समान, इन्द्रियातीत, महान, परमानन्द पूर्ण, परम बुद्धिके भीतर भेद विज्ञान द्वारा प्रगट ऐसे आत्माका अनुभव कर।

स कश्चित् परमानन्दो वीतरागस्य जायते।
येन लोकत्रयैश्वर्यमप्यचिन्त्यं तृणायते ॥ १८-२३ ॥

भावार्थ—वीतरागी साधुके भीतर ऐसा कोई अपूर्व परमानंद पैदा होता है, जिसके सामने तीन लोकका अचिन्त्य ऐश्वर्य भी तृणके समान है।

(२४) मज्झिमनिकाय चूलगोपालक सूत्र।

गौतम बुद्ध कहते हैं–भिक्षुओ! पूर्वकालमें मगध निवासी एक मूर्ख गोपालकने वर्षाके अंतिम मासमें शरदकालमें गंगानदीके इस पारको बिना सोचे, उस पारको बिना सोचे वे घाट ही विदेहकी ओर दूसरे तीरको गायें हांक दीं, वे गाएं गंगानदीके स्रोतके मध्यमें पड़ कर वहीं विनाशको प्राप्त हो गईं। सो इसी लिये कि वह गोपालक मूर्ख था। इसी प्रकार जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इस लोक व परलोकसे अनभिज्ञ हैं, मारके स्थान अस्थानसे अनभिज्ञ हैं, मृत्युके स्थान अस्थानसे अनभिज्ञ हैं, उनके उपदेशोंको जो सुनने योग्य, श्रद्धा करनेयोग्य समझेंगे उनके लिए यह चिरकाल तक अहितकर दुःखकर होगा।

भिक्षुओ! पूर्वकालमें एक मगधवासी बुद्धिमान ग्वालेने वर्षाके अंतिम मासमें शरदकालमें गंगानदीके इस पार व उस पारको सोचकर घाटसे उत्तर तीरपर विदेहकी ओर गाएं हांकीं। उसने जो वे गायोंके पितर, गायोंके नायक वृषभ थे, उन्हें पहले हांका। वे गंगाकी धारको तिरछे काटकर स्वस्तिपूर्वक दूसरे पार चले गए। तब उसने दूसरी शिक्षित बलवान गायोंको हांका, फिर बछड़े और बछियोंको हांका, फिर दुर्बल बछड़ोंको हांका, वे सब स्वस्तिपूर्वक दूसरे पार चले गए। उस समय तरुण कुछ ही दिनोंका

जैसा एक बछड़ा भी माताकी गर्दनके सहारे तैरते गंगाकी धारको तिरछे फाड़कर स्वस्तिपूर्वक पार चला गया। सो क्यों? इसी लिये कि बुद्धिमान ग्वालेने हांकी। ऐसे ही भिक्षुओं! जो कोई श्रमण या ब्राह्मण इस लोक परलोकके जानकार, मारके स्वरूप और उसके जानकार व मृत्युके स्वरूप अमृतके जानकार हैं उनके उपदेशोंको जो सुनने योग्य श्रद्धा करनेयोग्य समझेंगे उनके लिये यह चिरकालतक हितकर-सुखकर होगा।

(१) जैसे गयोंके नायक वृषभ स्वस्तिपूर्वक पार चले गए ऐसे ही जो य अर्हत क्षीणास्रव ब्रह्मचर्यवास समाप्त कृतकृत्य, भार मुक्त सत्य पदार्थको प्राप्त, भव बंधन रहित, सम्यग्ज्ञानद्वारा मुक्त हैं व मारकी धाराको तिरछे फाड़कर स्वस्तिपूर्वक पार जायगे।

(२) जैसे शिक्षित बलवान गाए पार होगईं, ऐसे ही जो भिक्षु पांच अवरभागीय संयोजनों (सत्काय दृष्टि) (आत्मवादकी मिथ्या दृष्टि) विचिकित्सा (संशय), शीलव्रत परामर्श (व्रत आचरणका अनुचित अभिमान) कामच्छन्द (भोगोंमें राग), व्यापाद (पश्चात्ताप द्वेष) के क्षयसे औपपातिक (अयोनिज देव) हो उस देवसे लौटकर न आ वहीं निर्वाणको प्राप्त करनेवाले हैं वे भी पार होजावेंगे।

(३) जैसे बछड़े बछड़िया पार होगईं वैसे जो भिक्षु तीन संयोजनोंके नाशसे-राग द्वेष मोहके निर्बल होनेसे सकृदागामी हैं, एक बार ही इस लोकमें आकर दुःखका अन्त करेंगे वे भी निर्वाणको प्राप्त करनेवाले हैं।

(४ जैसे एक निर्बल बछड़ा पार चला गया वैसे ही जो भिक्षु तीन संयोजनोंके क्षयसे स्रोतापन्न हैं, नियमपूर्वक संबोध (परम ज्ञान) परायण (निर्वाणपथ मी पथमें) न भ्रष्ट होनेवाले हैं, वे भी पार होंगे।

इस मेरे उपदेशको जो सुनने योग्य श्रद्धा योग्य मानेंगे उनके लिये यह चिरकाल तक हितकर सुखकर होगा। तथा कहा —

जानकारने इस लोक परलोकको प्रकाशित किया।
जो मारकी पहुंचमें हैं और जो मृत्युकी पहुंचमें नहीं है।
जानकार सबुद्धने सब लोकको जानकर।
निर्वाणकी प्राप्तिके लिये क्षेम (युक्त) अमृत द्वार खोल दिया।
पापी (मार) के स्रोतको छिन्न, विध्वस्त, विशृंखलित कर दिया।
भिक्षुओ! प्रमोदयुक्त होओ—क्षेमको चाह करो।

नोट—इस कथनके कथनसे यह दिखलाया है कि उपदेशदाता बहुत कुशल मोक्षमार्गका ज्ञाता व संसारमार्गका ज्ञाता होना चाहिये तब उसके उपदेशसे श्रोतागण सच्चा मोक्षमार्ग पाएंगे। जो स्वयं अज्ञानी है वह आप भी डूबेगा व दूसरको भी डुबाएगा। निर्वाणको अमरपद तथा एक क्षेमयुक्त स्थान कहा है इसलिये निर्वाण अभाव रूप नहीं होसक्ता क्योंकि कहा है—जो क्षीणास्रव होजाते हैं वे सत् पदार्थको प्राप्त करते हैं। यह सत पदार्थ निर्वाणरूप कोई वस्तु है जो शुद्धात्माके सिवाय और कुछ नहीं होसक्ती। तथा ऐसको सम्यग्ज्ञानसे मुक्त कहा है। यह सम्यग्ज्ञान सच्चा ज्ञान है जो उस विज्ञानसे भिन्न है जो रूपके द्वारा वेदना, संज्ञा, संस्कारसे पैदा

होता है। इसीको जैन सिद्धान्तमें केवलज्ञान कहा है। क्षीणास्रव साधु सयोगकेवली जिन होजाता है वह सर्वज्ञ वीतराग सत्‌रूप अर्हत् होजाता है वही शरीरके अन्तमें सिद्ध परमात्मा निर्वाणरूप होजाता है।

[illegible] में कहा है कि निर्वाणकी प्राप्तिके लिये अमृत द्वार खोल दिया जिसका मतलब यही है कि अमृतमई आनन्दको देनेवाला स्वानुभव रूप मार्ग खोल दिया यही निर्वाणका साधन है वहां निर्वाणमें भी परमानन्द है। वह अमृत अमर रहता है। यह सब कथन जैनसिद्धान्तमें मिलता है। जैनसिद्धांतके कुछ वाक्य—

पुरुषार्थसिद्ध्युपायमें कहा है —

मुख्योपचारविवरणनिरस्तदुस्तरविनेयदुर्बोधाः ।
व्यवहारनिश्चयज्ञाः प्रवर्तयन्ते जगति तीर्थम् ॥ ४ ॥

भावार्थ—जो उपदेशदाता व्यवहार और निश्चय मार्गको जानते हैं वे कभी निश्चयको, कभी व्यवहारको मुख्य कहकर शिष्योंका कठिन कठिन अज्ञानको मेटते हैं वे ही जगतमें धर्मतीर्थका प्रचार करते हैं। स्वानुभव निश्चय मोक्षमार्ग है, उसकी प्राप्तिके लिये बाहरी सदाचार आदि व्यवहार मोक्षमार्ग है। व्यवहारके सहारे स्वानुभवका लाभ होता है। जो एक पक्ष पकड़ लेते हैं, उनको गुरु समझा कर ठीक मार्गपर लाते हैं।

आत्मानुशासनमें कहा है —

[illegible] प्रसमनस्कता प्रहरय [illegible]ोकस्थिति
[illegible] मनिभाव [illegible] प्रागेव [illegible] ।

प्राय प्रश्नसह प्रभु परमनाहारी परानिन्दया
ब्रूयाद्धर्मकथां गणी गुणनिधि प्रस्पष्टमिष्टाक्षर ॥ ५ ॥

भावार्थ–जो बुद्धिमान् हो, सर्व शास्त्रोंका रहस्य जानता हो, प्रश्नोंका उत्तर पहलेहीसे समझता हो, किसी प्रकारकी आशा तृष्णासे रहित हो, प्रभावशाली हो, शांत हो, लोकके व्यवहारको समझता हो, अनेक प्रश्नोंको सुन सक्ता हो, महान हो, परके मनको हरनेवाला हो, गुणोंका सागर हो, साफ साफ मीठे अक्षरोंका कहनेवाला हो ऐसा आचार्य सतनायक परकी निन्दा न करता हुआ धर्मका उपदेश करे।

सारसमुच्चयमें कहा है—

समारावासनिर्विण्णा शिवसौख्यसमुत्सुका ।
सद्भिस्ते गदिता प्राज्ञा' शेषा शास्त्रस्य वचका ॥२१२॥

भावार्थ–जो साधु संसारके वाससे उदास है। तथा कल्याणमय मोक्षके सुखके लिये सदा उत्साही है वे ही बुद्धिमान् पवित्र साधुओंके द्वारा कहे गए हैं। इनको छोड़कर शेष सब अपने पुरुषार्थके ठगनेवाले है।

तत्वानुशासनमें कहा है—

तत्राभ्यासोऽभवेन्मुक्ति किंचिन्मात्र कारण।
विरक्त कामभोगेभ्यस्त्यक्तसमस्तपरिग्रह ॥ ४१ ॥
अभ्येत्य सम्यगाचार्य दीक्षा जैनेश्वरीं श्रित ।
तप सयमसम्पन्न प्रमादरहितास्य ॥ ४२ ॥
सम्यग्निर्णीतजीवादिध्येयवस्तुव्यवस्थिति ।
आर्तरौद्रपरित्यागाल्लब्धचित्तप्रसत्तिक ॥ ४३ ॥

निरोध होता है, विज्ञानके निरोधसे नामरूपका निरोध होता है, नामरूपके निरोधसे षडायतनका निरोध होता है, षडायतनके निरोधसे स्पर्शका निरोध होता है, स्पर्शके निरोधसे वेदनाका निरोध होता है, वेदनाके निरोधसे तृष्णाका निरोध होता है, तृष्णाके निरोधसे उपादानका निरोध होता है। उपादानके निरोधसे भवका निरोध होता है, भवके निरोधसे जाति (जन्म) का निरोध होता है, जातिके निरोधसे जरा, मरण, शोक, क्रन्दन, दुःख, दौर्मनस्यका निरोध होता है। इस प्रकार केवल दुःख स्कंधका निरोध होता है।

भिक्षुओ! इसप्रकार (पूर्वोक्त क्रमसे) जानते देखते हुए क्या तुम पूर्वके छोर (पुराने समय या पुराने जन्म) की ओर दौड़ोगे? 'अहो! क्या हम अतीत कालमें थे? या हम अतीत कालमें नहीं थे? अतीत कालमें हम क्या थे? अतीत कालमें हम कैसे थे? अतीत कालमें क्या होकर हम क्या हुए थे?" नहीं।

८-भिक्षुओ! इस प्रकार जानते देखते हुए क्या तुम बादके छोर (आगे आनेवाले समय) की ओर दौड़ोगे। 'अहो! क्या हम भविष्यकालमें होंगे? क्या हम भविष्यकालमें नहीं होंगे? भविष्यकालमें हम क्या होंगे? भविष्यकालमें हम कैसे होंगे? भविष्य कालमें क्या होकर हम क्या होंगे? नहीं—

भिक्षुओ! इस प्रकार जानते देखते हुए क्या तुम इस वर्तमानकालमें अपने भीतर इस प्रकार कहने सुननेवाले (कथंकथी) होंगे। अहो! "क्या मैं हूं?" क्या मैं नहीं हूं? मैं क्या हूं? मैं कैसा हूं? यह सत्व (प्राणी) कहांसे आया? वह कहां जानेवाला

(१-१२) (पृ० ३५४) उपस्थित नहीं होता तो गर्भ धारण नहीं होता। माता पिता एकत्र होते हैं। माता ऋतुमती होती है किंतु गन्धर्व उपस्थित नहीं होते तो भी गर्भ धारण नहीं होता। जब माता पिता एकत्र होते हैं, माता ऋतुमती होती है और गन्धर्व उपस्थित होता है। इस प्रकार तीनोंके एकत्रित होनेसे गर्भ धारण होता है। तब उस गरू-भारवाले गर्भको बड़े संशयके साथ माता कोखमें नौ या दस मास धारण करती है। फिर उस गरू भारवाले गर्भको बड़े संशयके साथ माता नौ या दस मासके बाद जनती है। तब उस जात (सन्तान) को अपने ही दूधसे पोसती है।

तब भिक्षुओ! वह कुमार बड़ा होनेपर, इन्द्रियोंके परिपक्व होनेपर जो वह बच्चोंके खिलौने हैं। जैसे कि वङ्कक (वंका), घटिक (घटिया), मोक्खचिक (मुंडका बट्टू), चिंगुलक (चिंगुलिया) पात्र आढक (तराजू), रथक (गाड़ी), धनुक (धनुही), उनसे खेलता है। तब भिक्षुओ! वह कुमार और बड़ा होने पर, इन्द्रियोंके परिपक्व होनेपर, संयुक्त संलिप्त हो पांच प्रकारके काम गुणों (विषय-भोगों) को सेवन करता है। अर्थात् चक्षुसे विज्ञेय इष्ट रूपोंको, श्रोत्रसे इष्ट शब्दोंको, घ्राणसे इष्ट गन्धोंको जिह्वासे इष्ट रसोंको, कायासे इष्ट स्पर्शोंको सेवन करता है। वह चक्षुसे प्रिय रूपोंको देखकर रागयुक्त होता है, अप्रिय रूपोंको देखकर द्वेषयुक्त होता है। कायिक स्मृति (होश) को कायम रख छोटे चित्तसे विहरता है। वह उस चित्तकी विमुक्ति और प्रज्ञाकी विमुक्तिको ठीकसे ज्ञान नहीं करता, जिससे कि उसकी सारी बुराइयां नष्ट

वर्ती है। प्रव्रज्या (संन्यास) मैदान (खुला स्थान) है, इस प्रकार नितान्त सर्वथा परिपूर्ण, सर्वथा परिशुद्ध खरादे शंख जैसे उज्ज्वल ब्रह्मचर्यका पालन घरमें रहते हुए सुकर नहीं है। क्यों न मैं सिर, दाढ़ी मुंडकर, काषाय वस्त्र पहन घरसे बेघर हो प्रव्रजित होऊं?" सो वह दूसरे समय अपनी अल्प भोग राशिको या महाभोग राशिको, अल्प ज्ञातिमंडलको या महा ज्ञातिमंडलको छोड़ सिर दाढ़ी मुंड़ा, काषाय वस्त्र पहन घरसे बेघर हो प्रव्रजित होता है। (

वह इस प्रकार प्रव्रजित हो, भिक्षुओंकी शिक्षा, समान-जीविकाको प्राप्त हो प्राणातिपात छोड़ प्राण हिंसासे विरत होता है। दंडत्यागी, शस्त्रत्यागी, लज्जालु, दयालु, सर्व प्राणियोंका हितकर और अनुकम्पक हो विहरता है। अदिन्नादान (चोरी) छोड़ दिन्नादायी (दियेका लेनेवाला) दियेका चाहनेवाला पवित्रात्मा हो विहरता है। अब्रह्मचर्यको छोड़ ब्रह्मचारी हो ग्राम्यधर्म मैथुनसे विरत हो, आरचारी (दूर रहनेवाला) होता है। मृषावादको छोड़ मृषावादसे विरत हो, सत्यवादी, सत्यसंध लोकका अविसंवादक, विश्वासपात्र होता है। पिशुन वचन (चुगली) छोड़ पिशुन वचनसे विरत होता है। इन्हें फोड़नेके लिये यहां सुनकर वहां कहनेवाला नहीं होता या उन्हें फोड़नेके लिये वहांसे सुनकर यहां कहनेवाला नहीं होता। वह तो फूटोंको मिलानेवाला, मिले हुओंको न फोड़नेवाला, एकतामें प्रसन्न, एकतामें रत, एकतामें आनंदित हो, एकता करनेवाली वाणीका बोलनेवाला होता है, कटु वचन छोड़ कटु वचनसे विरत होता है। जो वह वाणी कर्णसुखा, प्रेमणीया, हृदयंगमा,

क॰प बहुजन काता-बहुजन मया है, वैसी वाणीका बोलनेवाला होता है। प्रलापको छोड़ प्रलापसे विरत होता है। समय देखकर बोलनेवाला यथार्थवादी अर्थवादी धर्मवादी विनयवादी हो तात्पर्य युक्त पर्युक्त सार्थक, सायुक्त वाणीका बोलनेवाला होता है।

वह बीज समुदाय भूत समुदायके विनाशसे विरत होता है। एकाहारी, रातको उपरत (रातको न खानेवाला) विकाल (मध्य होतर) भोजनसे विरत होता है। माला, गन्ध विलेपनके धारण मंडन विभूषणसे विरत होता है। उच्चशयन और महाशयनसे विरत होता है। सोना चांदी लेनेसे विरत होता है। कच्चा अनाज आदि लेनेसे विरत होता है। स्त्री कुमारी, दासीदास, भेड़बकरी, मुर्गी सूअर हाथी गाय, घोड़ा घोड़ी खेत घर लेनेसे विरत होता है। दूत बनकर जानेसे विरत होता है। क्रय विक्रय करनेसे विरत होता है। तराजूकी ठगी कांसकी ठगी, मान (तौल) की ठगीसे विरत होता है। घूस वंचना जालसाजी कुटिलयोग, छेदन, वध, बंधन छापा मारने, ग्रामादिक विनाश करने, डाल डालनेसे विरत होता है।

वह शरीरके वस्त्र व पेटके खानेसे सन्तुष्ट रहता है। वह जहां जहां जाता है अपना सामान लिये ही जाता है जैसे कि पक्षी जहां कहीं उड़ता है अपने पक्ष भारके साथ ही उड़ता है। इसी प्रकार भिक्षु शरीरके वस्त्र और पेटके खानेसे सन्तुष्ट होता है वह इस प्रकार आर्य (निर्दोष) शीलस्कंध (सदाचार समूह) से युक्त हो अपने भीतर निर्दोष सुखको अनुभव करता है।

वह आंखसे रूपको देखकर निमित्त (आकृति आदि) और अनुव्यंजन (चिह्न) का ग्रहण करनेवाला नहीं होता। क्योंकि चक्षु इन्द्रियको अरक्षित रख विहरनेवालेको राग द्वेष बुराइयां अकुशल धर्म उत्पन्न होते हैं। इसलिये वह उसे सुरक्षित रखता है, चक्षुइन्द्रियकी रक्षा करता है, चक्षुइन्द्रियमें संवर ग्रहण करता है। इसी तरह श्रोत्रसे शब्द सुनकर, घ्राणसे गंध ग्रहण कर, जिह्वासे रस ग्रहण कर कायासे स्पर्श ग्रहण कर, मनसे धर्म ग्रहण कर निमित्तग्राही नहीं होता है, उन्हें संवर युक्त रखता है। इस प्रकार वह आर्य इन्द्रिय संवरसे युक्त हो अपने भीतर निर्मल सुखको अनुभव करता है।

वह आनेजानेमें जानकर करनेवाला (संप्रजन्य युक्त) होता है। अवलोकन विलोकनमें, समेटने फैलानेमें, संघाटी पात्र चीवरके धारण करनेमें, खानपान भोजन आस्वादमें, मल मूत्र विसर्जनमें, जाते खड़े होते, बैठते सोते, जागते, बोलते, चुप रहते संप्रजन्य युक्त होता है। इस प्रकार वह आर्यस्मृति संप्रजन्यसे युक्त हो अपनेमें निर्मल सुखका अनुभव करता है।

वह इस आर्य शील-स्कन्धसे युक्त, इस आर्य इन्द्रिय संवरसे युक्त इस आर्य स्मृति संप्रजन्यसे युक्त हो एकान्तमें अरण्य, वृक्ष छाया, पर्वत कन्दरा, गिरिगुहा, श्मशान, वन प्रान्त, खुले मैदान या पुआलके गंजमें वास करता है। वह भोजनके बाद आसन मारकर, कायाको सीधा कर स्मृतिको सन्मुख ठहरा कर बैठता है। वह लोकमें अभिध्या (लोभको) छोड़ अभिध्या रहित चित्तवाला हो

विहरता है । जिसको अभिध्यासे शुद्ध करता है । (२) व्यापाद (द्रोह) दोषको छोड़कर व्यापाद रहित चित्तवाला हो सारे प्राणियों। (?) अनुकम्पा हो विहरता है । व्यापादके दोषसे चित्तको शुद्ध करता है (३) स्त्यान मृद्ध (शारीरिक, मानसिक आलस्य) को छोड़ स्त्यान मृद्ध रहित हो, आलोक संज्ञावाला (रोशन ख्याल) हो, स्मृति और सम्प्रजन्य (होश)से युक्त हो विहरता है, (४) औद्धत्य-कौकृत्य (उद्धतपने और हिचकिचाहट) को छोड़ अनुद्धत भीतर से शांत हो विहरता है (५) विचिकित्सा (सन्देह) को छोड़, विचिकित्सा रहित हो, निसकोच भलाइयोंमें रम हो विहरता है । इस तरह वह इन अभिध्या आदि पांच नीवरणोंको हटा कर इनसे चित्त मलों को जान उनके दुर्बल करनेके लिये काम विषयोंसे अलग हो बुराइयोंसे अलग हो, विवेकसे उत्पन्न एव वितर्क विचारयुक्त प्रीति सुखवाले प्रथम ध्यानको प्राप्त हो विहरता है । और फिर वह वितर्क और विचारके शांत होनेपर, भीतरकी प्रसन्नता चित्तकी एकाग्रताको प्राप्तकर वितर्क विचार रहित, समाधिसे उत्पन्न प्रीति सुखवाले द्वितीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है और फिर प्रीति और विरागसे उपेक्षावाला हो, स्मृति और सम्प्रजन्य युक्त हो, कायासे सुख अनुभव करता विहरता है । जिसको कि आर्य लोग उपेक्षक, स्मृतिमान् और सुखविहारी कहते हैं । ऐसे तृतीय ध्यानको प्राप्त हो विहरता है और फिर वह सुख और दुःखके विनाशसे, सौमनस्य और दौर्मनस्यके पूर्व ही अस्त हो जानेसे, दुःख सुख रहित और उपेक्षक हो, स्मृतिकी शुद्धतासे युक्त चतुर्थ ध्यानको प्राप्त हो विहरता है ।

वह चक्षुसे रूपको देखकर प्रिय रूपमें रागयुक्त नहीं होता, अप्रिय रूपमें द्वेषयुक्त नहीं होता। विशाल चित्तके साथ कायिक स्मृतिको कायम रखकर विहरता है। वह उस चित्तकी विमुक्ति और प्रज्ञाकी विमुक्तिको ठीकसे जानता है। जिससे उनके सारे अकुशल धर्म निरुद्ध होजाते हैं। वह इस प्रकार अनुरोध विरोधसे रहित हो, सुखमय, दुःखमय, न सुख न दुःखमय—जिस किसी वेदनाको अनुभव करता है, उसका वह अभिनंदन नहीं करता, अभिवादन नहीं करता, उसमें अवगाहन कर स्थित नहीं होता। उस प्रकार अभिनंदन न करने, अभिवादन न करते अवगाहन न करते जो वेदना विषयक नन्दी (तृष्णा) है वह उसकी निरुद्ध (नष्ट) होजाती है। उस नन्दीके निरोधसे उपादान (रागयुक्त ग्रहण) का निरोध होता है। उपादानके निरोधसे भवका निरोध भवके निरोधसे जाति (जन्म) का निरोध, जातिके निरोधसे जरा-मरण, शोक, क्रंदन, दुःख दौर्मनस्य है, हानि परेशानीका निरोध होता है। इस प्रकार इस केवल दुःख स्कंधका निरोध होता है। इसी तरह श्रोत्रसे शब्द सुनकर, घ्राणसे गंध सूंघकर, जिह्वासे रसको चखकर, कायासे स्पर्श वस्तुको छूकर मनसे धर्मोंको जानकर प्रिय धर्मोंमें रागयुक्त नहीं होता, अप्रिय धर्मोंमें द्वेषयुक्त नहीं होता। इस प्रकार इस दुःख स्कंधका निरोध होता है।

भिक्षुओ! मेरे संक्षेपसे कहे इस तृष्णा क्षय विमुक्ति (तृष्णाके विनाशसे होनेवाली मुक्ति) को धारण करो।

नोट—इस सूत्रमें संसारके नाशका और निर्वाणके मार्गका

बहुत ही सुंदर वर्णन किया है बहुत सूक्ष्म दृष्टिसे उस सूत्रका मनन करना योग्य है। इस सूत्रमें नीचे प्रकारकी बातोंको बताया है–

(१) सर्व संसार भ्रमणका मूल कारण पांचों इंद्रियोंके विषयोंके रागसे उत्पन्न हुआ विज्ञान है तथा इन्द्रियोंके प्राप्त ज्ञानसे जो अनेक प्रकार मनमें विचार होता है सो मनोविज्ञान है। इन छहों प्रकारके विज्ञानका क्षय ही निर्वाण है।

(२) रूप, वेदना, संज्ञा, संस्कार, विज्ञान ये पांच स्कंध ही संसार हैं। एक दूसरेका कारण है। रूप जड़ है, चार चेतन है। इनको Matter and Mind कह सक्ते हैं। इन मन विकल्प रूप या मनमें विकल्पकी वेदना आदिकी उत्पत्तिका मूल कारण रूपोंका ग्रहण है। य उत्पन्न होनेवाले हैं, नाश होनेवाले हैं, पराधीन हैं।

(३) ये पांचों स्कंध उत्पन्न व नाशी हैं। अपने नहीं ऐसा ठीक ठीक जानना, विश्वास करना सम्यग्दर्शन है। जिस किसीको यह श्रद्धा होगी कि संसारका मूल कारण विषयोंका राग है, यह राग त्यागने योग्य है वही सम्यग्दृष्टि है। यही आशय जैन सिद्धांतका है। सांसारिक आस्रवके कारण मात्र तत्वार्थसूत्र छठे अध्यायमें इन्द्रिय, कषाय, अव्रतादि कहा है। भाव यह है कि पांचों इंद्रियोंके द्वारा ग्रहण किये हुए विषयोंमें रागद्वेष होता है वह क्रोध मान, माया लोभ रूपमें जागृत होजाती हैं। कषायोंके आधीन हो हिंसा, झूठ, चोरी कुशील, परिग्रह ग्रहण इन पांच अव्रतोंको करता है। इस आस्रवका श्रद्धान सम्यग्दर्शन है।

(४) फिर इस सूत्रमें बताया है कि इस प्रकारके दर्शन ज्ञानको भि पाव रहय ही सभार है व इनका निरोध समाका नाश है, पकड़ कर बैठ न रहो। यह सम्यग्दर्शन तो निर्वाणका मार्ग है, जहाजके समान है, संसार पार होनेके लिये है।

भावार्थ—यह भी विकल्प छोककर सम्यक् सम धिको प्राप्त करना चाहिये जो साक्षात् निर्वाणका मार्ग है। मार्ग तब ही तक है, जहाजका आश्रय तब ही तक है जब तक पहुंचे नहीं। जैन सिद्धांतमें भी सम्यग्दर्शन दो प्रकारका बताया है। व्यवहार अ सत्वादिका श्रद्धान है, निश्चय स्वानुभव या समाधिभाव है। व्यवहारके द्वारा निश्चय पर पहुचना चाहिये। तब व्यवहार स्वयं छूट जाता है। स्वानुभव ही वास्तवमें निर्वाण मार्ग है व स्वानुभव ही निर्वाण है।

(५) फिर इस सूत्रमें चार तरहका आहार बताया है—जो संसारका कारण है। (१) ग्रासाहार या सूक्ष्म शरीर पोषक वस्तुका ग्रहण (२) स्पर्श अर्थात् पांचों इन्द्रियोंके विषयोंकी तरफ झुकना, (३) मन संचेतना मनमें इन्द्रिय सम्बन्धी विषयोंका विचार करते रहना, (४) विज्ञान—मनके द्वारा जो इन्द्रियोंके सबन्धसे स्त्री रागद्वेषरूप छाप पड़ जाती है—चेतना दृढ होजाती है वही विज्ञान है। इन चारों आहारोंके होनेका मूल कारण तृष्णाको बताया है। वास्तवमें तृष्णाके विना न तो भोजन कोई लेता है न इन्द्रियोंके विषयोंको ग्रहण करता है। जैन सिद्धांतमें भी तृष्णाको ही दुःखका मूल बताया है। तृष्णा जिसने नाश कर दी है वही भवसे पार होजाता है।

(६) इसी सूत्रमें इस तृष्णाके भी मूल कारण अविद्याको या

मिथ्याज्ञानको बताया है। मिथ्याज्ञानके स कारसे ही विज्ञान होता है। विज्ञानसे ही नामरूप होते हैं। अर्थात् सांसारिक प्राणीका शरीर और चेतनारूप ढांचा बनता है। हरएक जीवित प्राणी नामरूप है। नामरूपके होते हुए मनसहित भीतर पांच इन्द्रिय और मन ये छः आयतन (organ) होते हैं। इन छओंद्वारा विषयोंका स्पर्श होता है या ग्रहण होता है। विषयोंके ग्रहणसे सुख दु खादि वेदना होती है। वेदनासे तृष्णा होजाती है। जब किसी बालकको लड्डू खिलाया जाता है वह खाकर उसका सुख पैदाकर उसकी तृष्णा उत्पन्न कर देता है। जिससे वारवार लड्डूको मांगता है। जैन सिद्धांतमें भी मिथ्यादर्शन सहित ज्ञानको या अज्ञानको ही तृष्णाका मूल बताया है। मिथ्याज्ञानसे तृष्णा होती है तृष्णाके कारण उपादान या इच्छा ग्रहणकी होती है। इसीसे संसारका संस्कार पड़ता है। भव बनता है तब जन्म होता है, जन्म होता है तब दुःख शोक रोना पीटना, जरामरण होता है। इस तरह इस सूत्रमें सर्व दुःखोंका मूलकारण तृष्णा और अविद्याको बताया है। यह बात जैनसिद्धान्तसे सिद्ध है।

(७) फिर यह बताया है कि अविद्याके नाश होनेसे सर्व दुःखोंका निरोध होता है। अविद्याके ही कारण तृष्णा होती है। यही बात जैनसिद्धान्तमें है कि मिथ्याज्ञानका नाश होनेसे ही संसारका नाश होजाता है।

(८) फिर यह बताया है कि साधकको स्वानुभव या समाधि भावपर पहुंचनेके लिये सर्व भूत भविष्य वर्तमानके विकल्पोंको,

विचारोंको बन्द कर देना चाहिये। मैं क्या था, क्या हूँगा, क्या हूँ यह भी विकल्प नहीं करना, न यह विकल्प करना कि मैं शून्य हूं। शास्ता मेरे गुरु हैं न किसी श्रमणके कहे अनुसार विचारना। स्वयं प्रज्ञासे सर्व विकल्पोंको हटा कर तथा सर्व बाहरी मन आचरण क्रियाओंका भी विकल्प हटाकर भीतर ज्ञानदर्शनसे देखना तब तुर्त ही स्वात्मधर्म मिल जायगा। स्वानुभव होकर परमानन्दका लाभ होगा। जैनसिद्धान्तमें भी इसी स्वानुभव पर पहुंचानेका मार्ग सर्व विकल्पोंका त्याग ही बताया है। सर्व प्रकार उपयोग हटकर जब स्वात्मामें जगता है तब ही स्वानुभव उत्पन्न होता है। गौतम बुद्ध कहते हैं— अपने आपमें जाननेयोग्य इस धर्मके पास मैंने उपनीत किया है, पहुंचा दिया है। इन वचनोंमें स्वानुभव गोचर निर्वाण स्वरूप अजात, अमृत शुद्धात्मकी तरफ संकेत साफ साफ होरहा है। फिर कहते हैं—विज्ञोंद्वारा अपने आपमें जाननेयोग्य है। अपने आपमें वास्तव इसी गुप्त तत्वको बताते हैं, यही वास्तवमें परम सुख परमात्मा है या शुद्धात्मा है।

(९) फिर तृष्णाकी उत्पत्तिके व्यवहार मार्गको बताया है। बच्चेके जन्ममें गंधर्वका गर्भमें आना बताया है। गंधर्वको चेतना प्रवाह कहा है, जो पूर्वजन्मसे आया है। इसीको जैनसिद्धान्तमें पाप पुण्य सहित जीव कहते हैं। इससे सिद्ध है कि बुद्ध धर्म जड़से चेतनकी उत्पत्ति नहीं मानता है। जब वह बालक बड़ा होता है पांच इन्द्रियोंके विषयोंको ग्रहण करके इष्टमें राग अनिष्टमें द्वेष करता है। इस तरह तृष्णा पैदा होती है उसीका उपादान होते हुए...

मय बन्ता है भवमें जन्म जन्म मरण होते हुए नाना प्रकारके दुःख जो कि मरण तकके होते हैं। संसारका मूल कारण अज्ञान और तृष्णा है। इसी बातको दिखाया है। यही बात जैनसिद्धांत कहता है।

(१०) फिर संसारके दुःखोंके नाशका उपाय इस तरह बताया है—

(१) लोकके स्वरूपको स्वयं समझकर साक्षात्कार करनेवाले शास्ता बुद्ध परम शुद्ध ब्रह्मचर्यका उपदेश करते हैं। यही यथार्थ धर्म है। यहां ब्रह्मचर्यसे मतलब ब्रह्म स्वरूप शुद्धात्मामें लीनताका है, केवल बाहरी मैथुन त्यागका नहीं है। इस धर्मपर श्रद्धा लाना योग्य है।

(२) गृहस्थके समान शुद्ध ब्रह्मचर्य या समाधिका लाभ घरमें नहीं होसक्ता, इससे धन कुटुम्बादि छोड़कर सिर दाढ़ी मुंडा काषाय वस्त्र धर साधु होना चाहिये, (३) वह साधु अहिंसा व्रत पालता है, (४) अचौर्य व्रत पालता है, (५) ब्रह्मचर्य व्रत या मैथुन त्याग व्रत पालता है, (६) सत्य व्रत पालता है, (७) चुगली नहीं करता है (८) कटुक वचन नहीं कहता है (९) बकवाद नहीं करता है (१०) वनस्पति कायिक बीजादिका घात नहीं करता है, (११) एक दफे आहार करता है (१२) रात्रिको भोजन नहीं करता है, (१३) मध्यान्ह पीछे भोजन नहीं करता है (१४) माला गंध लेप भूषणसे विरक्त रहता है, (१५) उच्चासनपर नहीं बैठता है (१६) सोना, चांदी, कच्चा अन्न, पशु, खेत, मकानादि नहीं रखता है, (१७) दूतका काम, क्रयविक्रय, तोलना नापना, छेदना भेदना, मायाचारी आदि आरम्भ नहीं करता है, (१८) भोजन वस्त्रमें संतुष्ट रहता है,

(१९) अपना सामान स्वय लेकर चलना है (२०) पाच इन्द्रियोंको व मनको संवररूप रखता है, (२१) प्रमाद रहित मन, वचन, कायकी क्रिया करता है (२२) एकान्त स्थान व ादिमें ध्यान करता है, (२३) लोभ द्वेष, मानादिको आलस्य व सन्देहको त्यागता है, (२४) ध्यानका अभ्यास करता है (२५) वह ध्यानी पाचों इन्द्रियोंके मनके द्वारा विषयोंको जानकर उनमें तृष्णा नहीं करता है, उनसे वैराग्ययुक्त रहनेसे आगामीका भव नहीं बनता है यही मार्ग है, जिससे ससारके दुःखोंका अन्त होजाता है। जैन सिद्धांतमें भी साधु पदकी आवश्यक्ता बताई है। बिना गृहका आरम्भ छोडे निराकुल ध्यान नहीं होसक्ता है। दिगम्बर जैनोंके शास्त्रोंके अनुसार जहातक खंडवस्त्र व लगोट है वहातक वह क्षुल्लक या छोटा साधु कहलाता है। जब पूर्ण नग्न होता है तब साधु कहलाता है। श्वेताबर जैनोंके शास्त्रोंके अनुसार नग्न साधु जिनकल्पी साधु व वस्त्र सहित साधु स्थविरकल्पी साधु कहलाता है। साधुके लिये तेरह प्रकारका चारित्र जरूरी है—

पाच महाव्रत, पाच समिति, तीन गुप्ति।

पाच महाव्रत-(१) पूर्णपने अहिंसा पालना, रागद्वेष मोह छोड़कर भाव अहिंसा, व त्रस-स्थावरकी सर्व सकल्पी व आरम्भी हिंसा छोड़कर द्रव्य अहिंसा पालना अहिंसा महाव्रत है, (२) सर्व प्रकार शास्त्र विरुद्ध वचनका त्याग सत्य महाव्रत है, (३) परकी बिना दी वस्तु लेनेका त्याग अचौर्य महाव्रत है, (४) मन वचन काय, कृत कारित अनुमतिसे मैथुनका त्याग ब्रह्मचर्य महाव्रत है,

(५) सोना चांदी, धन धान्य, खेत मकान दासीदास, गो भैंसादि, सबका त्याग परिग्रह त्याग महाव्रत है।

पांच समिति (१) ईर्यासमिति, दिनमें रोंदी भूमिपर चार हाथ जमीन आगे देखकर चलना, (२) भाषासमिति-शुद्ध, मीठी, सभ्य वाणी कहना, (३) एषणा समिति-शुद्ध भोजन सन्तोषपूर्वक भिक्षा द्वारा लेना, (४) आदाननिक्षेपण समिति-शरीरको व पुस्तकादिको देखकर उठाना धरना (५) प्रतिष्ठापन समिति-मल मूत्रको निर्जन्तु भूमिपर देखके करना।

तीन गुप्ति- १) मनोगुप्ति-मनमें खोटे विचार न करके धर्मका विचार करना। (२) वचनगुप्ति-मौन रहना या प्रयोजन वश अल्प वचन कहना या धर्मोपदेश देना। (३) कायगुप्ति-कायको आसनसे प्रमाद रहित रखना।

इस तेरह प्रकार चारित्रकी गाथा नेमिचंद सिद्धांत चक्रवर्तीने द्रव्यसंग्रहमें कही है—

असुहादोविणिवित्ती सुहे पवित्ती य जाण चारित्तं।
वदसमिदिगुत्तिरूवं ववहारणया दु जिणभणियं ॥ ४५ ॥

भावार्थ-अशुभ बातोंसे बचना व शुभ बातोंमें चलना चारित्र है। व्यवहार नयसे वह पांच व्रत पांच समिति तीन गुप्तिरूप कहा गया है।

साधुको मोक्षमार्गमें चलते हुए दश धर्म व बारह तपके साधनकी भी जरूरत है।

दश धर्म "उत्तमक्षमामार्दवार्जवशौचसत्यसंयमतपस्त्यागाकिंचन्यब्रह्मचर्याणि धर्मः" तत्वार्थसूत्र अ० ९ सूत्र ६।

(१) उत्तम क्षमा–कष्ट पानेपर भी क्रोध न करके शांत भाव रखना।

(२) उत्तम मार्दव–अपमानित होनेपर भी मान न करके कोमल भाव रखना।

(३) उत्तम आर्जव–बाधाओंसे पीड़ित होनेपर भी मायाचारसे स्वार्थ न साधना, सरल भाव रखना।

(४) उत्तम सत्य–कष्ट होने पर भी कभी धर्मविरुद्ध वचन नहीं कहना।

(५) उत्तम शौच–संसारसे विरक्त होकर लोभसे मनको मैला न करना।

(६) उत्तम संयम–पांच इन्द्रिय व मनको सवरमें रखकर इंद्रिय संयम तथा पृथ्वी, जल, तेज, वायु, वनस्पति व त्रस कायके धारी जीवोंकी दया पालकर प्राणी संयम रखना।

(७) उत्तम तप–इच्छाओंको रोककर ध्यानका अभ्यास करना।

(८) उत्तम त्याग–अभयदान तथा ज्ञानदान देना।

(९) उत्तम आकिंचन्य–ममता त्याग कर, सिवाय मेरे शुद्ध स्वरूपके और कुछ नहीं है ऐसा भाव रखना।

(१०) उत्तम ब्रह्मचर्य–बाहरी ब्रह्मचर्यको पालकर भीतर ब्रह्मचर्य पालना।

बारह तप–" अनशनावमौदर्यवृत्तिपरिसंख्यानरसपरित्यागविविक्तशय्यासनकायक्लेशा बाह्यं तपः ॥१९॥ प्रायश्चित्तविनयवैय्यावृत्यस्वाध्यायव्युत्सर्गध्यानान्युत्तरम् ॥ २० ॥ अ० ९ त० सूत्र।

बाहरी छः तप–जिनका सम्बन्ध शरीरसे हो व शरीरको वश रखनेके लिये [illegible] जिनको देख सकें वह बाहरी तप हैं । ध्यानके लिये स्वास्थ्य उत्तम होना चाहिये । आलस्य न होना चाहिये, कष्ट सहनेकी आदत होनी चाहिये ।

(१) अनशन–उपवास–खाद्य, स्वाद्य, लेह्य, पेय चार प्रकार आहारको त्यागना । कभी२ उपवास करके शरीरकी शुद्धि करते हैं ।

(२) अवमोदय–भूख रखकर कम खाना, जिससे आलस्य व निद्राका विजय हो ।

(३) वृत्तिपरिसंख्यान–भिक्षाको जाते हुए कोई प्रतिज्ञा लेना । विना कहे पूरी होनेपर भोजन लेना नहीं तो न लेना मनके रोकनेका साधन है । किसीने प्रतिज्ञा की कि यदि कोई वृद्ध पुरुष दान देगा तो लेंगे, यदि निमित्त नहीं बना तो आहार न लिया ।

(४) रस परित्याग–शक्कर, मीठा, लवण दूध, दही, घी, तेल, इनमेंसे त्यागना ।

(५) विविक्त शय्यासन–एकांतमें सोना बैठना जिससे ध्यान, स्वाध्याय हो व ब्रह्मचर्य पाला जासके । वन गिरि गुफादिमें रहना ।

(६) कायक्लेश–शरीरके सुखियापन मेटनेको विना क्लेश अनुभव किये हुए नाना प्रकार आसनोंसे योगाभ्यास स्मशानादिमें निर्भय हो करना ।

छः अंतरङ्ग तप–(१) प्रायश्चित्त–कोई दोष लगने पर दंड ले शुद्ध होना, (२) विनय–धर्ममें व धर्मात्माओंमें भक्ति करना,

(३) वैय्यावृत्य-रोगी, थके, वृद्ध, बाल, साधुओंकी सेवा करना, (४) स्वाध्याय-ग्रंथोंको भावसहित मनन करना, (५) व्युत्सर्ग-भीतरी व बाहरी सर्व तरफकी ममता छोड़ना, (६) ध्यान-चित्तको रोककर समाधि प्राप्त करना। इसके दो भेद हैं—सविकल्प धर्म-ध्यान, निर्विकल्प धर्मध्यान।

धर्मके तत्वोंका मनन करना सविकल्प है, थिर होना निर्विकल्प है। पहला दूसरेका साधन है। धर्मध्यानके चार भेद हैं—

(१) आज्ञाविचय—शास्त्राज्ञाके अनुसार तत्वोंका विचार करना।

(२) अपायविचय—हमारे राग द्वेष मोह व दूसरोंके रागादि दोष कैसे मिटें ऐसा विचारना।

(३) विपाकविचय—संसारमें अपना व दूसरोंका दुःख सुख विचार कर उनको कर्मोंका विपाक या फल विचार कर समभाव रखना।

(४) संस्थानविचय-लोकका स्वरूप व शुद्धात्माका स्वरूप विचारना ध्यानका प्रयोजन स्वानुभव या सम्यक् समाधिको पाना है। यही मोक्षमार्ग है, निर्वाणका मार्ग है।

अष्टांगिक बौद्ध मार्गमें रत्नत्रय जैन मार्ग गर्भित है।

(१) सम्यग्दर्शनमें सम्यग्दर्शन गर्भित है। (२) सम्यक् संकल्पमें सम्यग्ज्ञान गर्भित है। (३) सम्यक् वचन, सम्यक कर्म, सम्यक् आजीविका, सम्यक् व्यायाम, सम्यक स्मृति, सम्यक् समाधि, इन छहमें सम्यक् चारित्र गर्भित है। या रत्नत्रयमें अष्टांगिक मार्ग गर्भित है। परस्पर समान है। यदि निर्वा-

मूलं संसारदुःखस्य देह एवात्मधीस्ततः ।
त्यक्त्वैनां प्रविशेदन्तर्बहिरव्यापृतेन्द्रियः ॥ १५ ॥

भावार्थ-संसारके दुःखोंका मूल कारण यह शरीर है। इस लिये आत्मज्ञानीको उचित है कि इसका ममत्व त्यागकर व इन्द्रियोंसे उपयोगको हटाकर अपने भीतर प्रवेश करके आत्माको ध्यावे।

आत्मानुशासनमें कहा है.—

उग्रग्रीष्मकठोरघर्मकिरण स्फूर्जद्गभस्तिप्रभैः ।
संतप्तः सकलेन्द्रियैरयमहो संवृद्धतृष्णो जनः ॥
अप्राप्याभिमतं विवेकविमुखः पापप्रयासाकुल-
स्तोयोपान्तदुरन्तकर्दमगतक्षीणोक्षवत् क्लिश्यते ॥ ५५ ॥

भावार्थ-भयानक गर्म ऋतुके सूर्यकी तप्तायमान किरणोंके समान इन्द्रियोंकी इच्छाओंसे आकुलित यह मानव होरहा है। इसकी तृष्णा दिनपर दिन बढ़ रही है। सो इच्छानुकूल पदार्थोंको न पाकर विवेकरहित हो अनेक पापरूप उपायोंको करता हुआ व्याकुल होरहा है व इसी तरह दुःखी है जैसे जलके पासकी गहरी कीचड़में फंसा हुआ दुर्बल बूढ़ा बैल कष्ट भोगे।

स्वयंभूस्तोत्रमें कहा है—

तृष्णार्चिषः परिदहन्ति न शान्तिरासा
मिष्टेन्द्रियार्थविभवैः परिवृद्धिरेव ।
स्थित्यैव कायपरितापहरं निमित्त
मित्यात्मवान्विषयसौख्यपराङ्मुखोऽभूत् ॥८२॥

भावार्थ-तृष्णाकी अग्नि जलती है। इष्ट इन्द्रियोंके भोगोंके द्वारा भी वह शान्त नहीं होती है, किन्तु बढ़ती ही जाती है।

एतैतेत पदमिदमिद यत्र चैतन्यधातु
शुद्ध शुद्ध स्वरसमरत स्थायिभावत्वमेति ॥६-७॥

भावार्थ–ये संसारी जीव अनादिकालसे प्रत्येक अवस्थामें रागी होते हुए सदा उन्मत्त होरहे हैं। जिस पदकी तरफसे सोए पड़े हैं हे अज्ञानी पुरुषों! उस पदको जानो। इधर आओ, इधर आओ, यह वही निर्वाणस्वरूप पद है जहां चैतन्यमई वस्तु पूर्ण शुद्ध होकर सदा स्थिर रहती है। समयसारमें कहा है—

णाणी रागप्पजहो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
णो लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दममज्झे जहा कणय ॥२२९॥
अण्णाणी पुण रत्तो सव्वदव्वेसु कम्ममज्झगदो।
लिप्पदि कम्मरएण दु कद्दमज्झे जहा लोह ॥ २३० ॥

भावार्थ–सम्यग्ज्ञानी कर्मोंके मध्य पड़ा हुआ भी सर्व शरीरादि पर द्रव्योंसे राग न करता हुआ उसीतरह कर्मरजसे नहीं लिपता है जैसे सुवर्ण कीचड़में पड़ा हुआ नहीं विगड़ता है, परन्तु मिथ्याज्ञानी कर्मोंके मध्य पड़ा हुआ सर्व परद्रव्योंसे राग भाव करता है जिससे कर्मरजसे बंध जाता है, जैसे लोहा कीचड़में पडा हुआ बिगड़ जाता है। भावपाहुडमें कहा है—

पाऊण णाणसलिलं णिम्महतिसडाहसोसउम्मुक्का।
हुंति सिवालयवासी तिहुवणचूडामणी सिद्धा ॥ ९३ ॥
णाणमयविमलसीयलसलिलं पाऊण भविय भावेण।
वाहिजरमरणवेयणडाहविमुक्का सिद्धा होंति ॥ १२५ ॥

भावार्थ–आत्मज्ञानरूपी जलको पीकर अति दुस्तर तृष्णाकी दाह व जलनको मिटाकर भव्य जीव निर्वाणके निवासी सिद्ध भगवान

लेखककी प्रशस्ति।

दोहा।

भरतक्षेत्र विख्यात है, नगर लखनऊ सार।
अग्रवाल शुभ वंशमें, मंगलसैन उदार॥१॥
तिन सुत मक्खनलालजी, तिनके सुत दो जान।
सतुप्रसाद हैं ज्येष्ठ अब, लघु 'सीतल' यह मान॥२॥
विद्या पढ गृह कार्यसे, हो उदास तपहेतु।
वरिस वेष अनुमानसे, भ्रमण करत सुख हेतु॥३॥
उन्निस सौ पर बानवे, विक्रम संवत् जान।
वर्षाकाल बिताइया, नगर हिसार सुथान॥४॥
नंदकिशोर सु वैश्यका, बाग मनोहर जान।
तहां वास सुखसे किया, धर्म निमित्त महान॥५॥
मंदिर दोय दिगम्बरी, शिखरबंद शोभाय।
नर नारी तहं प्रेमसे, करत धर्म हितदाय॥६॥
कन्याशाला जैनकी, बालकशाला जान।
पबलिक हित है जैनका पुस्तक आलय थान॥७॥
जैनी गृह शत अग्रवाल कुल मान।

फूलचंद सु ग्रातिल है, दाम विशंभर जान।
गोकुलचंद सुराजने, देवकुमार सुजान ॥११॥
इत्यादिकके साथमें, सुखसे काल विताय।
वर्षाकाल विताइयो, आतम उरमें माय ॥१२॥
बुद्ध धर्मका ग्रंथ कुछ, पढ़कर चित हुलसाय।
जैन धर्मके तत्वसे, मिलत बहुत सुखदाय ॥१३॥
सार तत्त्व खोजीनके, हित यह ग्रन्थ बनाय।
पढ़ो सुनो रुचि धारके, पावो सुख अधिकाय ॥१४॥
मगल श्री जिनराज हैं, मगल सिद्ध महान।
आचारज पाठक परम, साधु नमू सुख खान ॥१५॥
कार्तिक वदि एकम दिना, शनीवारके प्रात।
ग्रंथ पूर्ण सुखसे किया, हो जगमें विख्यात ॥१६॥

बौद्ध जैन शब्द समानता।

सुत्तपिटकका मज्झिमनिकाय हिन्दी अनुवाद त्रिपिटिकाचार्य राहुल सांकृत्यायन कृत (प्रकाशक महाबोधि सोसायटी सारनाथ बनारस सन् १९३३ से बौद्ध वाक्य लेकर जैन ग्रंथोंसे मिलान)।

शब्द	बौद्ध ग्रन्थ	जैन ग्रन्थ
(१) अचेलक	चूलसरसपुर सूत्र सूत्र ७९	नीतिसार इंद्रनंदिकृत श्लोक ७९
(२) अदत्तादान	चूलसकुलुदायी	तत्वार्थ उमास्वामी अ० ७ सूत्र १५

शब्द	बौद्ध ग्रन्थ	जैन ग्रन्थ
(३) अध्यवसान	दीघनख सुत्र ७४	समयसार कुन्दकुन्द गाथा ४४
(४) अनागार	माधुरिय ,, ८४	तत्वार्थसूत्र अ० ७ सूत्र १९
(५) अनुभव	सुभसुत्र ९९	,, अ० ८ ,, २१
(६) अपाय	महासीहनाद सुत्र १२	,, अ० ७ ,, ९
(७) अभव्य	महाकम्मविभंग ,, १३६	,, अ० २ ,, ७
(८) अभिनिवेश	अलगद्दूपम ,, २२	,, अ० ७ ,, २८
(९) अरति	नळकपान ,, ६८	,, अ० ८ ,, ९
(१०) अर्हत	महातण्हासंखय ३८	,, अ० ६ ,, २४
(११) असञ्ञी	पञ्चत्तय सुत्र १०२	तत्वार्थसार अमृतचंद्र कृत श्लोक १२१-२
(१२) आकिंचन्य	पञ्चत्तय सुत्र १०२	तत्वार्थसूत्र अ० ९ सूत्र ६
(१३) आचार्य	अट्ठकनागर ,, ५२	,, अ० ९ ,, २४
(१४) आतप	पञ्चत्तय ,, १०२	,, अ० ९ ,, २४
(१५) आस्रव	सब्बासव ,, २	,, अ० १ ,, ४
(१६) इन्द्रिय	धम्मचेतिय ,, ८९	,, अ० १ ,, १३
(१७) ईर्या	महासिंहनाद ,, १२	,, अ० ७ ,, ४
(१८) उपधि	लटुकिकोपम ,, ६६	,, अ० ९ , २६
(१९) उपपाद	छन्नोवाद ,, १४४	,, अ० ९ ,, ४७
(२०) उपशम	चूळअस्सपुर सुत्र ४०	,, अ० ९ ,, ४५
(२१) एषणा	महासीहनाद ,, १२	, अ० ९ ,, ५
(२२) केवली	ब्रह्मायु सुत्र ९१	,, अ० ६ ,, १३
(२३) औपपातिक	आकंखेय सुत्र ६	,, अ० २ ,, ५३
(२४) गण	पासरासि सुत्र	,, अ० ९ ,, २४
(२५) गुप्ति	माधुरिय सुत्र ८४	तत्वार्थसूत्र अ० ९ ,, २
(२६) तिर्यग्	महासीहनादसुत्र १२	,, अ० ४ ,, २७

शब्द	बौद्ध ग्रन्थ	जैन ग्रन्थ
(२७) तीर्थ	सल्लेख सूत्र ८	सुत्र अ० १० सुत्र ९
(२८) प्रायश्चित्त	साखेव्य सुत्र ४१	,, अ० ४ ,, ४
(२९) नाराच	चूलमालुक्य सुत्र ६३	सर्वार्थसिद्धि अ० ८ सुत्र ११
(३०) निकाय	छ छक्कसूत्र १४८	तत्वार्थसुत्र अ० ४ ,, १
(३१) निक्षेप	सम्मादिट्ठि सुत्र ९	,, अ० ६ ,, ९
(३२) पर्याय	बहु धातुक सुत्र ११५	,, अ० ५ ,, २८
(३३) पात्र	महासींहनाद सुत्र १२	,, अ० ७ ,, ३९
(३४) पुंडरीक	पासरासि सुत्र २६	,, अ० ३ ,, १४
(३५) परिदेव	सम्मादिट्ठि सुत्र ९	,, अ० ६ ,, ११
(३६) पुद्गल	चूलसच्चक सुत्र ३५	,, अ० ५ ,, १
(३७) प्रज्ञा	महावेदल्ल सुत्र ४३	समयसारकलश श्लोक १–९
(३८) प्रत्यय	महा पुण्णम सूत्र १०९	समयसार कुंदकुंद गा० ११६
(३९) प्रव्रज्या	कुक्कुरवतिक सुत्र ५७	बोधपाहुड कुंदकुंद गा० ४५
(४०) प्रमाद	कीटागिरि सूत्र ७०	तत्वार्थसूत्र अ० ८ सूत्र १
(४१) प्रवचन	अग्गिवच्छगोत सु ७२	,, अ० ६ ,, २४
(४२) बहुश्रुत	महालि सुत्र ६५	,, अ० ६ ,, २४
(४३) बोधि	सेख ,, ५३	,, अ० ९ ,, ७
(४४) भव्य	ब्रह्मायु ,, ९१	,, अ० २ ,, ७
(४५) भावना	सब्बासव ,, २	,, अ० ६ ,, ३
(४६) मिच्छादिट्ठि	भय भैरव ,, ४	तत्वार्थसार श्लोक १६२ २
(४७) मैत्री भावना	वत्थ ,, ७	तत्व र्थसूत्र अ० ७ सुत्र ११
(४८) रूप	सम्मादिट्ठि ,, ९	,, अ० ५ ,, ५
(४९) वितर्क	सब्बासव ,, २	,, अ० ९ ,, ४३
(५०) विपाक	उपालि ,, ५६	,, अ० ८ ,, २१
(५१) वेदना	सम्मादिट्ठि ,, ९	,, अ० ९ ,, ३२

जैन ग्रंथोंके श्लोकादिकी सूची जो इस ग्रंथमे है।

(१६) तत्त्वसार देवसेनकृत

(१७) द्रव्यसंग्रह नेमिचंद्रकृत

(१८) तत्त्वार्थसार अमृतचन्द्रकृत

(१९) पुरुषार्थसिद्ध्युपाय अमृतचन्द्रकृत

(२३) सामायिकपाठ अमितिगति

(२४) तत्वभावना अमितगति

(२५) ज्ञानार्णव शुभचद्रकृत

(२६) पंचाध्यायी राजमलकृत

(२७) आप्तस्वरूप